विषय-सूची

प्रथम पञ्चिका—

द्वितीय पञ्चिका—

तृतीय पञ्चिका—

चतुर्थ पञ्चिका—

पंचम पञ्चिका—

षष्ठ पञ्चिका—

सप्तम पञ्चिका—

अष्टम पञ्चिका—

परिशिष्ट—

प्राक्कथन

बचपन में मैंने सुन रक्खा था कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की व्याख्या (Commentaries) हैं। व्याख्या का स्वरूप भी मेरे मस्तिष्क में वही था जो विद्यार्थी के मस्तिष्क में हुआ करता है। मैंने शेक्सपियर पर डाइटन, वैरिटी आदि के नोट्स और कालिदास पर मल्लिनाथ की टीकायें पढ़ी थीं। मैं समझता था कि इसी प्रकार की सहायता ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदों के सम्बन्ध में देते हैं। परन्तु जब मैंने ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण और यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण को पढ़ना आरम्भ किया तो मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कैसी व्याख्यायें हैं, जिनसे मंत्रों का अर्थ समझने में कुछ भी सहायता नहीं मिलती। वस्तुतः व्याख्या पद के अर्थों में भेद है। आद्योपान्त पढ़ने और उन पर विचार करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि ब्राह्मण ग्रन्थ व्याख्या नहीं अपितु यज्ञ सम्बन्धी व्याख्या हैं। अर्थात् यदि आप चाहें कि उनके द्वारा वेद मंत्रों का अर्थ ज्ञात हो सके जैसे सायण, दयानन्द आदि आचार्यों के भाष्यों से होता है तो आपकी इच्छा पूरी नहीं हो सकती। परन्तु यह पता चल सकता है कि किस किस मंत्र का किस प्रकार किस किस इष्टि या यज्ञ में विनियोग हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण में स्थान स्थान पर मंत्रों की रूप-समृद्धता का उल्लेख आता है—

"एतद् वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत् कर्म क्रियमाणमृगभिवदति"

(ऐ० १।१।४)

अर्थात् यदि ऐसा मंत्र बोला जाय जिसमें उसी क्रिया का वर्णन हो जो यज्ञ में की जाने वाली हो तो इसको रूप-समृद्धता

कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जब यज्ञ रचे गये और उनमें पढ़ने के लिये मंत्र छांटे गये तो वह मंत्र छांटे गये जिनके शब्दों से उस क्रिया का लगभग वर्णन प्रकट होता हो। विनियोग में जितने मंत्र पढ़े जाते हैं उन सब में रूप-समृद्धता नहीं होती। परन्तु रूप-समृद्धता अच्छी समझी जाती है। इससे स्पष्ट है कि याज्ञिक लोगों ने यज्ञ में मंत्रों का विनियोग किया। अर्थात् उन्होंने यह निश्चय किया कि अमुक अमुक मंत्र अमुक अमुक स्थान पर बोले जायँगे। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हीं मंत्रों का वर्णन आता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि विनियोग के अनुसार मन्त्र बनाये गये या मन्त्र पहले बने हुये थे उनको पीछे से यज्ञ में विनियुक्त कर लिया गया। ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों को देखने से कभी-कभी यह धारणा हो जाती है कि मन्त्रों के निर्माण का प्रयोजन केवल उनका यज्ञ-सम्बन्धी विनियोग ही था, अर्थात् उन क्रियाओं से बाहर मन्त्रों का कोई प्रयोजन है ही नहीं। मध्यकालीन वेदभाष्यकारों ने वेदों का भाष्य इसी धारणा से किया है। वहाँ विनियोग मुख्य है और अर्थ गौण। परन्तु ऐसा कथन युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। हमारे पक्ष में ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से प्रमाण मिलेंगे। यहाँ केवल एक को ही उद्धृत किया जाता है :—

तदाहुरुदुत्यं जातवेदसमिति सौर्याणि प्रतिपद्येतेति।
तत्तन्नाऽऽहत्य यथैव गत्वा काष्ठामपराध्नुयात् तादृक् तत्।

(ऐतरेय ब्रा० ४।२।६)

"कुछ लोगों का मत है कि इस स्थल पर "उदुत्यं जातवेदसं" (ऋ० १।५०।१) सूर्य का मन्त्र पढ़ कर आरम्भ करे। परन्तु यह ठीक नहीं है। मानो दौड़ने में उद्दिष्ट सीमा को ही भूल जाय।"

इससे सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न लोग एक ही अवसर पर भिन्न-भिन्न मन्त्रों को पढ़ना पसन्द करते थे। यहाँ एक पक्ष का तिरस्कार और दूसरे का आदर किया गया है। अर्थात् कुछ लोग 'उदुत्यं' आदि मन्त्र पढ़ते हैं। परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि वेद मन्त्र पहले उपस्थित थे। यज्ञ के आचार्यों ने यज्ञ-कर्म में अवसरोचित मन्त्रों का विनियोग किया। किसी को कोई पसन्द आया और किसी को कोई। सब ने अपने पक्ष का मंडन और दूसरे के पक्ष का खण्डन किया। यदि मन्त्रों का निर्माण उन नियत अवसरों के लिये ही होता तो इस विषय में भिन्न-भिन्न मत न होते। वेद और ब्राह्मण के परस्पर सम्बन्ध को जानने और वेद मंत्रों का अर्थ समझने के लिये यह बात बड़े महत्व की है। यदि यज्ञ की क्रियाओं के विनियोग के लिये ही वेद मंत्रों का निर्माण हुआ हो तो वेदमंत्रों का अर्थ उन यज्ञ की क्रियाओं को दृष्टि में रखकर ही करना पड़ेगा। और यदि वेद मंत्र स्वतंत्र थे और यज्ञ की क्रियाओं में उनका विनियोग यज्ञ के आचार्यों ने पीछे से किया तो वेदमंत्रों का स्वतंत्र रूप से अर्थ करना होगा और वेदमंत्रों का यज्ञ के साथ गौण सम्बन्ध समझा जायगा। एक मोटा उदाहरण लीजिये। एक श्रुति है :—

तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि, आयुर्दा अग्नेसि आयुर्मे देहि, वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण।

(पारस्कर गृह्यसूत्र २।४)

इसमें ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरे शरीर की रक्षा कर, आयु और वर्चस प्रदान कर। और शरीर में जो कमी हो उसको पूर्ण कर।

यदि मैं रोगी हूँ या चोट लग गई हो तो इस श्रुति से प्रार्थना करना बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है। इसमें रूपसमृद्धता है।

ईश्वर भक्त सैनिक युद्ध में घाव पाते समय इसको पढ़कर अपने को ढाढस दे सकते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इस श्रुति का निर्माण इस अवसर के लिये किया गया हो। एक और प्रमाण लीजिये :—

अन्धस्वत्यः पीतवत्यो मद्वत्यस्त्रिष्टुभो याज्या भवन्त्यभिरूपा यद्यज्ञेऽभिरूपं तत् समृद्धम्। (ऐतरेय० ४।१।६)

यहां प्रश्न था कि पर्य्यायों के याज्यों में कौन कौन मंत्र पढ़ने चाहियें। उत्तर दिया कि वह मंत्र जिनमें अंधस्, पीत और मद् शब्द आये हों। ये पाँच मंत्र इस प्रकार हैं, ऋग्वेद २।१४।१, ६।४४।१४, १०।१०४।२, ६।४०।१ और २।१९।१।

यह मंत्र न तो यज्ञ की क्रियाओं के क्रम से हैं। न वेद में एक स्थल या एक प्रसङ्ग के हैं। केवल इसलिये छाँटे गये कि इनमें 'अंधस्' 'पीत' और 'मद्' शब्द आ गये। इसलिये इन मंत्रों का अर्थ समझने के लिये ऐतरेय के इस विनियोग की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के भाष्य नहीं हैं। परन्तु उनके विनियोग से कहीं-कहीं वेद मंत्रों के अर्थों पर प्रकाश पड़ता है।

पाँचवीं पंचिका के प्रायः सभी अध्यायों में भिन्न-भिन्न दिनों में पढ़े जाने वाले मन्त्रों का उल्लेख है। उन मन्त्रों को किस प्रकार छाँटा गया है? किसी विशेष अर्थ के विचार से नहीं, अपितु कुछ शब्दों के विचार से। जैसे जिनमें 'रथ' शब्द आया हो या जिनमें 'आ' या 'प्र' आया हो इत्यादि।

यत् प्रथमस्याह्नो रूपमेतानि वै सप्तमस्याह्नो रूपाणि इत्यादि

(ऐतरेय ५।३।१)

इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि वेद के मन्त्र उन

कृत्यों के लिये नहीं रचे गये थे जिनका ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है। केवल उनका विनियोग हुआ है।

कहीं-कहीं तो स्पष्टरीत्या प्रकट हो जाता है कि विनियोग में मन्त्रों का अर्थ संकुचित या विकृत भी हो गया है। यहाँ केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

ऐतरेय ब्राह्मण के छठे अध्याय (पंचिका २, अध्याय १) के १०वें खण्ड में ऐसा दिया गया है :—

मनोतायै हविषोऽवदीयमान स्यानुब्रूहीत्याहाध्वर्युः। इति
त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतेति सूक्तमन्वाह इति।

इस पर सायणाचार्य लिखते हैं :—

तदर्थं हृदयाद्येकादशाङ्गरूपं हविरवदीयते। तस्य हविषोऽनुकूला ऋचोऽनु ब्रूहीत्यध्वर्युः प्रैषमंत्रं पठेत्।

अर्थात् अध्वर्यु कहता है कि मनोता के लिये आहुति देने के लिये जो हृदयादि ११ अंग काटे जाते हैं, उनके प्रसंग के मन्त्र पढ़ो। इस पर ऋग्वेद मंडल ६, सूक्त १ के "त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता" आदि मन्त्र पढ़े जाते हैं।

हमने अनुवाद में पूरे मन्त्र देकर उनका अर्थ दे दिया है। पाठकगण देख लें। उन मन्त्रों में कहीं भी अंगों के काटने का संकेत तक नहीं है। अर्थ उत्तम और शुद्ध हैं। कोई घातक क्रिया करने का आदेश नहीं है। फिर भी पशु-बलि के साथ उनका विनियोग करके उनके अर्थों को विकृत कर दिया गया। जो कोई यज्ञ में बध-क्रिया और मन्त्र पाठ को देखेगा यही समझेगा कि मन्त्रों में पशुबध का आदेश होगा तभी तो पढ़े जाते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है।

वैदिक साहित्य के विद्वानों में प्रायः इस बात पर मतभेद है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की गणना वेदों में है या नहीं। हमने ऊपर जो कुछ लिखा है उससे यह गन्ध आती है कि ब्राह्मण ग्रन्थों

की गणना वेदों में नहीं है। इस विषय पर पूर्वकाल में ही बहुत शास्त्रार्थ हुये हैं और अब भी होते रहते हैं। मेरी राय में तो यह झगड़ा 'वेद' शब्द के अर्थों से सम्बन्ध रखता है। यदि वेद का अर्थ सामान्य ज्ञान है तो ब्राह्मण ग्रन्थ क्या अन्य शास्त्र और वैज्ञानिक पुस्तकें भी वेद माननी पड़ेंगी। परन्तु यदि वेद वह अपौरुषेय ज्ञान है जो आदि सृष्टि में ईश्वर की ओर से अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के हृदयों में आविर्भूत हुआ और जिसको वैदिक साहित्य में स्वतः प्रमाण माना गया है तो ऋग्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्र संहिताओं को ही वेद माना जा सकता है अन्य ग्रन्थों को नहीं। इसके लिये बाल की खाल निकालने की आवश्यकता नहीं। केवल ब्राह्मणों के पाठ मात्र से ही सिद्ध हो जाता है कि यह वेद नहीं। यदि कोई अपने किसी विशेष ग्रन्थ में परिभाषा के रूप में यह मान ले तो वह मान सकता है। जैसे कानून की पुस्तकों में उल्लेख होता है कि जहाँ कहीं 'नर' शब्द आया हो तो वहाँ उससे 'नारी' का भी तात्पर्य है। जब कहते हैं कि मनुष्य को सच बोलना चाहिये तो स्त्री और पुरुष दोनों से तात्पर्य है, एक से नहीं। "जो कोई चोरी करेगा वह दण्डनीय होगा" का अर्थ यह भी है कि 'जो कोई स्त्री चोरी करेगी वह दण्डनीय होगी।" इसका अर्थ नहीं कि पुरुष का अर्थ स्त्री है या स्त्री का पुरुष। न हर स्थान पर यह परिभाषा काम आ सकती है। पुरुष पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह करे। यहाँ 'पुरुष' में स्त्री की गणना नहीं होती। इसी प्रकार यदि आपस्तम्ब और कात्यायन ने अपने ग्रन्थों में विशेष परिभाषा बनाने के लिये यह कह दिया कि

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप० २४।१।३१, कात्यायन १।१),

तो इतना कहने से ब्राह्मण वेद नहीं हो गये। इसका केवल यह अर्थ हुआ कि उन विशेष ग्रन्थों में यह परिभाषा प्रयुक्त हुई

है। कात्यायन का यह सूत्र बनाना ही प्रकट करता है कि इससे पहले ब्राह्मण ग्रन्थों की गणना 'वेद' में नहीं थी। संक्षेप के हेतु यह परिभाषा बना ली गई। यदि वेद और ब्राह्मण एक होते तो यह परिभाषा न बनाई जाती। जैसे यदि सामान्यतया पुरुष का अर्थ स्त्री होता तो कानून में उपर्युक्त परिभाषा न बनाई जाती। यतः स्त्री पुरुष नहीं है, अतः यह परिभाषा बनाई गई कि जहाँ-जहाँ पुरुष का उल्लेख हो वहाँ स्त्री का भी समावेश समझा जाय। कभी-कभी वेद शब्द शास्त्र मात्र के अर्थ में भी आया है, जैसे धनुर्वेद, गान्धर्व वेद इत्यादि। परन्तु यह वेद नहीं है। जब ब्राह्मणों की आन्तरिक साक्षी स्पष्टतया उनको उस अर्थ में वेद नहीं दर्शाती जिसमें ऋग्, यजुः आदि अपौरुषेय माने गये हैं तो यदि एक सहस्र पुस्तकों में वेद और ब्राह्मण को एक माना हो तो भी यही कहना पड़ेगा कि यह उल्लेख परिभाषा के लिये ही है। प्रत्येक ग्रन्थकार को परिभाषा बनाने का अधिकार है। परन्तु उससे किसी शब्द के वास्तविक अर्थों में भेद नहीं पड़ता।

कुछ लोग ब्राह्मणों को वेद सिद्ध करने के लिये वेदों को भी खटाई में डाल देते हैं। कोई कहता है कि वेद अनन्त हैं, इसलिये ब्राह्मण वेद हैं। कोई कहता है कि बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये। कोई 'वेद' की व्युत्पत्ति करके ब्राह्मणों को वेद सिद्ध करना चाहता है। वह यह नहीं समझते कि इससे ब्राह्मणों का गौरव तो नहीं होता परन्तु वेदों का लाघव हो जाता है। क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थ की आन्तरिक साक्षी (Internal Evidence) ही उनको अन्यथा सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है। मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त।

अब एक प्रश्न रह जाता है। क्या ब्राह्मण ग्रन्थों में कोई बात वेद विरुद्ध भी है? ब्राह्मण ग्रन्थ जैसे इस समय मिलते हैं उनसे तो कई बातों में वेद-विरोध स्पष्ट ही है। जैसे यज्ञों में पशु-

बध। पशु-बध न तो वेदों में विहित ही है और न उन मंत्रों में उनका उल्लेख है जो ब्राह्मण ग्रन्थों में पशु-बध में विनियुक्त हैं।

कुछ लोगों का ऐसा कहना है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी पशु-बध नहीं है केवल टीकाकारों ने 'आलभन' शब्द का भूल से 'वध' अर्थ लेकर ऐसा भ्रम उत्पन्न कर दिया है। यह ठीक है कि 'लभ' धातु का अर्थ 'प्राप्ति' है और 'आ' उपसर्ग लगने से 'आलभ' का अर्थ वध नहीं हो सकता। पारस्कर गृह्य सूत्र में विवाह के सम्बन्ध में यह वाक्य आता है :—

अथास्यै दक्षिणा ँ समधि हृदयमालभते ममव्रते इत्यादि

(प्रथम काण्ड अष्टमी कण्डिका)

अर्थात् वर बधू के हृदय पर हाथ रख कर 'आलभन' करे। यहाँ 'आलभते' का अर्थ है स्पर्श, न कि काटना या वध करना। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्वापर के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त खींचातानी करके भी ब्राह्मण ग्रन्थों के माथे से पशु-बध के कलंक का टीका मिटाया नहीं जा सकता। यदि एक स्थान पर 'आलभन' शब्द आता तो इसकी कुछ व्याख्या की जा सकती थी। परन्तु कई स्थलों पर पशु के काटने का इतना स्पष्ट विधान है कि 'आलभन' का अर्थ भी वही लेना पड़ता है। कहीं कहीं 'आ + लभ' का प्रयोग न करके 'हन्' धातु का प्रयोग किया गया है जैसे

'तं यत्र निहनिष्यन्तो भवन्ति' (ऐतरेय २।२।१)

"अर्थात् जहाँ पशु का बध करने वाले हैं" इत्यादि।

इससे हम तो यह मानने पर मजबूर हो जाते हैं कि वेद के अध्वर नाम हिंसा-रहित यज्ञों में किसी ने किसी अवस्था में कहीं पर किसी प्रकार पशुबध की प्रथा प्रविष्ट कर दी। सम्भव है, तांत्रिक काल में इसका आरम्भ हुआ हो। आश्चर्य की बात यह है कि समस्त आर्य जाति में आरम्भ काल से ही गौओं को

पूज्या मानते हुये भी यज्ञों में पशुबध का उल्लेख मिलता है। इस बात को मध्यकालीन आर्य्य विद्वानों ने भी इतनी घृणा से देखा कि स्मृतिकारों ने घोषित कर दिया कि यज्ञ में गोवध कलिकाल में निषिद्ध है। यह महारोग की एक क्षणिक और अस्थायी चिकित्सा थी। क्योंकि वेद तो सनातन है अर्थात् उनका मानना और उनके अनुकूल आचरण सब देशों और सब कालों के लिये है। वह देश और काल के प्रभाव से अतीत हैं। यह एक ऐसा विषय है जिसका विवेचन इस भूमिका में नहीं हो सकता। इसके लिये बड़े ग्रन्थ की आवश्यकता है। प्रतीत होता है कि 'आ' उपसृष्ट 'लभ' धातु का मौलिक अर्थ 'प्राप्ति' ही था। पीछे से स्पर्श और उसके बहुत पीछे बध हुआ। यह ठीक है कि उपसर्ग धातु के अर्थों को बदल देते हैं। यदि न बदलते तो उपसर्गों से लाभ ही क्या था। परन्तु बदले हुये अर्थों में भी धातु का आत्मा (Spirit) उपस्थित रहता है। धात्वर्थ उन सब अर्थों की नाभि है। उपसर्ग 'अरा' हैं जिनके सहारे अर्थों का चक्र घूमता है। जैसे 'गम्' में 'आ' लगाने से 'आगम' का अर्थ उलट गया। परन्तु यहाँ अर्थ नहीं उलटा, गति तो आगम में भी ओत प्रोत है। केवल गति का आरम्भ का और अन्त का प्रदेश बदल गया। 'जयपुरं गच्छामि' और 'जयपुरा-दागच्छामि' दोनों में 'गच्छ' का अर्थ है गति। केवल स्थान भेद हो गया है। एक दूसरे धातु को लीजिये। 'ग्रह'। इस धातु के अर्थ उपसर्ग लगाने से बहुत बदल जाते हैं जैसे :—

प्रणताननुजग्राह विजग्राह कुलद्विषः।

आपन्नान् परिजग्राह निजग्राहास्थितानपथि॥

(सौन्दरानन्द महाकाव्य सर्ग २। १०)

यहाँ 'अनुग्रह' का अर्थ है 'कृपा'। 'विग्रह' का अर्थ है लड़ाई। 'परिग्रह' का अर्थ है 'पालन' और 'निग्रह' का अर्थ है

'रोकना'। परन्तु इन सब में 'ग्रह' धातु का 'पकड़ना' अर्थ ओत प्रोत है। जब तक एक मनुष्य दूसरे का संपर्क नहीं करता उसके साथ न दया कर सकता है, न लड़ाई; न पालन, न रोकना। इसी प्रकार पशु को मारने के लिये उसकी प्राप्ति पहले होगी और वध पीछे। इस प्रकार 'आलभ्य हन्ति' के अर्थ में केवल 'आलभते' का प्रयोग किया गया। और जब यह प्रयोग दीर्घ-काल के प्रयोग से परिचित सा हो गया तो 'आलभन' 'हनन' के अर्थ में रूढ़ि हो गया। और जहाँ कहीं 'आलभन' प्राप्ति के अर्थ में था वहाँ भी 'हनन' के अर्थ में ले लिया गया। जब यज्ञ में पशु-वध सामान्य हो गया तो पशु-वध सम्बन्धी अन्य शब्दों का ताना बाना भी 'आलभन' के चारों ओर इस प्रकार बुन दिया गया कि उसके वास्तविक अर्थ का तिरोभाव हो गया।

ऐतरेय ब्राह्मण के बहुत से स्थलों के देखने से ज्ञात होता है कि यज्ञों को हिंसा-शून्य बनाया जा सकता है। हिंसक-वृत्ति के हस्ताक्षेप से पहले यज्ञों का यही रूप था। कहीं-कहीं तो यज्ञ की रूपकालंकार में पशु से उपमा देकर यज्ञ के सिर, यज्ञ के पैर, यज्ञ के उदर, यज्ञ के हृदय आदि का उल्लेख किया गया है। परन्तु पशु की उपमा इसलिये नहीं दी गई कि पशु को काटा जाय या यज्ञ को काटा जाय। अपितु इस लिये कि जैसे पशु के सब अङ्ग एक दूसरे से घनिष्ठतम सम्बन्ध रखते हैं उसी प्रकार यज्ञ की भिन्न-भिन्न क्रियायें भी परस्पर सम्बन्धित हैं। यदि किसी पशु का सिर काट लिया जाय तो न सिर सिर रहता है, न पशु पशु। पशु तभी तक पशु है जब तक उसके अङ्ग बने हुये हैं और अङ्ग तभी तक अंग हैं जब तक अङ्गों के साथ उनका सम्बन्ध है। इसी प्रकार अङ्गभङ्ग होने से यज्ञ यज्ञ नहीं रहता। 'यज्' धातु का एक अर्थ संगतिकरण है। 'संगति' की सब से अच्छी उपमा जीवित पशु का शरीर है। मृत का नहीं। अंगरेजी

का शब्द 'Body Politic' जीवित शरीर की उपमा से समन्वित है। इसी प्रकार Organisation जो सभा के अर्थों में आता है शरीर के अवयवों या गोलकों (Organs) से सम्बन्ध रखता है। Corporation, in corporate आदि अनेकों शब्द लैटिन के Corpus (शरीर) से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु वहाँ काटने का अर्थ न है, न उसकी ओर दूरस्थ संकेत ही है।

हमारा विचार था कि ऐतरेय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण की गाथाओं की सुसङ्गत व्याख्या की जाय और इनको प्रक्षिप्त स्थलों से मुक्त करके शुद्ध कर दिया जाय। परन्तु यह काम बहुत छानबीन और बहुत समय चाहता है। जल बहुत गदला हो तो उसको साधारण छन्ने से छान नहीं सकते। उसके लिये वाष्पीकरण (Evaporation) चाहिये। विषाक्त अन्न का विष दूर करना कठिन है। हमें खेद है कि हम इस कठिन कार्य का सम्पादन नहीं कर सके। हममें योग्यता और समय दोनों की ही कमी है। अतः हमने शाब्दिक अनुवाद पर ही सन्तोष किया है।

कुछ मित्रों का आग्रह था कि या तो हम ब्राह्मण ग्रन्थों को मनुस्मृति के समान सर्वथा शोध कर और क्षेपकों को निकाल कर छापें या हर कठिन स्थल की पूरी विवेचना और व्याख्या करें या न छापें। पहली दो बातें इस समय असम्भव सी प्रतीत हुईं। मनु में जो क्षेपक हैं वह समस्त शास्त्र में विषाक्त अन्न के समान ओत प्रोत नहीं है अपितु दूध में मक्खी के समान हैं जो जल्दी से निकाल कर फेंकी जा सकती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में क्षेपक भी हैं और रहस्यमय गाथायें भी हैं और कुछ विशिष्ट परिभाषायें भी हैं। यह तीनों चीजें इस प्रकार मिली जुली हैं कि इनका छान कर शुद्ध करना अत्यन्त कठिन है। एक दो स्थलों को लेकर विभिन्न विद्वान विभिन्न पक्षों को सिद्ध कर के अपने पाण्डित्य का परिचय दे सकते हैं और उलझनें ज्यों की

त्यों बनी रहती हैं। हमें यह अभीष्ट नहीं है। अब अन्त की बात रह जाती है अर्थात् फिर अनुवाद ही क्यों किया जाय। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि हिन्दी भाषा भाषियों के पास कोई ऐसी चीज़ अवश्य होनी चाहिये जिससे वह संस्कृत साहित्य की झलक देख सकें और पेचदार स्थलों पर अपनी बुद्धि लगा सकें। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी उलझनों का बाहुल्य है। क्या गाथायें, क्या यज्ञ की क्रियाओं के पक्ष में युक्तियाँ, शंकाओं का समाधान सभी विचित्र हैं और गुत्थियाँ सुलझाने में चतुर लोगों के लिये पर्याप्त सामग्री उपस्थित करते हैं। कम से कम लोगों को यह तो पता लग ही जायगा कि यज्ञ की क्रियायें कितनी जटिल, कितनी महत्वपूर्ण और कितनी उपयोगी हैं। हमने उन मन्त्रों को प्रायः पूरा-पूरा दिया है जिनकी मूल ग्रन्थ या भाष्य में केवल प्रतीकें ही दी गई हैं। बहुत बड़े सूक्त छोड़ दिये हैं अन्यथा पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जाता। कहीं-कहीं मन्त्रों के अर्थ भी दे दिये हैं। हमारे इस अनुवाद में त्रुटियाँ बहुत मिलेंगी। हमको स्वयं अपनी कृति सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती। परन्तु आशा है कि हमारे पश्चात् कार्य्य करने वाले सज्जन उत्तरोत्तर विशदता का समावेश कर सकेंगे।

ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेय (महीदास) ऋषि का बना हुआ बताया जाता है। ग्रन्थ में कोई ऐसी साक्षी नहीं है जिससे 'ऐतरेय' मुनि के विषय में कुछ ज्ञात हो सके। कहते हैं कि 'इतरा' एक नीच कुल की स्त्री थी। उसी से उत्पन्न होने के कारण माता के नाम पर इनका ऐतरेय नाम पड़ा। जैसे 'जाबाल' का। हमारा इन गाथाओं पर विश्वास नहीं। यह ठीक है कि किसी पुरुष का बड़ा होना उसके कुल के आश्रित नहीं है। अच्छे कुल में बुरे और बुरे कुल में अच्छे उत्पन्न हुआ ही करते हैं। परन्तु एक बात हमको बहुत खटकती है। वैदिक साहित्य में जिन-जिन बड़े

और गौरवान्वित पुरुषों का उल्लेख आता है उनमें से प्रायः बहुतों के जन्म के साथ ऐसी गाथायें क्यों जोड़ दी गईं? क्या वैदिक साहित्य में उच्चकुल के पुरुषों का कुछ भी भाग नहीं या अत्यन्त न्यून भाग है? सम्भव है कि बहुत सी गाथाओं का आधार वेद विरोधी मत हुये हों। निश्चयात्मक होना कठिन है।

ऐतरेय ऋग्वेदी ब्राह्मण हैं। 'ब्राह्मण' का क्या अर्थ है? यह शब्द 'ब्रह्म' में 'अण्' प्रत्यय करने से बनता है। ब्रह्म का अर्थ यहाँ यज्ञ समझना चाहिये। यज्ञ के ऋत्विजों में ब्रह्मा का पद मुख्य है क्योंकि वह यज्ञ के सब कृत्यों को जानता और होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि का पथ प्रदर्शन करता है। इसलिये यज्ञ के विशेषज्ञ यज्ञ के सम्बन्ध में जो विवेचना करते हैं उनका नाम है ब्राह्मण। इन ब्राह्मणों में ऋग्वेदीय, यजुर्वेदीय आदि की भेदक-भित्ति कैसे खड़ी हुई यह कहना कठिन है। ऐसा भेद उपनिषदों के सम्बन्ध में भी पाया जाता है। आदि काल में ऐसा भेद न था। लोगों को चारों वेद पढ़ने पढ़ाने की प्रथा थी। वेद यदि जीवन से सम्बन्ध रखते हैं तो यह भेद क्यों हो? यज्ञों में भी यह भेद क्यों हो? ऐसा प्रतीत होता है कि आगे चल कर किसी कारण से वेदज्ञ ब्राह्मणों ने एक एक वेद अपने परिवार के लिये चुन लिया। कोई ऋग्वेदी हो गये, कोई यजुर्वेदी और कोई सामवेदी। पीछे से यह सामान्य भेद गहरा भेद हो गया। उनकी शाखायें अलग-अलग हो गईं। यज्ञ करने की प्रणाली भी अलग अलग हो गई। आदि में सुसंगठित आर्य्यों की आगे आने वाली भयानक विभिन्नता का यह एक सूत्रपात था। आज कल भिन्न-भिन्न प्रकार के भेद मनुष्य जाति को विभक्त कर रहे हैं। एक वेद मत के अनुयायी और वेद को ही अपना धर्म ग्रन्थ मानने वाले लोगों में तो यह भेद होना दुर्भाग्य की ही बात है। अस्तु। ऐतरेय ऋग्वेदीय ब्राह्मण है। इसमें होता द्वारा पढ़े जाने

वाले ऋग्वेदीय मंत्रों का ही बाहुल्य है। इसमें ४० अध्याय हैं। पाँच पाँच अध्यायों की एक पंचिका कहलाती है। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में आठ पंचिकायें (८×५=४०) हैं।

पहली पंचिका

पहला अध्याय

अग्निष्टोम का आरंभ

दीक्षणीय-इष्टि

१—देवों में अग्नि का सबसे आदि का और विष्णु का सबसे अन्त का पद है। इनके बीच में और सब देव हैं। दीक्षणीय इष्टि* में ग्यारह कपालों (प्यालों) वाला अग्नि-विष्णु का पुरोडाश अर्पण करना चाहिये†। बिना किसी को छोड़े। इस दृष्टि से सभी देवताओं के लिए अर्पण करते हैं। क्योंकि अग्नि ही सब देवता है। विष्णु ही सब देवता है। यह दोनों शरीर धारी (तन्वौ अर्थात् शरीर धारी या स्थूल रूप अर्थात् वास्तविक सत्ता वाले) अग्नि और विष्णु यज्ञ के किनारे हैं। यह जो अग्नि और

---

*सोमयाग में गोष्टोम, आयुष्टोम, आदि कई विभाग हैं। उनमें सबसे पहला ज्योतिष्टोम है। इस ज्योतिष्टोम की चार संस्थायें हैं। (१) अग्निष्टोम (२) उक्थ्य (३) षोडशी (४) अतिरात्र। ऐतरेय ब्राह्मण का आरंभ अग्निष्टोम से होता है।

†यहाँ वर्तमान विधि-अर्थ में है, लिङर्थे लेट् (पाणिनि ३।४।७)

विष्णु के पुरोडाश को अर्पण करते हैं, वह अन्त में उस यज्ञ के देवों को समृद्ध करते हैं। (अर्थात् अग्नि और विष्णु का नाम लेने से उनके मध्यवर्ती देवताओं का भी ग्रहण हो जाता है। जैसे पाणिनि का सूत्र 'आदिरन्तेन सहेता'—ले०)

यहाँ प्रश्न उठता है कि जब पुरोडाश के ग्यारह कपाल हुये और देवता दो ही हुये, एक अग्नि और दूसरा विष्णु, तो दोनों में क्रम क्या होगा और बाँट कैसे होगा ?

इसका उत्तर यह है कि अग्नि के लिये आठ कपाल हैं। गायत्री में आठ अक्षर होते हैं। गायत्री अग्नि का छन्द है। तीन कपाल विष्णु के हैं क्योंकि विष्णु ने इस सृष्टि की तीन पदों अर्थात् तीन क्रमों में रचना की*। यही इन दोनों का क्रम है यही बांट है।

जो अपने को अप्रतिष्ठित समझे वह भी घृत युक्त चरु को अर्पण करे†। इस संसार में जिसका मान नहीं उसकी स्थिति नहीं। यह जो घी है वह स्त्री का दूध है। तण्डुल पुरुष के हैं। यह जोड़ा है। इस प्रकार जोड़ा होने के कारण ही (चरु) उस को संवृद्धि के लिए प्रजा और पशुओं से युक्त करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशुओं वाला हो जाता है।

जो अमावस्या और पूर्णिमा का यज्ञ करता है वह यज्ञ का

---

*देखो ऋग्वेद १।२२।१७ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
१।२२।१८ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुः।

†पका हुआ भात 'चरु' कहलाता है; उसमें दूध और घी भी मिला सकते हैं।

आरम्भ करने वाला और देवताओं का आरम्भ करने वाला हो जाता है।

अमावस्या में हवि देकर या पूर्णमासी में हवि देकर इस हवि* और इस बर्हि में (अर्थात् उनके द्वारा) उसकी दीक्षा हो जाय। यह एक दीक्षा हुई।

होता को चाहिये कि सत्रह† सामिधेनियों का पाठ करे।

---

*अमावस्या के यज्ञ को हवि और पूर्णिमा के यज्ञ को बर्हि कहते हैं।

†सामिधेनी १७ इस प्रकार हैं। १५ सामिधेनी और २ धाय्य। यह १५ वस्तुतः ११ ही हैं; पहला और पिछला मंत्र तीन तीन बार पढ़ा जाने से १५ हो जाती हैं :—

(१) प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवाञ् जिगाति सुम्नयुः (ऋ० ३।२७।१)।

(२) तथा (३) इसी की पुनरावृत्ति।

(४) अग्नआयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये। निहोता सत्सि बर्हिषि। (साम० १।१ या ऋ० ६।१६।१०)

(५) तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच् छोचा यविष्ठ्य। (ऋ० ६।१६।११)।

(६) स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि। बृहदग्ने सुवीर्यम्। (ऋ० ६।१६।१२)।

(७) ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यतेवृषा। (ऋ० ३।२७।१३)।

(८) वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईडते। (ऋ० ३ २७।१४)।

(९) वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत्। (ऋ० ३।२७।१५)।

क्योंकि प्रजापति सत्रह हैं। बारह महीने और पांच ऋतुयें।

---

(१०) अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। (ऋ० १।१२।१)।

(११) समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः। शोचिष्केशस्तमीमहे। (ऋ० ३।२७।४)।

(१२) समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर। त्वं हि हव्यवाडसि। (ऋ० ५।२८।५)।

(१३) आ जुहोता दुवस्यताऽग्निं प्रयत्यध्वरे। वृणीध्वं हव्यवाहनम्। (ऋ० ५।२८।६)।

(१४) तथा (१५) इसी की पुनरावृत्ति।

सामिधेनी (सम्+इंध करणे ल्युट्)। अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़े जाने वाले मन्त्रों का नाम सामिधेनी है। (शत० ब्रा० १।३।५।१)।

सामिधेनियों के बीच में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वे 'धाय्य' कहलाते हैं। यह दो धाय्य ११वीं और १२ वीं सामिधेनियों के बीच में पढ़े जायंगे। ११वीं ऋचा समिध्यमाना है (ऋ० ३।२७।४) और १२वीं ऋचा 'समिद्धवती' है (ऋ० ५।२८।५)। इन दो के बीच में दो धाय्य आने से संख्या १७ है ही। यह दो "धाय्य" मन्त्र यह हैं :—

"पृथुपाजा अमर्त्यो घृत निर्णिक् स्वाहुतः। अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्। (ऋ० ३।२७।५)।

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः। आचक्रुरग्निमूतये।" (ऋ० ३।२७।६)।

अर्थात् मन्त्रों के उच्चारण के विचार से धाय्यों की संख्या बारहवीं और तेरहवीं होगी। सायण ने इनको दसवां और ग्यारहवां बताया है क्योंकि पहली सामिधेनी ही दूसरी और तीसरी बार दुहराई जाती है। पुनरावृत्ति को अलग न गिनें तो १० वीं ११ वीं हो जाती है।

हेमन्त और शिशिर एक में सम्मिलित हैं। इतना संवत्सर हुआ। वर्ष ही प्रजापति है। जो इस रहस्य को जानता है वह प्रजापति-सम्बन्धी इन ऋचाओं द्वारा समृद्धि को प्राप्त होता है। (१)

२—यज्ञ देवों के पास से भाग गया। उसको इष्टियों द्वारा उन्होंने तलाश करना चाहा। इष्टियों का इष्टित्व इस लिये है कि उन्होंने इनके द्वारा (यज्ञ को) तलाश करने की इच्छा की। ('इष्टि' 'इष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है इच्छा करना—ले०)। उन्होंने उस (यज्ञ) को पा लिया। जो इस रहस्य को समझता है वह यज्ञ को पाकर समृद्धि को प्राप्त कर लेता है। वास्तव में 'आहूति' (दीर्घ ऊ की मात्रा) को 'आहुति' (ह्रस्व उ की मात्रा) कहते हैं क्योंकि इनके द्वारा यजमान देवतों को बुलाता है। यही 'आहुतियों' का 'आहूतित्व' है। यह ऊतियां हैं। क्योंकि इन्हीं के द्वारा देवता यजमान के बुलाने पर आते हैं। ये जो 'ऊतियां' हैं वे मार्ग या पथ हैं जो यजमान के स्वर्ग तक पहुँचने के लिये होती हैं। ('आहुति' का अर्थ है, होम में अर्पण किया हुआ। 'आहूति' का अर्थ है बुलाया हुआ। इन दोनों शब्दों के अर्थों की समानता दिखाई गई हैं अर्थात् हवन में आहुति देना मानों देवों को बुलाना है—ले०)।

प्रश्न यह है कि जब आहुति देने वाला दूसरा (अध्वर्यु) होता है तो अनुवाक्य और याज्य मंत्रों के पढ़ने वाले का नाम 'होता' क्यों है ?

(उत्तर) क्योंकि वह देवताओं को यथा स्थान यह कह कर बुलाता है "अमुक को बुलाओ। अमुक को बुलाओ"। यही 'होता' का 'होतापन' है। जो इस रहस्य को समझता है उसे 'होता' कहते हैं। (२)

३—ऋत्विज लोग जिसको दीक्षा देते हैं उसको मानो फिर गर्भ में बुलाते हैं (नया जन्म देने के लिये)। उस पर जल छिड़कते

हैं। जल वीर्य है। मानो वह उसको दीक्षा देकर वीर्यवान (सरेतस) बनाते हैं। नवनीत अर्थात् घी की नवनी को उस पर मलते हैं। देवों के लिये जो घी होता है उसे "आज्य" कहते हैं।*
जो मनुष्यों के लिये होता है उसे "घृत"। जो पितरों के लिये होता है उसे "आयुत" और जो गर्भस्थ जीवों के लिये उसे "नवनीत"। 'नवनी' मलने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार वह उसी के भागधेय के द्वारा उसको समृद्ध बनाता है। अब आँखों में अंजन दिलाते हैं। क्योंकि जो अंजन है उससे आँखों का प्रकाश बढ़ता है। इस प्रकार उसको प्रकाश देकर दीक्षित करते हैं। दर्भों के इक्कीस मुट्ठों से उसे शोधते हैं। इस प्रकार उसको शुद्ध और पवित्र करके दीक्षित करते हैं।

अब वह उसे उस स्थान पर ले जाते हैं जो दीक्षित-पुरुष के लिये नियत होता है। यह दीक्षित पुरुष की योनि है। दीक्षा के स्थान में ले जाकर मानों वह उसे उसकी ही योनि में ले जाते हैं। इसलिये वह वहाँ योनि के सदृश सुरक्षित स्थान में ठहरता है और फिर चलता है। इसीलिये गर्भ योनियों में सुरक्षित रक्खे जाते हैं और वहाँ से उत्पन्न होते हैं। इसलिये दीक्षा-स्थान के बाहर अन्य स्थान पर दीक्षित पुरुष के ऊपर सूर्य्य उदय और अस्त न हो, और न वे लोग उससे वार्तालाप करें।

---

* घी के चार प्रकार बताये :—आज्य, घृत, आयुत, नवनीत :—
सर्पिर्विलीनमाज्यं स्याद् घनीभूतं घृतं विदुः। ईषद्विलीनमायुतम्।
पिघला घी 'आज्य' है। जमा हुआ 'घृत' है। आधा पिघला आयुत् हैं। मक्खन 'नवनीत', नवनी या लौनी कहलाता है। इसी से और तीन बनाये जाते हैं।

नवनीतस्यपाकजन्यास्तिस्रोऽवस्थाः;-पक्वम्, ईषत्पक्वम्, निःशेषपक्वम् च। द्रव्यान्तरप्रक्षेपेण सुरभिनिःशेष पक्वम्॥

वे उसको वस्त्र से ढकते हैं। यह जो वस्त्र है वह दीक्षित पुरुष का उल्व है (उल्व उस झिल्ली को कहते हैं जिसमें बच्चा उत्पन्न होता है—ले०)। इस प्रकार वह उसे उल्व से ढकते हैं। उसके ऊपर से कृष्णाजिन या काले मृग का चर्म लपेटते हैं। उल्व के ऊपर जरायु होता है। इस प्रकार वह उसको जरायु से ढकते हैं। वह मुट्ठी बांधे होता है। क्योंकि मुट्ठी बांधे ही बच्चा गर्भ में होता है, मुट्ठी बांधे ही उत्पन्न होता है। यह जो वह मुट्ठी बांधता है, मानो अपने दोनों हाथों में यज्ञ और देवतों को ले लेता है। इसके लिये कहा जाता है कि जो पुरुष पहले दीक्षा ले लेता है उसकी मुट्ठी में यज्ञ होता है और मुट्ठी में देवता होते हैं, इसलिये उसको 'संसव'* दोष नहीं लगता। और न उसको वह हानि उठानी पड़ती है जो उस पुरुष को जो पीछे से दीक्षा लेता है।

अब वह मृग-चर्म को उतार कर स्नान करता है। इस प्रकार ही बच्चे जरायु के बाहर निकल कर उत्पन्न होते हैं। वह वस्त्र को लपेटे-लपेटे ही नहाता है। क्योंकि बच्चा 'उल्व' के साथ ही तो उत्पन्न होता है। (३)

४—जो 'अनीजान' है अर्थात् जिसने अभी यज्ञ नहीं किया उसके लिये होता दो अनुवाक्य बोलता है। आज्य भाग अर्थात् घी के पहले भाग के लिये "त्वमग्ने सप्रथा असि"† (ऋ०

---

* यदि दो या अधिक पुरुष एक ही समय में निकट स्थान में सोम यज्ञ करते हों तो गड़बड़ हो जाती है; उसे 'संसव' दोष कहते हैं। यदि कोई पुरुष दीक्षित हो जाय तो उसे 'ससव' दोष नहीं लगता। यह सायण की राय है।

† त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते॥ (ऋ० ५।१३।४)

५।१३।४) मंत्र और दूसरे भाग के लिये "सोम यास्तेमयो भुवः" (ऋ० १।९१।९) मंत्र। मानों इस प्रकार "त्वया यज्ञं वितन्वते" पढ़ कर वह उस (यज्ञ न किये हुये) को यज्ञ देता है।

जो "ईजान" है अर्थात् जिसने पहले यज्ञ किया है उसके लिये होता दूसरे दो मंत्र जपता है (१) "अग्निः प्रत्नेन मन्मना" (ऋ० ८।४४।१२) और (२) "सोमगीर्भिष्ट्वावयम्" (ऋ० १।९१।११)। मंत्र में "प्रत्नम्" शब्द जो पड़ा है उससे पुरातन कर्म की ओर संकेत है।

परन्तु यह दोनों जप छोड़े भी जा सकते हैं। इनके स्थान में वृत्र को मारने विषयक यह दो मंत्र बोलने चाहियेः—(१) अग्निर्वृत्राणि जंघनत् (ऋ० ६।१६।३४); (२) त्वं सोमासि सत्पतिः (ऋ० १।९१।५)। चूंकि जिसके पास यज्ञ आता है वह वृत्र को मार देता है, इसलिये वृत्र के मारने सम्बन्धी दो ऋचाओं को बोलना चाहिये।

अग्नि और विष्णु के हविष् का याज्य है "अग्निर्मुखं प्रथमो

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोऽविताभव॥
(ऋ० १।९१९)

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम्। कविर्विप्रेण वावृधे॥
(ऋ० ८।४४।१२)

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धमानो वचोविदः। सुमृडीको न आ विश॥
(ऋ० १।९१।११)

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः॥
(ऋ० ६।१६।३४)

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः॥
(ऋ १।९१।५)

देवतानाम्" और अनुवाक्य है "अग्निश्चविष्णो तप उत्तमं महः* ।" यह अग्नि और विष्णु के मंत्र रूप-समृद्ध हैं अर्थात् जैसा कृत्य हो उसी के अनुसार है। जो कृत्य के अनुसार होता है उससे यज्ञ की सफलता होती है। अर्थात् ऐसे मंत्रों से जिनमें उस क्रिया का विधान है जो होने वाली है।

देवतों में अग्नि और विष्णु दीक्षापाल अर्थात् दीक्षा की रक्षा करने वाले हैं। वे दोनों दीक्षा पर स्वामित्व रखते हैं। जब अग्नि और विष्णु के लिये हवि दी जाती है तो जो दोनों दीक्षा पर शासन करते हैं वे प्रसन्न हो जाते हैं। और दीक्षा को प्रदान कर देते हैं। अर्थात् जो दीक्षा देने वाले हैं वह दीक्षा देते हैं। ये दोनों मंत्र त्रिष्टुभ् छन्द में हैं जिससे (यजमान को) इन्द्र का पद प्राप्त हो जायँ। (४)

५—जिसको तेज और ब्रह्मवर्चस् की कामना हो वह स्विष्टकृत संयाज्य में गायत्री छन्द के दो मंत्र बोले। गायत्री तेज और ब्रह्मवर्चस् वाली है। जो इस रहस्य को समझ कर गायत्री छन्द वाले दो मंत्रों को बोलता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी हो जाता है। जो दीर्घायु चाहे वह "उष्णिक्" छन्द के दो मंत्र बोले। क्योंकि उष्णिक् आयु वाला है। जो इस रहस्य को समझ कर इन दो उष्णिक् छन्दों वाले मंत्रों को पढ़ता है वह पूर्ण आयु वाला हो जाता है।

---

* यह दो मन्त्र जो ऋग्वेद में नहीं पाये जाते श्रौत सूत्र (अश्वलायन) में इस प्रकार हैं :— (पूर्व० ४।२)

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानां संगतानामुत्तमो विष्णुरासीत् ।
यजमानाय परिगृह्य देवान् दीक्षयेदंहविरागच्छतं नः ॥१॥
अग्निश्च विष्णो तप उत्तमं महो दीक्षापालाय वन तद्धि शक्रा ।
विश्वैर्देवैर्यज्ञियैः संविदानौ दीक्षामस्मै यजमानाय धत्तम् ॥२॥

जो स्वर्ग की कामना वाला हो वह अनुष्टुभ् छन्द वाले दो मंत्रों को पढ़े। दो अनुष्टुभों में ६४ अक्षर होते हैं। इन तीनों लोकों में एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार २१ स्थान होते हैं। इक्कीस-इक्कीस पगों में वह इन लोकों को तर लेता है और चौसठवें अक्षर से स्वर्ग में प्रतिष्ठित हो जाता है। जो इस रहस्य को समझ कर दो अनुष्टुभों को पढ़ता है उसको स्वर्ग में प्रतिष्ठा मिलती है।

जिसको श्री और यश की कामना हो वह 'बृहती' छन्द वाले दो मंत्रों को पढ़े। छन्दों में बृहती छन्द श्री और यश वाला है। जो इस रहस्य को समझ कर बृहती छन्द वाले दो मंत्रों को पढ़ता है वह अपने में श्री और यश को धारण करता है।

जिसको यज्ञ की कामना हो वह पंक्ति छन्द वाले दो मंत्र पढ़े। यज्ञ पंक्ति वाला (या पाँच अंगों वाला) है। जो इस रहस्य को समझ कर पंक्ति छन्द वाले मंत्र पढ़ता है उसको यज्ञ नमस्कार करता है।

जो पराक्रम की कामना करे वह त्रिष्टुभ् छन्द वाले दो मंत्रों को पढ़े। त्रिष्टुभ् ओज या इन्द्रिय सम्बन्धी पराक्रम है। जो इस रहस्य को समझ कर त्रिष्टुभ् छन्द के दो मंत्रों को पढ़ता है वह ओजस्वी और इन्द्र सम्बन्धी पराक्रम वाला होता है।

जिसको पशु की कामना हो वह 'जगती' छन्द वाले दो मंत्रों को पढ़े। पशु जगती वाले हैं। जो इस रहस्य को समझ कर जगती छन्द वाले दो मंत्रों को पढ़ता है, वह पशु वाला होता है।

जो भोजन की कामना करे वह 'विराट्' छन्द वाले दो मंत्रों को बोले। विराट् अन्न है। इसलिये जिसके पास अन्न बहुत होता है वही संसार में अधिक विराजता है (प्रकाशित होता है)। यही

विराट्त्व है। जो इस भेद को समझता है वह अपने लोगों में चमकता है और श्रेष्ठ माना जाता है। (५)

६—विराट् छन्द में पाँच शक्तियाँ होती हैं। चूंकि इसमें तीन पद होते हैं इस लिये यह उष्णिक् और गायत्री (के समान) है। चूंकि इसके पदों में ग्यारह अक्षर होते हैं इस लिये त्रिष्टुभ् के समान है। चूंकि इसमें तेंतीस अक्षर होते हैं इसलिये अनुष्टुभ् के समान है। एक या दो अक्षर की कमी से छन्द तब्दील नहीं होता (यह इसलिये कहा, कि "प्रेद्धो अग्ने" और 'इमो अग्ने' वाले दो विराट् छन्दों में से पहले में केवल २९ अक्षर हैं और दूसरे में ३२)। पाँचवीं शक्ति विराट् है।

जो इस भेद को समझ कर (स्विष्टकृत में) दो विराट् छन्दों वाले मंत्रों को पढ़ता है वह सब छन्दों की शक्ति को ले लेता है, प्राप्त कर लेता है। सब छन्दों की सायुज्यता सरूपता और सलोकता को प्राप्त कर लेता है। अन्न का खाने वाला और अन्नपति होता है, प्रजा और अन्न को पा लेता है। इसलिये विराट् छन्दों वाले दो मंत्रों को अवश्य पढ़ना चाहिये—(१) प्रेद्धो अग्ने* (ऋ० ७।१।३); (२) इमो अग्ने (७।१।१८)। दीक्षा ऋत है। दीक्षा सत्य है। इसलिये दीक्षित को सत्य ही बोलना चाहिये।

इस पर प्रश्न होता है कि कौन मनुष्य निरन्तर सत्य बोल सकता है। सत्य से युक्त देव है। झूठ से युक्त मनुष्य।

विचक्षणवती वाणी को बोले। चक्षु ही विचक्षण है क्योंकि इसी से देखते हैं। मनुष्यों में जो आँख है, वह सत्य में निर्धारित

---

* प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरोनोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ।
त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः॥ (ऋ० ७।१।३)

इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु॥ (ऋ० ७।१।१८)

है। इसीलिये जब कोई मनुष्य कुछ कहता है तो लोग कहते हैं "क्या तूने देखा है?" यदि वह कहता है "मैंने देखा है" तो वे उस पर श्रद्धा करते हैं। यदि मनुष्य स्वयं किसी चीज को देख सकता है तो दूसरों पर श्रद्धा नहीं करता, चाहे कई हों। इसलिये विचक्षणवती वाणी को बोले। तब उसकी वाणी सचमुच ही सत्य वाली हो जाती है। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की पहली पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त

दूसरा अध्याय

प्रायणीय-इष्टि

७—जो प्रायणीय इष्टि करते हैं वह इसके द्वारा स्वर्गलोक को जाते हैं (प्रयंति)। इसीलिये इस इष्टि को प्रायणीय कहते हैं। प्रायणीय प्राण है और उदयनीय उदान है। होता समान होता है। प्राण और उदान समान होते हैं। प्राणों के बनाने और प्राणों के जानने के लिये (प्रायणीय और उदयनीय दोनों इष्टियों की आवश्यकता है। —ले०)†

यज्ञ देवों के पास से भाग गया। वे देव कुछ कृत्य न कर सके। और न जान सके (कि वह यज्ञ कहाँ चला गया—ले०)। उन्होंने अदिति से कहा, "तेरे द्वारा हम इस यज्ञ को जानें"। उसने

---

† 'प्रायणीय' का अर्थ है 'आरंभ की'। 'उदयनीय' का अर्थ है 'अन्त की'। यज्ञ में सब से पहले 'दीक्षणीय इष्टि' का उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया। यह तो केवल तैय्यारी थी। जब यज्ञ आरंभ हुआ तो आरंभ की इष्टि हुई प्रायणीय और अन्त की उदयनीय। दोनों मिलकर ही यज्ञ को पूरा करती हैं।

कहा, "अच्छा, परन्तु मैं एक वर मागूँगी"। उसने कहा, "माँग" उसने यही वर माँगा, "यज्ञ मुझसे आरम्भ हो और मुझसे समाप्त हो।"। उन्होंने ने कहा, "अच्छा"। इसलिये अदिति का चरु आरम्भ में होता है और समाप्ति भी अदिति के चरु से ही होती है क्योंकि यही वर उसने माँगा था। अब उसने यह वर माँगा. "मेरे ही द्वारा पूर्व दिशा को तुम जानो, अग्नि के द्वारा दक्षिण दिशा को तुम जानो, अग्नि के द्वारा दक्षिण दिशा को, सोम के द्वारा पश्चिम, सविता के द्वारा उत्तर दिशा को"।

अब (होता) पथ्या के अनुवाक्य और याज्य मंत्रों* को बोलता है। चूँकि पथ्या का अनुसरण करता है इसलिये यह (सूर्य्य) पूर्व से उदय होता और पश्चिम में अस्त होता है।

अब अग्नि के अनुवाक्य और याज्य मंत्रों को बोलता† है। इसीलिये ओषधियाँ दक्षिण में पहले पकती हैं। क्योंकि ओषधियां अग्नि से सम्बन्ध रखती हैं।

---

* पथ्या के अनुवाक्य और याज्य मंत्र यह हैं :—

१ स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥

२ स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देव गोपा॥

(ऋ० १०।६३।१५ १६)

† अग्नि के अनुवाक्य और याज्य मंत्र यह हैं :—

१ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।

(ऋ० १।१८९।१)

२ आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोल्हुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति॥

(ऋ० १०।२।३)

अब वह सोम के लिये अनुवाक्य* और याज्य मंत्रों को बोलता है। इसी लिये बहुत सी नदियाँ पश्चिम की ओर बहती हैं। जल सोम के हैं। सविता के लिये अनुवाक्य† और याज्य मंत्रों को बोलता है। इसीलिये वायु अधिकतर उत्तर और पश्चिम की दिशाओं से बहता है। वह सविता की प्रेरणा से ही चलता है।

वह अदिति के लिये‡ अनुवाक्य और याज्य मंत्रों को

---

* सोम के अनुवाक्य और याज्य मंत्र यह हैं :—

१ त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः॥
(ऋ० १।९१।१)

२ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेलन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय॥
(ऋ० १।९१।४)

† सविता के अनुवाक्य और याज्य मंत्र यह हैं :—

१ आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे। सत्य सवं सवितारम्॥
(ऋ० ५।८२।७)

२ य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन। प्र च सुवाति सविता॥
(ऋ० ५।८२।९)

‡ अदिति के अनुवाक्य और याज्य मंत्र हैं :—

१ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।
(ऋ १०।६३।१०)

२ महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्॥
(अथर्ववेद ७।६।२)

दुहराता है जो उत्तम अर्थात् ऊपर का लोक है। इसीलिये यह (द्यौ) इस (पृथ्वी) को वर्षा से सींचता है। और सुखाता है। वह पांच देवतों के लिये अनुवाक्य और याज्य मंत्रों को बोलता है। यज्ञ पांच-भाग वाला है। सब दिशाओं की कल्पना (सिद्धि) हो जाती है और यज्ञ की भी कल्पना हो जाती है। उन पुरुषों के लिये भी कल्पना हो जाती है जिनके पास इस रहस्य को जानने वाला 'होता' होता है। (१)

८—जो तेज और ब्रह्मवर्चस् की कामना करे वह पूर्व की ओर जाकर प्रयाज आहुतियों को देवे। पूर्व दिशा तेज ब्रह्मवर्चस् है। जो इस रहस्य को समझ कर पूर्व दिशा की ओर जाकर (प्रयाज आहुतियां) देता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी होता है। जो अन्न आदि की इच्छा करे वह दक्षिण की ओर जाकर के प्रयाज आहुतियां दें। अग्नि अन्न का खाने वाला और अन्न-पति है। जो इस रहस्य को समझ कर दक्षिण की ओर जा करके आहुति देता है वह अन्न का खाने वाला और अन्न-पति हो जाता है और प्रजा और अन्न आदि से युक्त होता है। जो पशुओं की कामना करे वह पश्चिम की ओर जा करके प्रयाज आहुतियों को दे। ये जो जल हैं वह पशु हैं। जो इस रहस्य को समझ कर पश्चिम की ओर जा करके (प्रयाज आहुतियां) देता है वह पशु वाला होता है। जो सोमपान की कामना करे वह उत्तर की ओर जाकर प्रयाज आहुतियाँ दे। उत्तर दिशा सोम है। जो इस भेद को समझ कर उत्तर की ओर जाकर प्रयाज आहुतियां देता है वह सोम पान को प्राप्त हो जाता है। ऊपर की दिशा स्वर्ग वाली है। (जो ऊपर की दिशा में जाकर प्रयाज आहुतियां देता है) वह सब दिशाओं को प्राप्त हो जाता है। यह सब लोक एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसके लिये यह सब लोक श्री के लिये चमकते हैं। पथ्या के याज्य मंत्रों को

दोहराता है। पथ्या के याज्य मंत्रों को दुहरा कर वह वाणी को यज्ञ के पहले रखता है। अग्नि प्राण है और सोम अपान। सविता प्रेरणा के लिये है और अदिति स्थापना के लिये। जब पथ्या के लिये याज्य मंत्र बोलता है तब वह यज्ञ को पथ अर्थात् मार्ग पर डाल देता है। अग्नि और सोम दो आँखें हैं। सविता प्रेरणा के लिये है और अदिति स्थापना के लिये। देवों ने यज्ञ को आँख से ही जाना। जो अप्रज्ञेय अर्थात् न जानी हुई चीज है उसे आँख से ही जानते हैं। जो भटकने पर आँख के निरन्तर प्रयोग के द्वारा जान लेता है वह जान लेता है। देवों ने जो यज्ञ को जाना वह इसी पृथ्वी पर जाना। इसी पृथ्वी पर यज्ञ की चीजें इकट्ठी कीं। इसी पृथ्वी पर यज्ञ ताना जाता है। इसी पर यज्ञ किया जाता है। इसी पृथ्वी पर यज्ञ की चीजें इकट्ठी की जाती हैं। यह पृथिवी ही अदिति है। अन्तिम याज्य मंत्र इसी अदिति के लिये है। यह अन्तिम याज्य मंत्र यज्ञ को जानने के लिये और पीछे से स्वर्ग को देखने के लिये बोला जाता है। (२)

९—कहा जाता है कि देवों की "साधारण जनता"* होनी चाहिये। क्योंकि जब देवों की जनता होगी तो मनुष्य की भी होगी। जब सब जनता मिल गई तो यज्ञ तैयार हो गया। जिस जनता में इस रहस्य का समझने वाला 'होता' होता है उसके

---

* विश इत्ययं शब्दः प्रजामात्रवाची, वैश्यजाति विशेष वाची वा; सन्ति हि देवेष्वपि जाति विशेषः।—सायण

हमारी सम्मति में विट् या मरुत् का अर्थ प्रजामात्र, या साधारण जनता (common people) है। यहाँ वैश्य जाति से तात्पर्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि साधारण जनता का सहयोग यज्ञ के लिये आवश्यक है। 'जनता' शब्द मूल में आया भी है (यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति)।

लिये भी यह यज्ञ तैयार हो जाता है। (नीचे का मन्त्र पढ़ने से देव जनता से युक्त हो जाते हैं)

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥ (ऋ० १०।६३।१५)

मरुत देवों की जनता हैं। यज्ञ के आरम्भ में होता इस मंत्र को पढ़ कर उन (मरुतों) को तैयार कर देता है।

कहते हैं कि होता (याज्य और अनुवाक्य मन्त्रों में) सब छन्दों के मंत्र बोले। देव सब छन्दों द्वारा यज्ञ करके स्वर्गलोक को प्राप्त हुये। इसी प्रकार यजमान भी सब छन्दों द्वारा यज्ञ करके स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है।

"स्वस्ति नः पथ्यासु" और "स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा" (ऋ० १०।६३।१५, १६) यह दो मंत्र जो "पथ्यायाः स्वस्तेः" अर्थात् मार्ग के कल्याण के लिये हैं, त्रिष्टुभ् छन्द में हैं। "अग्ने नय सुपथाराये अस्मान्" (ऋ० १।१८९।१) और "आ देवानामपि पन्थामगन्म" (ऋ० १०।२।३) जो अग्नि के लिये हैं यह दोनों भी त्रिष्टुभ् छन्दों में हैं। "त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा" (ऋ० १।९१।१) और "याते धामानि दिवि या पृथिव्यां" (ऋ० १।९१।४) यह दोनों सोम के मंत्र भी त्रिष्टुभ् में हैं। "आ विश्वदेवं सत्पतिं" (ऋ० ५।८२।७) और "य इमा विश्वा जातानि" (ऋ० ५।८२।९) यह दोनों सविता के मन्त्र गायत्री छन्द में हैं। "सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं" (ऋ० १०।६३।१०) और "महीमू षु मातरं सुव्रतानाम्" (अथर्व० ७।६।२) यह दोनों अदिति के मंत्र जगती छन्द में हैं। यह त्रिष्टुभ्, गायत्री और जगती मुख्य छन्द हैं। अन्य छन्द इनके अनुयायी हैं। यही यज्ञ में विशेषतः काम आते हैं। इसलिये जो इस रहस्य को समझ कर इन छन्दों में अनु-

वाक्य और याज्य पढ़ता है वह मानो सब छन्दों द्वारा यज्ञ कर लेता है। (३)

१०—(प्रायणीय इष्टि के) इन सब अनुवाक्य और याज्य मन्त्रों में 'प्र', 'नी', 'पथि', 'स्वस्ति' शब्द आते हैं। देवों ने इन्हीं से यज्ञ करके स्वर्ग लोक की प्राप्ति की। इसी प्रकार यजमान भी इन्हीं मन्त्रों से यज्ञ करके स्वर्ग लोक को जाता है। इनमें एक पद है "स्वस्ति राये मरुतो दधातन" (ऋ० १०।६३।१५) अर्थात् "हे मरुतो, हमको कल्याण युक्त धन दो।" मरुत देवों के वैश्य हैं और अन्तरिक्ष में रहते हैं। जो स्वर्ग को जाता है वह उनसे निवेदन करने जाता है, वह उसको रोक या मार भी सकते हैं। होता जो कहता है "स्वस्ति राये मरुतो दधातन" (ऋ० १०।६३।१५), वह ऐसा कह कर मानों यजमान का देवों के वैश्य मरुतों के साथ परिचय कराता है। तब मरुत न तो उसको जो स्वर्ग को जाता है, रोकते हैं और न मारते हैं। जो इस रहस्य को जानता है वह उनके द्वारा स्वर्ग लोक तक अच्छा मार्ग पा लेता है। इस (प्रायणीय इष्टि) की स्वकृष्टकृत आहुति के लिये जो दो संयाज्य मन्त्र हैं, वह विराट् छन्द में होने चाहिये। जिसमें तेतीस अक्षर होते हैं। यह दो मन्त्र यह हैं :—

(१) सेदग्निरग्नींरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः।
सहस्र पाथा अक्षरा समेति। (ऋ० ७।१।१४)

(२) सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात्।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः। (ऋ० ७।१।१५)

देवों ने इन दो संयाज्यों को विराट छन्द में पढ़ कर स्वर्ग की प्राप्ति की। इसी प्रकार जो यजमान इन दोनों संयाज्यों को विराट छन्द में पढ़ता है वह स्वर्ग लोक की प्राप्ति कर लेता है। इनमें तेतीस अक्षर होते हैं। तेतीस ही देवते हैं, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति और वषट्कार। इस प्रकार

मन्त्र के तेतीस अक्षरों में होता देवों को यज्ञ के अग्र भाग में ही यज्ञ में शरीक कर लेता है। क्योंकि एक एक अक्षर एक एक देव के लिये पात्र है (dish) है जिससे वे प्रसन्न और तृप्त हो जाते हैं। (४)

११—कुछ लोग कहते हैं कि प्रायणीय इष्टि में प्रयाज पढ़ने चाहिये और अनुयाज नहीं पढ़ने चाहिये। क्योंकि प्रायणीय इष्टि के अनुयाज हीन हैं अर्थात् उनमें देर लगती है। परन्तु यह पक्ष आदर के योग्य नहीं है। प्रयाज और अनुयाज दोनों ही होने चाहिये। प्रयाज प्राण हैं और अनुयाज प्रजा हैं। यदि प्रयाजों को छोड़ देगा तो यजमान के प्राणों को छोड़ देगा। और यदि अनुयाजों को छोड़ देगा, तो यजमान की सन्तान को छोड़ देगा। इसलिये (प्रायणीय इष्टि में) प्रयाज और अनुयाज दोनों ही होने चाहिये।

पत्नियों* के संयाज्यों को न बोले। न संस्थित यजुओं को। इतना यज्ञ पूरा हो गया। यज्ञ की संतति (जारी रखने) के लिये प्रायणीय इष्टि का शेष भाग उदयनी इष्टि के भाग में मिलाने के लिये रख लेना चाहिये। (जिससे दोनों इष्टियां मिल कर एक हो जायं)। यज्ञ बीच में न टूटे इसके लिये एक और उपाय है अर्थात् जिस थाली में प्रायणीय इष्टि का पुरोडाश तैयार किया, उसी थाली में उदयनीय-इष्टि का पुरोडाश तैयार करे। इस प्रकार, यज्ञ बीच में टूटता नहीं। उसका सिलसिला कायम रहता है।

कुछ लोगों का कहना है कि इससे लोग परलोक में सफल हो जाते हैं, इस लोक में नहीं। जब वह 'प्रायणीयम्', 'प्रायणीयम्'

---

* राका सिनीवाली (पूर्णिमा के) और कुहू और अनुमति (अमावस्या के) देवपत्नियों के लिये जो मंत्र पढ़े जाते हैं, वह पत्नी-संयाज्य कहलाते हैं।

कह कर पुरोडाश को निकालते और आहुति देते हैं तो यजमान उस लोक को चले जाते हैं (प्रयन्ति)। परन्तु इन लोगों का यह कथन अविद्यावश है।

प्रायणीय और उदयनीय इष्टियों के याज्य और अनुवाक्य मन्त्रों में इस प्रकार उलट फेर होना चाहिये कि प्रायणीय इष्टि का अनुवाक्य उदयनीय इष्टि का याज्य मन्त्र हो जाता है और प्रायणीय इष्टि का याज्य मन्त्र उदयनीय इष्टि का अनुवाक्य हो जाता है। होता इस उलट फेर को इसलिये करता है कि दोनों लोकों में समृद्धि प्राप्त हो, दोनों लोकों में प्रतिष्ठा प्राप्त हो। जो इस रहस्य को समझता है वह दोनों की समृद्धि और दोनों लोकों की प्रतिष्ठा पा लेता है। अदिति के लिये जो चरु प्रायणीय इष्टि में और जो उदयनीय इष्टि में दिया जाता है, वह यज्ञ के धारण करने के लिये, यज्ञ के बांधने के लिये अर्थात् इसलिये दिया जाता है कि यज्ञ हाथ से निकलने न पावे। किसी ने कहा है कि यह ऐसे ही है जैसे किसी रस्सी के दोनों सिरे बांधने से वह रस्सी हाथ से छूटने नहीं पाती। इसी प्रकार प्रायणीय और उदयनीय इष्टियों में अग्नि को चरु देकर होता यज्ञ के दोनों शिरों को बांध देता है। 'पथ्या स्वस्ति' के साथ ही उदयनीय इष्टियों में समाप्त कर देते हैं। इस प्रकार यजमान स्वस्ति के साथ यहां आरम्भ करते हैं और स्वस्ति के साथ वहां (परलोक में) समाप्त कर देते हैं। (५)

ऐतरेय ब्राह्मण की पहली पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त

तीसरा अध्याय

सोम-क्रय, अग्नि-मथन, आतिथ्य-इष्टि

१२—देवों ने राजा सोम को पूर्व दिशा में ख़रीदा था। इस लिये यह पूर्व दिशा में ही खरीदा जाता है। उन्होंने तेरहवें महीने से सोम खरीदा था, इसलिये तेरहवां महीना निन्दनीय है। सोम का बेचना निन्दनीय है। इसलिये सोम का बेचने वाला पापी है। जब उसको मोल लेकर मनुष्यों के पास लाये तो उसकी शक्तियां तथा इन्द्रियां सब दिशाओं में फैल गईं। उन्होंने उनको एक ऋचा के द्वारा इकट्ठा करने की चेष्टा की। परन्तु वह न कर सके। तब उन्होंने दो, तीन, चार, पांच, छः और सात मन्त्रों से यत्न किया। परन्तु वह उनको इकट्ठा न कर सके। तब आठ मन्त्रों से सफल हुए और उनको प्राप्त किया। अष्ट (आठ) को अष्ट इसलिये कहते हैं कि इससे अश्नुते अर्थात् प्राप्ति होती है। ('अष्ट' अश् धातु से बनता है जिसका अर्थ है प्राप्त करना)। जो इस रहस्य को समझता है वह जो चाहता है उसी को पा लेता है। इसीलिये इन कर्मों में आठ आठ मन्त्र होते हैं जिससे सोम की इन्द्रियां और शक्तियां इकट्ठी हो सकें। (१)

१३—अब अध्वर्यु होता से कहता है, "खरीदे हुये और लाये हुये सोम के लिये मन्त्र पढ़ो।" वह कहता है—"भद्रादभिश्रेयः प्रेहि*" अर्थात् "इस लोक से चल कर इससे श्रेष्ठ लोक को जा।" यह लोक भद्र है। इसलिये 'भद्र' से तात्पर्य है इस लोक का। स्वर्ग लोक इस लोक से 'श्रेयः' अर्थात् श्रेष्ठ है। इसके कहने से होता यजमान को परलोक को भेजता है। अब कहता है :—

बृहस्पतिः पुर एता तेऽअस्तु। (मन्त्र का दूसरा पाद)

"बृहस्पति तेरा पथ प्रदर्शक हो"।

ब्रह्म ही बृहस्पति है। ब्रह्म को पथ प्रदर्शक बनाने से यज्ञ में विघ्न न होगा।

अब कहता है—

अथेमवस्य वरऽआ पृथिव्या। (मन्त्र का तीसरा पाद)

"इसे पृथ्वी के ऊपर ठहराओ" (अथ ईं अवस्य)

---

* भद्रादभिश्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुर एता ते अस्तु।
अथे मवस्य वर आ पृथिव्या आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः॥
(तैत्तिरीय संहिता, १।२।३।३)

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुर एता ते अस्तु।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरे शत्रुं कृणुहि सर्ववीरम्॥
(अथर्व ७।८।१)

इन दोनों मन्त्रों में थोड़ा सा भेद है। तै० में 'अभि' है। अथर्व० में अधि; तै० में अथेमवस्य (अथ ईं अवस्य) है। अथर्व० में 'अथेममस्याः' (अथ इमम् अस्याः) है। तै० में शत्रून् (बहुवचन) है, अथर्व में एक वचन शत्रुं; तै० में सर्ववीरः (प्रथमा) है और अथर्व० में सर्ववीरम् (द्वितीया)।

'वर' का अर्थ है देव भजन अर्थात् यज्ञ का स्थान। इस प्रकार वह यज्ञ-स्थान पृथिवी पर सोम को ठहराता है।

अब कहता है :—

आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः। (मन्त्र का तीसरा पाद)

"सर्व शक्तिमान् होकर शत्रुओं को भगा"।

ऐसा कहने से होता यजमान के साथ अहित करने वाले शत्रु को भगा देता है और उसको सबसे नीचा स्थान दिलाता है। अब वह "सोमा यास्ते मयोभुव"* वाले तीन मंत्र जो गायत्री छन्द में हैं पढ़ता है।

इस प्रकार वह सोम राजा को उसी के देवता और उसी के छन्द द्वारा लाकर प्रसन्न करता है।

अब वह (होता) पढ़ता है।

सर्वे नंदंति यशसा गतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत् पितुषणि र्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय॥

(ऋ० १०।७१।१०)

"सब मित्र ऐसे मित्र के आने पर जो सभा में जीत कर यश के साथ आता है प्रसन्न होते हैं। उनकी दोषों से रक्षा करने वाला और अन्न देने वाला और उनकी इन्द्रियों को शक्ति प्रदान करने वाला होता है"।

सोम राजा ही "यश" है। इसके मोल लेने पर सभी आनन्द मनाते हैं, वह जिनको यज्ञ में कुछ मिलेगा और वह जिनको न मिलेगा। यह जो सोम राजा है वह ब्राह्मणों का "सभा में जीतने

---

* सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोऽविताभव॥
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि। सोम त्वं नो वृधेभव॥
सोम गीर्भिष्ट्वावयं वर्धयामो वचोविदः। सुमृडीको न आविश॥

(ऋ० १।९१।९,१०,११)

वाला सखा" है। वही "किल्बिषस्पृत्" या दोषों से रक्षा करने वाला है। जो कोई "किल्बिषं" या दोषी हो जाता है उसी की वह रक्षा करता है।

जो श्रेष्ठ होता है वही दोषी हो जाता है (अर्थात् पहले ठीक ठीक मंत्र उच्चारण करता है, फिर थक जाता है)। इसीलिये कहते हैं (होता के प्रति), "अब मत पढ़ो"। (अध्वर्यु के प्रति) "अब कृत्य मत करो"। जिससे जल्दी में गड़बड़ न हो जाय।

वह "पितुषणि" है। 'पितु' का अर्थ है 'अन्न' और 'सनि' का अर्थ है 'दान'। 'पितु' दक्षिणा को भी कहते हैं। (यजमान ऋत्विजों को सोमयज्ञ करने के बदले) दक्षिणा देता है। इस प्रकार वह (सोम-राजा को ऋत्विजों के अर्थ) अन्न का देने वाला बनाता है। "अरंहितो भवति वाजिनाय"। यहाँ इन्द्रियों की शक्तियों का नाम "वाजिन" है। जो इस रहस्य को समझता है उसकी इन्द्रियों की शक्ति बुढ़ापे तक क्षीण नहीं होती।

अब होता नीचे के मंत्र को पढ़ता है:—

आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्। स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥*

(ऋ० ४।५३।७)

"देव सविता ऋतुओं के साथ आवे। घर को समृद्ध करे। और हमको सन्तान और धन से युक्त करे। वह हम पर रातों और दिनों में कृपा करे। वह हमको सन्तान के सहित धन दे।"

'आगन् देवः' का अर्थ है, "वह (सोम) यहाँ आ गया है"। "ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं" में ऋतुयें सोम राजा के भाई हैं। जैसे मनुष्यों में राजों के भाई हुआ करते हैं उसी प्रकार। होता इस

---

* यह मन्त्र ऐ० ब्रा० में 'सोम' के लिये आया है। परन्तु ऋग्वेद में यह सविता विषयक है। क्या सोम और सविता पर्य्याय हैं? ले०

मन्त्र को पढ़ कर मानो सोम के साथ उसके भाइयों को ले आता है। "दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्" आशीर्वाद है। और "वह हमको सन्तान के सहित धन दे" यह भी आशीर्वाद है।

अब होता पढ़ता है :—

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्॥ (ऋ० १।९१।१९)

"तेरे जिन गुणों का हवि द्वारा गान करते हैं वे सब गुण इस यज्ञ में हर जगह आ जावें। हे सोम हमारे घरों में आ। हमारी गायों* को बढ़ाता हुआ, रक्षा करता हुआ। वीरों को देता हुआ और वीरों को न मारता हुआ।"

"गयस्यफानः प्रतरणः सुवीरः" का तात्पर्य है कि गायों का बढ़ाने वाला और रक्षा करने वाला हो। "अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्" का तात्पर्य यह है कि 'दुर्यान्' अर्थात् यजमान के 'घर' आये हुये सोम राजा से डरते हैं। इस मंत्र को पढ़ कर वह सोम को शान्त करता है जिससे वह शांत हुआ सोम प्रजा और पशुओं की हिंसा न करे।

अब होता वरुण सम्बन्धी नीचे के मन्त्र से समाप्त करता है :—

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि। यया- ति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम॥ (ऋ० ८।४२।३)

"हे देव वरुण! शिष्य को बुद्धि, कर्त्तव्यता और होशियारी दो। जिससे हम सब बुराइयों को तर जायं और अच्छी तरह पार करने वाली नाव पर चढ़ें।" (सोम) जब तक (कपड़े में)

*ऐतरेय में 'गयस्फान' का अर्थ किया है 'गवां नः स्फावयिता' (हमारी गायों को बढ़ाने वाला)। वस्तुतः 'गय' का अर्थ है प्राण। 'गयस्फान' का अर्थ हुआ 'प्राण शक्ति को बढ़ाने वाला।'

बंधा रहता है और (यज्ञ शाला के प्राग्वंश अर्थात् आगे के भाग में) लाया जाता है, उस समय तक यह अरुण देवता का होता है। इसलिये इस मन्त्र को पढ़ कर यह सोम को उसी के देवता और उसी के छन्द से समृद्ध करता है। 'शिक्षमाणस्य' उसके लिये आया है जो यज्ञ करता है क्योंकि वह सीखता है। 'क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि' से तात्पर्य है कि 'हे वरुण तुम वीर्य और प्रजा को दो।' 'नाव' से तात्पर्य है यज्ञ का, जिससे भली भांति मार्ग को तर जायं। काला मृग चर्म सुमार्ग है और वाणी नाव। इस मन्त्र को पढ़ कर यजमान वाणी रूप नाव पर चढ़ता है और स्वर्ग को पहुँच जाता है।

यह आठों मन्त्र पूर्ण रीत्या रूप-समृद्ध हैं। जिस मन्त्र में जो क्रिया करनी हो उसी का विधान हो वह मन्त्र रूप-समृद्ध होता है। ऐसे ही मन्त्र से यज्ञ सफल होता है।

इनमें से पहले (भद्रादभिश्रेय इति) और पिछले मन्त्र (इमां धियमिति) को तीन तीन बार पढ़ा जाता है। इस प्रकार यह बारह हो जाते हैं। बारह ही महीने वर्ष के होते हैं। वर्ष ही प्रजापति है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति के इन मन्त्रों द्वारा सफल हो जाता है। पहले और पिछले मन्त्रों को तीन तीन बार पढ़ कर वह यज्ञ रूपी रस्सी की दोनों गांठों को कड़ी बांधता है जिससे वह फिसल न जाय। (२)

१४—(जिस गाड़ी में सोम राजा लाया जाता है) उसके एक बैल को जुता रखते हैं और एक का खोल देते हैं। तब वह उसको गाड़ी में से उतारते हैं। यदि दोनों बैलों को खोल कर उतारा जाय तो वह सोम राजा "पितृदेवत्य" (पितरों के आधीन) हो जाय। यदि दोनों बैलों को जुते हुये उतारें तो प्रजा के लिये

योगक्षेम* न हो। प्रजा तितर बितर हो जाय। विमुक्त बैल घर में रहती हुई सन्तान का स्थानापन्न हैं और जो जुता हुआ है वह क्रियाओं का रूप है। जो एक बैल को खोल कर और एक को जुते हुये सोम को उतारता है वह दोनों प्रकार का कुशल प्राप्त करता है अर्थात् वर्तमान और भविष्य।

देव और असुर इन लोकों में लड़े। वे पूर्व दिशा में लड़े। वहाँ से असुर जीत गये। वे पश्चिम दिशा में लड़े। वहाँ से असुर जीत गये। वह उत्तर दिशा में लड़े। वहाँ से भी असुर जीत गये। वह उत्तर दिशा में लड़े। वहाँ देव न हारे। यही दिशा अपराजिता है। इसलिये इसी दिशा में कार्य्य करे या करावे। इसी दिशा से उसके ऋण दूर हो जायँगे।

देवों ने कहा कि राजा न होने के कारण (असुर) हमको जीत लेते हैं। इसलिये एक राजा चुन लें। सब ने कहा, "अच्छा"। उन्होंने सोम राजा को चुना। उन्होंने सोम राजा की सहायता से सब दिशायें जीत लीं। यह सोम राजा ही है जो यज्ञ करता है। जब उसे (गाड़ी पर) रखते हैं तो वह पूर्वाभिमुख होता है। इस प्रकार यजमान पूर्व दिशा को जीत लेता है। वे गाड़ी को दक्षिण को मोड़ते हैं। इस प्रकार दक्षिण दिशा को जीतते हैं। जब गाड़ी उत्तर दिशा की ओर होती है वह (सोम को) उतार लेते हैं। इससे उत्तर दिशा को जीत लेते हैं। जो इस रहस्य को जानता है वह सोम राजा की सहायता से सब दिशायें जीत लेता है। (३)

---

*योग का अर्थ है कार्यपरायणता और क्षेम का अर्थ है विश्राम। जुता हुआ बैल 'योग' का प्रतिनिधि है और खुला हुआ 'क्षेम' का।

१५—सोम राजा के आने पर आतिथ्य हवि बनाई जाती है। सोमराजा यजमान के घरों में आता है। उसके लिये यह आतिथ्य हवि तैय्यार की जाती है। इसीलिये इसको आतिथ्य-हवि कहते हैं। (यह पुरोडाश) नौ कपालों में होता है। प्राण नौ हैं। प्राणों के बनाने और प्राणों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये। यह पुरोडाश विष्णु का होता है क्योंकि विष्णु ही यज्ञ है। उसी के देवता और उसी के छन्द से यज्ञ को सम्पादित करते हैं। जब सोम खरीदा जाता है तो सब छन्द और सब पृष्ठ (सामवेद के दो मंत्रों के जोड़े) उसके साथ आते हैं। जो-जो लोग राजा के साथ आते हैं उन सभी का सत्कार किया जाता है।

जब सोम राजा आ जाता है तो अग्नि का मंथन किया जाता है। जब कोई राजा या अन्य पुरुष आता है तो बैल या बांझ गाय को मारते हैं। इसी प्रकार अग्नि का मथना भी पशु मारने के तुल्य है क्योंकि अग्नि देवों का पशु है।* (४)

१६—अध्वर्यु (होता से) कहता है "मथी हुई अग्नि के लिये पढ़"। इस पर वह इस सविता सम्बन्धी अर्थात् सावित्री ऋचा को पढ़ता है :—

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्।
सदावन् भागमीमहे ॥ (ऋ० १।२४।३)

यहाँ प्रश्न उठता है कि मथी हुई अग्नि के लिये मंत्र बोलना था और बोला सविता के लिये। यह क्यों? इसका उत्तर यह

---

*सायण ने 'उक्षाणं' का अर्थ 'वृषभ' किया है और 'वेहत्' का 'गर्भघातिनीं वृद्धां गां'। अगले खण्ड में सविता के विषय में जो कहा गया वह तो बैल या गाय मारने की उपमा को सुसंगत नहीं करता। यह समस्त प्रकरण विचारणीय है। बहुत से विद्वानों के मत में अतिथि के लिये बैल या गाय मारने की बात भ्रममूलक है। —ले०

है कि सविता तो सभी उत्पत्तियों का स्वामी है। सविता की प्रेरणा से ही अग्नि मथी जाती है। इस लिये सविता का मन्त्र पढ़ा गया।

अब नीचे का द्यावा-पृथिवी का मन्त्र पढ़ा जाता है :—

मही *द्यावा पृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः। यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा प्रथानेभिरेवैः। (ऋ० ४।५६।१)

यहाँ प्रश्न उठता है कि जब मथी हुई अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ना है तो द्यावा-पृथिवी के लिये क्यों पढ़ते हैं। इसका उत्तर यह है कि जब अग्नि उत्पन्न हुआ तो देवों ने उसे द्यौ और पृथिवी के बीच में ग्रहण किया और द्यावा-पृथ्वी के बीच में ही पकड़े रक्खा। इस लिये द्यावा-पृथिवी का मंत्र पढ़ते हैं।

अग्नि को मथते समय तीन अग्नि की ऋचाओं को जो गायत्री छन्द में पढ़ते हैं :—

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥
तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्रईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्॥
तमुत्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयं रणे रणे॥

(ऋ० ६।१६।१३, १४, १५)

इसी प्रकार वह अग्नि को उसी के देवता और उसी के छन्दों द्वारा समृद्ध करता है। "अथर्वा निरमंथत" ऐसा कहने से मंत्र रूप-समृद्ध हो जाता है। अर्थात् जो क्रिया करनी होती है यदि वही मंत्र में भी वर्णित हो तो उस मंत्र को रूप-समृद्ध कहते हैं। रूप-समृद्ध मंत्र से ही क्रिया सफल होती है।

यदि अग्नि न उत्पन्न हो या देर में उत्पन्न हो तो राक्षसों को मारने वाली नीचे की ऋचायें पढ़ी जाती हैं :—

---

*ऐतरेय ब्राह्मण में "मही द्यौः पृथिवी चन" ऐसा पाठ है। क्या यह यही मंत्र पाठान्तर के साथ है या अन्य कोई मंत्र ? —ले०

यह नौ मंत्र यह हैं :—

(१) अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन् मर्त्येष्वा । स्वे क्षये शुचिव्रत ॥
(२) उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥
(३) स आहुतो विरोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा । स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥
(४) घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः ॥
(५) जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्ते मर्त्याः ॥
(६) तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम् ॥
(७) अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥
(८) स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥
(९) तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मानुषे जने ॥

(ऋ० १०।११८।१-९)

यह मंत्र राक्षसों के मारने के लिये पढ़े जाते हैं क्योंकि जब अग्नि उत्पन्न नहीं होता या देर में उत्पन्न होता है तो राक्षस उसे पकड़ लेते हैं।

जब एक या दो या अधिक मंत्र पढ़ने पर अग्नि उत्पन्न हो जाय तो उत्पत्ति के योग्य नीचे का मंत्र पढ़ना चाहिये :—

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनञ्जयो रणे रणे ॥ (ऋ० १।७४।३)

जो यज्ञ का रूप-समृद्ध होता है उसी से यज्ञ सफल होता है। अब यह मंत्र पढ़ता है :—

आयं हस्तेन खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरम् ॥

(ऋ० ६।१६।४०)

मंत्र में "हस्त" (हाथ) आया है। हाथ से ही तो अग्नि को मथते हैं। 'शिशुं जातं" (पैदा हुआ बच्चा) शब्द आया है। जैसे बच्चा उत्पन्न होता है उसी प्रकार अग्नि उत्पन्न होता है। "न बिभ्रति" इत्यादि में जो 'न' है वह 'ओ३म्' अर्थात् स्वीकारी के अर्थ में है। जैसे देवों के लिये, उसी प्रकार मनुष्यों के लिये।

अब पढ़ता है :—

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ निषीदतु ॥

(ऋ० ६।१६।४१)

यह मन्त्र उस समय के लये उपयुक्त है जब अग्नि आहव-नीय कुण्ड में डाला जाता है।

"आ स्वे योनौ निषीदतु" (वह अपने घर में बैठे) का तात्पर्य यह है कि आहवनीय अग्नि का उचित स्थान है।

आ जातं जात वेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥

(ऋ० ६।१६।४२)

इस मन्त्र में 'जातं' एक (अर्थात् अग्नि) है और 'जातवेद' दूसरा (अर्थात् आहवनीय)। 'प्रियं शिशीतातिथिम्' में यह जो (मथा हुआ) अग्नि है वह दूसरे अग्नि (अर्थात् आहवनीय) का प्यारा अतिथि है। "स्योन आ गृहपतिम्" से (ऋत्विज अग्नि) को शान्ति के साथ (आहवनीय) में स्थापित करता है।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥

(ऋ० १।१२।६)

यह मन्त्र तो यज्ञ का अभिरूप ही है और ठीक है।

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥

(ऋ० ८।४३।१४)

इस मन्त्र में एक अग्नि एक विप्र है और दूसरी अग्नि दूसरा विप्र। एक अग्नि एक सत्ता है और दूसरी अग्नि दूसरी सत्ता। 'सखा सख्या समिध्यसे' में एक सखा एक अग्नि है और दूसरा 'सखा दूसरी अग्नि है।

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरो यावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥

(ऋ० ८।८४।८)

इस मन्त्र में 'स्वेषु क्षयेषु' का अर्थात् यह है कि एक अग्नि दूसरी अग्नि का अपना ही घर है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।

(ऋ० १।१६४।५०)

इस मन्त्र से समाप्त करता है। देवों ने यज्ञ द्वारा ही यज्ञ किया। अग्नि द्वारा ही अग्नि में यज्ञ करके देव स्वर्ग को गये थे। "यह पहले धर्म थे।" "वे बड़े लोग (महिमानः) उसी स्वर्ग को प्राप्त हो गये जहां पहले साध्य लोग हैं। छन्द ही 'साध्य देव' हैं जिन्होंने पहले अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ किया। उन्होंने स्वर्ग लोग की प्राप्ति की। वे आदित्य और अंगिरा थे। उन्होंने अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ किया। वह स्वर्ग लोक को प्राप्त हो गये। यह जो अग्नि की आहुति है वह स्वर्ग में ले जाने वाली आहुति है। यदि यज्ञ करने वाला ठीक ब्राह्मण न हो या दुराचारी हो तो भी यह आहुति देवताओं तक पहुँच जाती है। पापी से मिल कर दूषित नहीं होती। जो इस रहस्य को समझता है उसकी आहुति अवश्य ही देवताओं तक पहुँच जाती है। पापी से मिल कर दूषित नहीं होती।

यह तेरह मन्त्र हैं और सभी "रूप समृद्ध" हैं। यज्ञ तभी सफल होता है जब मन्त्र यज्ञ का 'रूप समृद्ध' हो अर्थात् उसमें वही वर्णन हो जैसी क्रिया करनी है। इन तेरह मन्त्रों में पहला और अन्तिम तीन तीन बार बोला जाता है। इस प्रकार यह सत्रह हो जाते हैं। 'प्रजापति' भी सत्रह अंगों वाला है। एक संवत्सर या बारह मास और पांच ऋतुयें। प्रजापति ही संवत्सर है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति सम्बन्धी ऋचाओं द्वारा सफल हो जाता है। पहले और पिछले मन्त्र को तीन तीन बार पढ़ कर वह यज्ञ के आगे और पीछे में गांठ लगा देता है जिससे वह यज्ञ बीच में से फिसल न सके। (५)

१७—दोनों आज्य भागों के पुरोनुवाक्य यह हैं :—

समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥
(ऋ० ८।४४।१)

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥　　(ऋ० १।९१।१६)

इन दोनों ऋचाओं में आतिथ्य का वर्णन है। इसलिये यह दोनों रूप-समृद्ध हैं। ऋचा की रूप-समृद्धता यही है कि जो क्रिया करनी हो उसका उसमें विधान हो। पहली 'अतिथि' वाली ऋचा का देवता अग्नि है। दूसरी का देवता सोम है; उसमें 'अतिथि' शब्द नहीं आया। यदि सोम को सम्बोधित करने वाली किसी ऋचा में 'अतिथि' शब्द आता तो उस ऋचा का प्रयोग किया जाता। परन्तु यह ऋचा (ऋ० १।९१।१६) भी अतिथि के ही लिये हैं क्योंकि इसमें 'आपीन' अर्थात् मोटे होने की ओर संकेत करते है। जब अतिथि का सत्कार करते हैं तो मानों उसे मोटा करते हैं।

अग्नि और सोम दोनों का याज्य मन्त्र 'जुषाणः' से आरम्भ होता है। अनुवाक्य यह है :—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥
(ऋ० १।२२।१७)

और याज्य मन्त्र यह है :—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति । उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥　　(ऋ० १।१५४।५)

यह दोनों ऋचायें विष्णु सम्बन्धी हैं। पहली में तीन पद हैं। उसको बोल कर दूसरी के चार पदों को बोलना है। इस प्रकार सात पद हो जाते हैं।

आतिथ्य यज्ञ का सिर है। सिर में सात प्राण होते हैं।

इस कृत्य को करके होता यजमान के सिर में मानो सातों प्राणों को रखता है।

स्विष्टकृत के दो संयाज्य मन्त्र यह हैं :—

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्य यज्ञस्य केतुं रुशन्तम। प्रत्यर्धिं देवस्य देवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥ (ऋ० १०।१।५)

प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः। अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥

(ऋ० ७।८।४)

यह दोनों अतिथि सम्बन्धी ऋचायें हैं। इसलिये रूप-समृद्ध हैं। जो ऋचायें रूप समृद्ध होती हैं वे यज्ञ के लिये ठीक होती हैं। क्योंकि ऋचाओं में वही बात होती है जिसको करना होता है।

यह दोनों त्रिष्टुभ् हैं इसलिये इन्द्र की शक्ति पाने के लिये ठीक हैं।

यज्ञ-अवशिष्ट खाने से कृत्य समाप्त हो जाता है। देवों ने अतिथि-इष्टि के अन्त में यज्ञ शेष खाया। उसी से वह सन्तुष्ट हो गये। इसलिये इस इष्टि की अन्तिम क्रिया यज्ञ-शेष का भोग है।

इस इष्टि में प्रयाज आहुतियां दी जाती हैं। अनुयाज नहीं। प्रयाज और अनुयाज दोनों ही प्राण हैं। शिर के प्राण प्रयाज हैं। जो शरीर के निचले भाग के प्राण हैं वह अनुयाज हैं। जो अनुयाज आहुतियां देना चाहे वह ऐसा ही होगा मानों नीचे के प्राणों को काट कर शिर में रख दे। यह अर्थ है कि शिर के प्राण और निचले प्राण सब एक ही स्थान पर मिलें। इसलिये इस इष्टि में यदि अनुयाज न हों, केवल प्रयाज ही हों तो अनुयाज करने वाले का अभिप्राय भी सिद्ध हो ही जाता है। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की पहली पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय

प्रवर्ग्य-इष्टि

१८—यज्ञ देवतों के पास से यह कह कर चला गया कि मैं तुम्हारा अन्न नहीं बनूंगा। देवों ने कहा, "न जा, तू ही हमारा अन्न होगा।" देवों ने उसको अंग-भंग कर दिया। अंग-भंग किया हुआ यज्ञ उनके लिये प्रभावयुक्त (हितकर) न हुआ। देवों ने कहा, "अंग-भंग किया यज्ञ हमारा अन्न नहीं बन सकता। इस लिये इस यज्ञ को पूर्ण करना चाहिये। उन्होंने उसको पूर्ण किया। जब पूर्ण हो गया तो उन्होंने कहा, "हे अश्विनो! तुम दोनों इस यज्ञ को चंगा कर दो। दो अश्विन् देवों के चिकित्सक हैं। अश्विन् देवों के अध्वर्यु हैं। इसलिये दोनों अध्वर्यु* घर्म (अर्थात प्रवर्ग्य के लिये जो कुछ सामग्री होती है उस) को इकट्ठा कर देते हैं। ऐसा करके वह कहते हैं :—

"ब्रह्मा, हम प्रवर्ग्य-इष्टि करना चाहते हैं। होता! तुम स्तुति पढ़ो"। (१)

---

* एक अध्वर्यु और दूसरा प्रति-प्रस्थाता दोनों मिलकर दो अध्वर्यु हुये।

१९—होता इस मंत्र से आरंभ करता है :—

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥

(यजु० १३।३; आश्व० श्रौ० सू० ४।६)

ब्रह्म ही बृहस्पति है। ब्रह्म के द्वारा ही इस (प्रवर्ग्य) की चिकित्सा की जाती है।

इयं पित्रे राष्ट्र्येत्यग्रे प्रथमाय जनुषे भूमनेष्ठाः।

तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणंति प्रथमस्य धासेः ॥

(आश्व० श्रौ० सू० ४।६)

यह मंत्र पढ़ कर (होता) प्रवर्ग्य में वाणी का धारण करा देता है। क्योंकि राष्ट्री अर्थात् महारानी वाणी है।

महान् मही अस्तभायद्वि जातो द्यां पिता सद्म पार्थिवं च रजः।

स बुध्नादाष्ट जनुषाभ्युग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ॥

(आश्व० श्रौ० सू० ४।६)

यह ऋचा ब्रह्मणस्पति के प्रति है। ब्रह्म ही बृहस्पति है। ब्रह्म के द्वारा ही इस (प्रवर्ग्य) की चिकित्सा करता है।

अभित्यं देवꣳसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्य सवंरत्न धाम-भिप्रियं मतिं कविं। ऊर्ध्वायस्या मतिर्भा अदि द्युतत् सवीमनि हिरण्य पाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः ॥ (यजु० ४।२५; आश्व० श्रौ० सू० ४।६)

यह सविता के प्रति है। प्राण ही सविता है। इस प्रकार इसमें प्राण धारण कराता है।

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।

वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ (ऋ० १।३६।९)

इस मंत्र से वह (प्रवर्ग्य को) बिठाते हैं।

अञ्जति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः। पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन् नसादि ॥ (ऋ० ५।४३।७)

यह मंत्र घी लगाने के लिये उपयुक्त है। जिससे रूप-समृद्धता होती है वही मंत्र यज्ञ की क्रिया के लिये अधिक उपयुक्त होता है।

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः। समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः॥

(ऋ० १०।१७७।१)

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्। तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्। (ऋ० ६।५।४)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः। पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः। (ऋ० ३।१८।१)

इनमें पहली और दूसरी ऋचायें उपयुक्त हैं। जो रूप-समृद्ध है वही यज्ञ में सिद्ध है।

नीचे की पाँच ऋचायें राक्षस को मारने के लिये हैं।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवां इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥ (ऋ० ४।४।१

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः। तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंन्दितो विसृज विष्वगुल्काः॥ (ऋ० ४।४।२)

प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः। यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत्॥

(ऋ० ४।४।३)

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते। यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्॥ (ऋ० ४।४।४)

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्॥ (ऋ० ४।४।५)

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥ (ऋ० १।१०।१२)

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥

(ऋ० १।८३।३)

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥

(ऋ० ६।५८।१)

अपश्यं गोपामनिपद्यमान मा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ (ऋ० १०।१७७।३)

यह अकेली चार ऋचायें हैं। सब मिल कर इक्कीस हो जाती हैं। इस पुरुष के भी इक्कीस अंग हैं। १० हाथ की उंगलियां, दस पैर की, और एक आत्मा। इस प्रकार आत्मा को २१ अंग वाला बना देता है। (२)

२०—अब नौ पवयाबी ऋचायें आती हैं :—

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥
सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥
पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम्।
महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥
सहस्र धारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न निमिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥४॥
पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान्।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५॥
प्रत्नान् मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६॥
सहस्र धारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु स्त्री प पवित्रा हृद्यन्तरादधे ।
विद्वान्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ।।८।।
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत् समिनक्षन्त आशताऽत्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ।।९।।
(ऋ० ९।७३।१-९)

प्राण नौ हैं। इन नौ ऋचाओं से वह (प्रवर्ग्य में) प्राण स्थापित करता है।

अब वह कहता है :—

अय वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ।।
(ऋ० १०।१२३।१)

(इस मन्त्र को पढ़ते हुये जब 'अयं' का उच्चारण करता है तब होता अपनी नाभि की ओर संकेत करता है)। 'अयं' नाभि के लिये आया है। क्योंकि कुछ प्राण नाभि के ऊपर "वेनंति" अर्थात् चलते हैं और कुछ नीचे। इसलिये 'वेन' का अर्थ है नाभि। क्योंकि प्राण नाभि से चलते हैं। 'नाभि' का नाभित्व यही है। इस मन्त्र का उच्चारण करके 'होता' 'प्रवर्ग्य' में प्राण-प्रतिष्ठा करता है।

अब वह कहता है :—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ।। (ऋ० ९।८३।१)

*वियत् पवित्रं धिषणा अतन्वत ···

इन मन्त्रों में 'पवित्र' शब्द आया है। इसलिये प्राण पवित्र होते हैं। यह निचले अंग के प्राण हैं। इसलिये इन तीन मन्त्रों को पढ़ कर वह प्रवर्ग्य में वीर्य, मूत्र और पुरीष धारण कराता है। (३)

---

*पता नहीं कि यह कहां का मंत्र है। देखो आश्व० श्रौ० ४।६।३।

२१—अब वह नीचे के मन्त्र को बोलता है :—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

(ऋ० २।२३।१

इस मन्त्र का देवता ब्राह्मणस्पति है। ब्रह्म ही बृहस्पति है। ब्रह्म के ही द्वारा उसकी चिकित्सा करता है।

नीचे के तीन मन्त्र घर्मतनु हैं :—

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥१॥

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद् यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥२॥

तेऽविन्दन् मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन् घर्ममेते ॥३॥

(ऋ० १०।१८१।३)

इनको पढ़कर होता प्रवर्ग्य को शरीर और रूप युक्त कर देता है।

पहले मंत्र के चौथे पाद में है "रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः" अर्थात् 'वशिष्ठ रथन्तर साम को लाया' और दूसरे मंत्र के चौथे पाद में है:—"भरद्वाजो बृहदाचक्रे अग्नेः" अर्थात् "भरद्वाज ने अग्नि से बृहत् साम बनाया"। इन मंत्रों को पढ़ कर होता प्रवर्ग्य को रथन्तर साम और बृहत् साम से युक्त कर देता है।

नीचे के तीन को पढ़ कर जिनका ऋषि प्रजावान् प्राजापत्य है, वह प्रवर्ग्य को सन्तान-युक्त कर देता है :—

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१॥

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनूऋत्व्ये नाधमानाम्। उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२॥

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥३॥

(ऋ० १०।१८३।१-३)

अब होता भिन्न-भिन्न छन्दों वाले नीचे के नौ मंत्रों को बोलता है :—

(१) का राधद् धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्य-प्रचेताः ॥

(२) विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः । नू चिन्नुमर्ते अक्रौ ॥

(३) ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेत मद्य । प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ॥

(४) वि पृच्छामि पाक्या न देवान् वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा । पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥

(५) प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ॥

(६) श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ॥

(७) युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततं सतम् । ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥

(८) मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः । स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥

(९) दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै । इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ (ऋ० १।१२०।१-९)

यह भिन्न-भिन्न छन्दों के मंत्र इस लिये बोले जाते हैं कि यज्ञ रूपी शरीर के बाह्य अंग (हाथ पैर आदि) भिन्न-भिन्न परिमाण के होते हैं, कोई पतले, कोई मोटे। इसलिये इन मंत्रों का परिमाण भी भिन्न-भिन्न होता है। इन्हीं मंत्रों द्वारा ऋषि कक्षीवान् अश्विनों के प्रिय धाम तक पहुँच गया। और उसने परमलोक को जीत

लिया। जो जो इस रहस्य को समझता है वह अश्विनों के प्रिय धाम तक पहुँच जाता है और परम लोक को जीत लेता है।

अब नीचे का सूक्त बोलता है :—

आभात्यग्निरुष सामनीकमुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
अर्वाञ्चा नून रथ्येह यात पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह। दिवाभिपित्वेऽ व साऽगमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शं भविष्ठा ॥२॥

उता यातं सङ्गवे प्रातरह्वा मध्यदिन उदिता सूर्यस्य। दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पातिरश्विना ततान ॥३॥

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम्। आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयो भुवा सुप्रणीती गमेम। आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥ (ऋ० ५।७६।१-५)

पहले मन्त्र के चौथे पाद में "पीपिवांसं अश्विना घर्ममच्छ यह शब्द यज्ञ के बिल्कुल उपयुक्त हैं। जिनमें रूप-समृद्धता होती है उन्हीं से सफलता होती है। यह त्रिष्टुभ छन्द में हैं। त्रिष्टुभ् वीर्य है। इसलिये इन मन्त्रों के द्वारा प्रवर्ग्य में वीर्य (शक्ति) धारण कराता है।

अब वह नीचे का सूक्त पढ़ता है :—

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ। ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराऽजेव यमा वरमा सचेथे। मेने इव तन्वाशुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः। चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्राऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३॥

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव। श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक्। हस्ताविव तन्वेइ शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः। नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि। इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम ॥७॥

एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्। तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥ (ऋ० २।३९।८)

इस सूक्त में आंख, कान, नाक का वर्णन है। इसलिये इस सूक्त को पढ़ कर वह प्रवर्ग्य रूपी यज्ञ-पुरुष में इन्द्रियों को धारण कराता है।

यह सूक्त भी त्रिष्टुभ् में है। त्रिष्टुभ् वीर्य है। इस प्रकार वह प्रवर्ग्य में वीर्य को धारण कराता है।

अब वह इस सूक्त को पढ़ता है :—

ईळे द्यावा पृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये इति* ॥

(ऋ० म० १, सूक्त ११२)

इसमें "अग्निं घर्मं सुरुचं" शब्द आये हैं। इसलिये इनमें रूप-समृद्धता है। जहां रूप-समृद्धता है वहां सफलता है।

यह सूक्त जगती छन्द में है। पशु जगती से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये इस सूक्त के पाठ द्वारा वह पशुओं को प्रवर्ग्य में धारण करता है। इस सूक्त में ऐसे शब्द आये हैं जैसे "याभिर-मुमावतं" (दो बार) अर्थात् अश्विन देवों ने यह प्राप्त कराया।† इस लिये इस सूक्त के पाठ से वह प्रवर्ग्य रूपी यज्ञ पुरुष को वह सब धारण कराता है जिसको देना अश्विन देवों को ठीक प्रतीत हो। इन मन्त्रों से वह प्रवर्ग्य को समृद्ध करता है।

---

* यह २५ मंत्र हैं। † सम्भवतः १।११२।२३

अब वह इस मन्त्र को पढ़ता है :—

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्त्ति भुवनानि वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः॥

(ऋ० ६।८३।३)

इस मंत्र में 'रुच' अर्थात् प्रकाश का वर्णन है। इस लिये इनको पढ़ कर वह प्रवर्ग्य को प्रकाश युक्त करता है।

अब वह नीचे के मंत्र से समाप्त करता है :—

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

(ऋ० १।११२।२५)

इसमें "अरिष्टेभि....पृथिवी उत द्यौः" शब्द आये हैं। इनसे वह प्रवर्ग्य के लिये जो कुछ चाहिये उस सब से उसको युक्त कर देता है।

यह प्रवर्ग्य के लिये मन्त्रों का पहला भाग हुआ। (४)

२२—प्रवर्ग्य के अन्तिम मन्त्र यह हैं :—

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्। श्रेष्ठं सवं सविता साविषन् नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम्॥

(ऋ० १।१६४।२६)

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्। दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय॥

(ऋ० १।१६४।२७)

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे।

(ऋ० १।२४।३)

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्। देवाव्यं मदमभि द्विशवसम्॥

(ऋ० ६।१०४।२)

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते। देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः॥

(ऋ० ६।१०५।२)

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि। यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥

(ऋ० १।१६४।४६)

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन् मातवा उ। सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥

(ऋ० १।१६४।२८)

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन। इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥

(ऋ० ६।११।६)

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्। रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ (ऋ० १।७२।५)

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत्। खेदया त्रिवृता दिवः ॥

(ऋ० ८।७२।८)

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः। तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥

(ऋ० ८।७२।७)

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आगतं। दुह्यन्ते गावो वृषणेह धेनवो दस्रामदंतिकारवः ॥

(आश्व० ४।७)

समिद्धो अग्निर्वृषणारतिर्दिवस्तप्तोघर्मो दुह्यते वामिषेमधु। वयं हि वां पुरुतमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥

(आश्व० ४।७)

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः। उपह्वरे यदुपरा अपिन्वनमध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ (ऋ० १।६२।६)

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं विजायते। समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥ (ऋ० ६।७४।४)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥

(ऋ० १।४०।१)

अधुक्षत् पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्तरश्मिभिः ॥

(ऋ० ८।७२।१६)

उपद्रव पयसा गोधुघोषमावर्मेरसंचपय उस्रियायाः । विश्राकमरव्यत् सविता वरेण्योनुद्यावा पृथिवी सुप्रणीतिः । (आश्व० ४।७)

आसुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसादधीत वृषभम् ॥
(ऋ० ८।७२।१३)

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना । आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ (ऋ० ८।६।८)

समुत्ये महतीरपः संक्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥
(ऋ० ८।७।२२)

यह इक्कीस ऋचायें यज्ञ की अनुरूप हैं । जो यज्ञ का अनुरूप होता है वह समृद्ध होता है ।

होता (सब के पीछे) खड़ा होकर कहता है :—

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः । घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥
(ऋ० ६।७१।१)

आगे जाकर कहता है :—

प्रैतु ब्राह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ (ऋ० १।४०।३)

खर* की ओर देखकर कहता है :—

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः । गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥
(ऋ० ९।८३।४)

नीचे का मंत्र पढ़ कर बैठ जाता है :—

---

* खरः प्रवृञ्जनस्थानम् (सायण) Alquadrangular mound of earth for receiving the sacrificial vessels (यज्ञपात्र रखने की चबूतरी)

नाके सुपर्णमुपपतिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः। शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम्॥ (ऋ० ६।८५।११)

नीचे के दो मन्त्रों से पूर्वाह्न आहुतियां देता है :—

(१) तमो वां घर्मो नक्षतु स्व होता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान्। मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः॥

(अथर्व० ७।७३।५)

(२) उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥ (ऋ० १।४६।१५)

'अग्नेवीहि' (अग्नि खाओ) इस कृत्य के पश्चात् स्विष्ट-कृत के स्थान में वषट्कार होता है।

नीचे के दो मन्त्रों से अपराह्न की आहुतियां देता है :—

(१) यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयो यं स वामश्विना भाग आ गतम्। माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः॥

(अथर्व० ७।७३।४)

(२) अस्य पिबत मश्विना युवं मदस्य चारुणः। मध्वो रातस्य धिष्ण्या॥ (ऋ० ८।५।१४)

अब 'अग्नेवीहि' कृत्य और तत्पश्चात् स्विष्टकृत के स्थान में वषट्कार होता है।

स्विष्टकृत के लिये हवि में से तीन भाग काटते हैं। अर्थात् सोम के, घर्म के (जो प्रवर्ग्य पात्र में है) और 'वाजिन' अर्थात् गर्म मट्ठे के। जब होता इस प्रकार वषट् बोलता है तो स्विष्ट-कृत की कमी पूरी हो जाती है।

अब ब्रह्मा इस मन्त्र को जपता है :—

विश्वा आशा दक्षिणसाद् विश्वान्देवानयालिह। स्वाहा कृतस्य घर्मस्यमध्वः पिबतमश्विते॥ (आश्व० ४।७)

आहुतियों के देने के पश्चात् होता नीचे लिखे सात मंत्रों को पढ़ता है :—

(१) स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥
(अथर्व० ७।७३।३)

(२) समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि। ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥
(ऋ० १०।१२३।२)

(३) द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥
(ऋ० १०।१२३।८)

(४) सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या। अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ (ऋ० ४।१।३)

(५) ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥
(ऋ० १।३६।१३)

(६) ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥
(ऋ० १।३६।१४)

(७) तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते। अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ (ऋ० ८।६९।१७)

अब होता नीचे के मंत्र पढ़ कर खाना चाहता है :—

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः। अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ (ऋ० ३।२।६)

खाते हुये कहता है :—

"जलती हुई अग्नि में डाली हुई मीठी हवि में से हम खावें। हे देव घर्म ! तू मीठी चीज वाला, अन्न वाला, गर्म-गर्म है। (तुझमें से हम खावें)। तुझे नमस्कार हो। तू मुझे मत सताना"।

जब प्रवर्ग्य पात्र रख दिया जाता है तो होता नीचे के दो मंत्रों को पढ़ता है :—

श्येनो न योनिं सदनं धियाकृतं हिरण्ययमासदं देव एषति। एरिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः॥

(ऋ० ९।७१।६)

आवदिनन् त्सतवासवारोहंतु पूर्व्यारुहः। ऋषिर्हं दीर्घश्रुत्तमं इन्द्रस्य घर्मो अतिथिः॥ (आश्व० ४।७)

दिन के किसी भाग में प्रवर्ग्यपात्र को उठावे, तो यह मन्त्र पढ़ा जाय :—

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम्। राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्र भृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत्॥

(ऋ० ९।८३।५)

नीचे के मंत्र से समाप्त करता है :—

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥

(ऋ० १।१६४।४०)

यह जो घर्म है वह देवों का जोड़ा (स्त्री-पुरुष) है। यह जो घर्म पात्र है वह शिश्न (उपस्थ) है। उसके दो शफ (अर्थात् उठाने के दो लोहे के कड़े) अण्डकोश हैं। उपनयमनी (लकड़ी का बना दूध पीने का चमचा) जंघा हैं। कपाल में जो दूध है वह वीर्य है। यह वीर्य उत्पत्ति के निमित्त अग्नि में डाला जाता है क्योंकि अग्नि इन देवों की योनि है। जो इस रहस्य को समझ कर यज्ञ करता है, वह अग्नि देवयोनि की आहुतियों में से उत्पन्न होता है क्योंकि अग्नि देव-योनि है। और ऋक् युक्त, यजुर्युक्त, सामयुक्त, वेदयुक्त और ब्रह्ममय, अमर हो जाता है। (५)

२३—देव और असुर इन लोकों में लड़ने लगे। असुरों ने इन लोकों को गढ़ बना लिया जैसे शक्तिशाली राजा किया करते

दी. चौबीस हो गई। चौबीस ही पाख होते हैं। इस प्रकार उन्होंने पाखों से असुरों को निकाल दिया। पाखों से निकल कर असुर 'रात दिन' में चले गये। देवताओं ने कहा "उपसद आहुतियां दें"। उन्होंने ऐसा ही किया। जो दोपहर के पहले उपसद आहुति दी उससे तो असुरों को दिन में से निकाला और जो आहुति दोपहर के बाद दी उससे उनको रात से निकाला। इस प्रकार वह असुर रात और दिन दोनों से निकल गये। अत्र में पहली उपसद आहुति पूर्वाह्न में दी जाती है और दूसरी अपराह्न में। ऐसा करने से यज्ञ करने वाला, शत्रु के लिये केवल इतना ही स्थान छोड़ता है जितना दिन और रात के बीच में है। (६)

२४—उपसद जितय अर्थात् विजय के देवता हैं। क्योंकि इन्हीं के द्वारा देवों ने पूर्ण विजय पाई और अपने शत्रुओं को नाश कर दिया। जो इस रहस्य को समझता है वह विजय पाता है और शत्रुओं का नाश करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह इन लोकों, ऋतुओं, महीनों, पाखों और रात-दिनों में देवताओं ने जो जो विजय पाई उस सबको प्राप्त कर लेगा।

देव डर गये कि कहीं असुरों को उनके वैमनस्य की सूचना मिल जाय और वह उनका राज्य ले लें। वह दलों में बँट गये और सोचने लगे। अग्नि वसुओं के साथ गया और विचारने लगा। इन्द्र रुद्रों के साथ। वरुण आदित्यों के साथ। बृहस्पति विश्वेदेवों की साथ। वे इस प्रकार दल बना कर सोचने लगे। उन्होंने कहा, "हमारे जो यह प्रियतम शरीर हैं उनको राजा वरुण के घर में रख दें। हममें से जो कोई लोभवश ऐसा न करे वह हमारे साथ न चले।"

उन्होंने अपने शरीरों को वरुण राजा के घर में रख दिया। राजा वरुण के घर में अपने शरीरों को रखने का नाम ही

"तानूनप्त्रम्" (शरीरों को जोड़ना) है। इसीलिये कहावत है कि जो कोई 'तानूनप्त्रम्' से युक्त होता है उसे कोई हानि नहीं होती। इस लिये असुर उनके राज्य को नहीं जीत पाये। (८)

२५—'आतिथ्य इष्टि' यज्ञ का सिर है, 'उपसद' गर्दन है। दो कुश बराबर होते हैं क्योंकि सिर और गर्दन बराबर हुआ करते हैं। देवों ने 'उपसद' से बाण का काम लिया। अग्नि उस बाण का अनीक (अगला भाग) था, सोम लोहे वाला भाग (शल्य), विष्णु नोक (तेजन) और वरुण पर्ण या तीर का पंख। देवों ने आज्य-रूपी इस बाण को छोड़ दिया और इससे असुरों के दुर्गों को तोड़ कर उनमें घुस गये। आज्य आहुति में यही चार देव होते हैं। यजमान पहले (गाय के) चार स्तनों से दूध पीने का कृत्य करता है क्योंकि उपसद-सम्बन्धी बाण के चार भाग होते हैं, अनीक, शल्य, तेजन और पर्ण। फिर वह तीन थनों से पान करने का कृत्य करता है क्योंकि उपसद-सम्बन्धी बाण के तीन भाग होते हैं अनीक, शल्य और तेजन। फिर दो थनों का व्रत करता है क्योंकि उपसद सम्बन्धी बाण में दो भाग हैं अनीक और शल्य। फिर वह एक थन का व्रत करता है क्योंकि उपसद सम्बन्धी एक ही बाण होता है। एकता से ही तो काम चलता है। कुल ऊपर जो लोक हैं वह विस्तृत हैं। जो नीचे हैं वह सिकुड़े हुये। उतने थनों से आरंभ करता है जो विस्तृत लोकों के सूचक हैं और क्रम से घटता है। इतना इन लोकों के लिये हुआ।

(अब पूर्वाह्ण और अपराह्ण उपसद कृत्य में सामिधेनियों का वर्णन है)।

(१) उपसद्याय मीलहुष आस्ये जुहुता हविः। यो नो नेदिष्ठमाप्यम्॥ (ऋ० ७।१५।१)

(२) यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमे दमे। कविर्गृहपतिर्युवा ॥
(ऋ० ७।१५।२)

(३) स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः। उतास्मान् पात्वंहसः ॥
(ऋ० ७।१५।३)

(४) इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥
(ऋ० २।६।१)

(५) अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे। एना सूक्तेन सुजात ॥
(ऋ० २।६।२)

(६) तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः। सपर्येम सपर्यवः ॥
ऋ० २।६।३)

तीन तीन सामिधेनी बोलनी चाहियें (तीन पूर्वाह्न में और तीन अपराह्न में)। यह रूपसमृद्ध है। जब रूपसमृद्धता होती है अर्थात् जो कृत्य करना होता है उसी का उन ऋचाओं में वर्णन होता है तभी यज्ञ सफल होता है।

याज्य और अनुवाक्य में यह ऋचायें बोलनी चाहियें जो जघ्निवती हैं। अर्थात् जिनमें 'हन्', 'मारना' धातु का प्रयोग है। यह ये हैं :—

(१) अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः ॥
(ऋ० ६।१६।३४)

(२) य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृंगो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥
(ऋ० ६।१६।३६)

(३) त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥
(ऋ० १।९१।५)

(४) गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव ॥
(ऋ० १।९१।१२)

(५) इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥
(ऋ० १।२२।१७)

(६) त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥ (ऋ० १।२२।१८)

(प्रात:काल का क्रम यही है अर्थात् पहले तीन याज्य और पिछले तीन अनुवाक्य)। अपराह्न काल का क्रम पलट जाता है अर्थात् पिछले तीन याज्य और पहले तीन अनुवाक्य।

इन्हीं उपसदों द्वारा देवों ने असुरों को जीता और उनके दुर्गों को तोड़ कर उसमें घुस गये।

उपसद मन्त्र एक ही छन्दों में हों, भिन्न-भिन्न छन्दों में नहीं। यदि भिन्न-भिन्न छन्द के होंगे तो राजा का दण्ड यजमान की गर्दन पर होगा। होता रोग को उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। इसलिये मन्त्र एक ही छन्द में हों, भिन्न-भिन्न छन्दों में नहीं।

जनश्रुति के लड़के उपाविः ने उपसदों के विषय में ब्राह्मण में ऐसा कहा है—"इसी उपसद के कारण अश्लील (कुरूप) श्रोत्रिय का मुख भरा-भरा लगता है। और वह गाता सा प्रतीत होता है।" यह उसने इसलिये कहा कि उपसदों में जो आज्य हवि होती है वह गर्दन में और मुख पर रक्खी सी होती है। (शायद इसका तात्पर्य यह है कि आहुति में दिया हुआ घृत गले और मुख पर असर डालता है—ले०)। (८)

२६—यह जो प्रयाज या अनुयाज हैं वे देवों के कवच हैं। (उपसद-इष्टि में) प्रयाज और अनुयाज नहीं होते जिससे तीर तेज हो और पीछे न हटे। (वेदी और आहवनीय के बीच की सीमा में) खड़ा होकर होता मन्त्रों को बोलता है जिससे यज्ञ क़ाबू में रहे और चला न जाय।

कहते हैं कि सोम राजा के पास घृत छूने का कृत्य (तानूनप्त्रम्) करना क्रूरता है। कारण यह है कि इन्द्र ने घृत के वज्र से ही

वृत्र को मारा था। सोम की क्षति को पूरा करने के लिये सोम पर जल छिड़कते हैं। और इस मंत्र को पढ़ते हैं :—

अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्या यतामिन्द्रायैकधनविद आतुभ्यमिंद्रः प्याय-तामात्वमिंद्राय प्यायस्वाप्याययास्मान् सखीन्। सन्यामेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामुदचम शीय। (तै० १।२।११।२)

जब वह सोम के पास घृत छूने का कृत्य करके उसके साथ क्रूरता करते हैं तो उस पर जल छिड़क कर उसकी क्षति को पूरा कर देते हैं और उसको बढ़ा देते हैं।

वह जो सोम राजा है वह द्यौ और पृथिवी का गर्भ है। नीचे का मंत्र पढ़ के :—

एष्टा राय एष्टा वामानि प्रेषे भगाय। ऋतमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमः पृथिव्या इति।

प्रस्तर अर्थात् कुशों के दो बंडलों को (वेदी के दक्षिण कोने में) फेंक देते हैं। द्यौ और पृथ्वी को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार वह उन दोनों को बढ़ाते हैं। (९)

ऐतरेय ब्राह्मण की पहली पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त।

पाँचवाँ अध्याय

• सोम क्रय तथा अग्नि प्रणयन

२७—सोम राजा गन्धर्वों के पास था। देवों और ऋषियों ने विचारा कि यह सोम राजा हम तक कैसे आवे। वाणी बोली कि गन्धर्व स्त्रियों को चाहते हैं। मैं स्त्री बन जाऊँगी तो तुम (सोम के बदले) मुझे बेच देना। देवों ने कहा, "नहीं, हम तेरे बिना कैसे रहेंगे?" उसने कहा, "मुझे उनके हाथ बेच दो। यदि तुम चाहोगे तो मैं तुम्हारे पास लौट आऊँगी।" उन्होंने ऐसा ही किया। और एक बड़ी नंगी स्त्री के रूप में उसे बेच कर सोम ले लिया। उसी के अनुकरण रूप में एक बछिया के बदले सोम मोल लिया जाता है। उस बछिया को फिर वापिस खरीद लेते हैं क्योंकि वह वाणी वापिस आ गई थी। इसीलिये (सोम खरीदने के बाद) मंत्र धीरे-धीरे बोलते हैं। क्योंकि सोम खरीदने पर वाणी गन्धर्वों के पास होती है। परन्तु अग्नि-प्रणयन के बाद वह फिर वापिस आ जाती है। (१)

२८—(अग्नि प्रणयन* कृत्य का वर्णन आगे है)। अध्वर्यु होता को आदेश करता है कि (जब अग्नि को उत्तरवेदी में ले जाना हो तो) अग्नि प्रणयन के उचित मंत्र बोलो। (वह पढ़ता है :—)

'प्रदेवं देव्या धिया भरता जातवेदसम्। हव्या नो वक्षदानुषक्॥

(ऋ० १०।१७६।२)

ब्राह्मण हो तो गायत्री छन्द बोले क्योंकि ब्राह्मण गायत्री वाला है। गायत्री तेजयुक्त और ब्रह्मवर्चस-युक्त है। इस प्रकार वह यजमान को तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी करता है।

यदि क्षत्रिय हो तो त्रिष्टुप्† छन्द में यह मन्त्र बोले :—

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत् कृत्व ईड्याय प्रजभ्रुः।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वाग्निर्दिव्यैरजस्रः॥

(ऋ० ३।५४।१)

त्रिष्टुभ् वाला क्षत्रिय है। त्रिष्टुभ् ओज, इन्द्रिय-बल और पराक्रम युक्त है। इस प्रकार वह यजमान को ओज, इन्द्रिय-बल और पराक्रम-युक्त कर देता है। इस मन्त्र में जो कहा "शश्वत् कृत्व ईड्याय प्रजभ्रुः (अर्थात् सदा पूजनीय के लिये लाये) इससे होता यजमान को उसके सम्बन्धियों के ऊपर श्रेष्ठ बनाता है। यह जो कहा :—

शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः।

(अग्नि हमारी बात को तेज चिंगारियों से सुने। अग्नि निरन्तर हमको दिव्य प्रकाश के द्वारा सुने।) इससे ऐसा ही

---

* 'अग्नि-प्रणयन' का अर्थ है अग्नि को ले जाना। यह कृत्य तब होता है जब अग्नि को उत्तरवेदी में ले जाते हैं।

† इस मंत्र का छन्द 'पंक्ति' है। ऋग्वेद में भी इसका "निचृत्-पंक्ति" ही छन्द दिया हुआ है। न जाने यहाँ त्रिष्टुभ् क्यों दिया ?

होता है। अग्नि बुढ़ापे तक निरन्तर उसके घर में रहती है।

यदि वैश्य हो तो नीचे का जगती* छन्द वाला मन्त्र बोले :—

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे॥
(ऋ० ४।७।१)

वैश्य जगती वाला है। पशु जगती वाले हैं। इस प्रकार वह यजमान को पशु-युक्त कर देता है। चौथे पाद में "वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे" में विश शब्द वैश्य के अर्थ में आया है। इससे इसमें रूप समृद्धता है। जो रूप समृद्ध है वही यज्ञ में सफलता देता है।

अयमुष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते। रथो न योरभीवृतो घृणी-वाञ्चेतति त्मना॥ (ऋ० १०।१७६।३)

इस अनुष्टुभ् वाले मंत्र से वाणी को छोड़ता है (अर्थात् जोर से बोलता है)। अनुष्टुभ् वाणी है। अनुष्टुभ् छन्द बोल कर वह वाणी को वाणी में छोड़ता है।

'अयमुष्य' से यह तात्पर्य है कि "मैं जो पहले गन्धर्वों के साथ थी अब वापिस आ गई।"

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः। सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः॥ (ऋ० १०।१७६।४)

(यह अग्नि अपनी अमृत प्रकृति से हमको निडर बनाती है) इस मंत्र को पढ़ कर वह यजमान को अमर बनाता है।

दूसरे पाद "सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः" (देवता हमारे जीवन के लिये अपनी शक्ति द्वारा शक्तिशाली बनाया गया) से यह तात्पर्य है कि मंत्र को पढ़ कर अग्नि को अपने जीवन का रक्षक बनाता है।

---

* यह वेद में त्रिष्टुभ् दिया हुआ है।

अब होता पढ़ता है :—

इला यास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि । जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढ्लवे ॥ (ऋ० ३।२६।४)

(हे जातवेद अग्नि हम तुमको पृथिवी की नाभि में इला के स्थान में हवि के ले जाने के लिये रखते हैं)। "इला के पद" का अर्थ है उत्तरवेदी की नाभि। 'जातवेदोनिधीमहि' का अर्थ है कि 'वह अग्नि हवि को ले जायगा।'

अब होता पढ़ता है :—

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीदयोनिम् । कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ।। (ऋ० ६।१५।१६)

(हे अग्नि सब देवों के साथ पहले अपनी ऊन से भरी हुई योनि या स्थान में बैठ। सविता रूपी यजमानों के लिये घी वाले यज्ञ की आहुतियों को ले जा)। 'अग्ने विश्वेभिः' कह कर वह अग्नि को अन्य देवों के साथ बिठाता है। "कुलायिनं घृत वन्तं सवित्रे" कह कर देवदारु की लकड़ियों, गुग्गल, ऊन, और सुगन्ध युक्त घास से अग्नि के लिये यज्ञ में चिड़िया के घोंसले के समान स्थान बनाया जाता है, 'यज्ञं नय यजमानाय साधु' कह कर यज्ञ को सीधा अग्नि पर रखता है।

अब होता नीचे का मंत्र पढ़ता है :—

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ॥

(ऋ० ३ २९।८)

[हे होता (अर्थात् अग्नि) अपने स्थान में बैठ, हे प्रसिद्ध (अग्नि) सुकृत अर्थात् अच्छी तरह बने हुये घोंसले के सूराख (योनि) में यज्ञ को बिठाल। हवि के साथ देवों के पास जाने वाले अग्नि! देवों के लिये मन्त्र बोल (यज)। हे अग्नि यजमान के लिये वृद्धि और आयु को धारण करो]।

अग्नि देवों का होता है। उत्तरवेदी की नाभि ही उसका अपना लोक है। 'सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ' में यजमान ही यज्ञ है। इसलिये यजमान के लिये आशीर्वाद है। "देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धा' में प्राण ही वयः है। ऐसा कह कर यजमान में प्राण धारण कराता है।

अब होता नीचे का मन्त्र पढ़ता है :—

निहोता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः। अदब्ध व्रत प्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः॥ (ऋ० २।६।१)

[ज्ञानवान्, प्रकाशवान्, और दक्ष होता होतृ के स्थान में बैठा। वह होता अग्नि कैसा है ? अदब्धव्रतप्रमति (उचित व्रतों का जानने वाला), वसिष्ठ (उत्तम), सहस्रंभर (हजारों का पोषण करने वाला), शुचिजिह्वः (चमकदार जीभ वाला] ।

अग्नि देवों का होता है। उत्तर वेदी की जो नाभि है वह उसका बैठने का स्थान है। 'बैठ गया' से तात्पर्य है कि 'वह रख दिया गया'। 'उचित व्रत का जानने वाला और उत्तम' से तात्पर्य है कि देवों का अग्नि वसिष्ठ अर्थात् उत्तम है। 'सहस्र भर' का अर्थ है कि यद्यपि अग्नि एक है तो भी भिन्न २ अवसरों पर प्रयुक्त होने के कारण उसमें बहुत्व हो जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह हजारों का लाभ पाता है। नीचे का मंत्र पढ़ कर समाप्त करता है :—

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभप्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः॥

(ऋ० २।६।२)

(तू हमारा दूत है। तू हमारा पीछे भी रक्षक है। हे बलवान्, तू धन का लाने वाला है। हे अग्नि, हमारे घराने के फैलने में शरीरों की रक्षा में, असावधानी न कर। चमकने वाला गोप जागता था)।

अग्नि देवों का गोप या ग्वाला है। जो इस रहस्य को समझ कर अग्नि-प्रणयन के कृत्य को इस मंत्र से समाप्त करता है वह अपने और यजमान के लिये अग्नि को हर स्थान पर अपना गोप या रक्षक पाता है और साल भर तक कल्याण लाभ करता है।

वह इन आठ मंत्रों को पढ़ता है जो रूप-समृद्ध हैं। जिसमें रूप-समृद्धता होती है अर्थात् जो मंत्र पढ़ा जाय उसमें वही क्रिया वर्णित हो उसी से यज्ञ सफल होता है। इनमें पहला तीन बार पढ़ा जाता है और आखिरी तीन बार। इस प्रकार बारह हो जाते हैं। साल में बारह मास होते हैं। संवत्सर को प्रजापति कहते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह इन प्रजापति-सम्बन्धी ऋचाओं द्वारा सुखी होता है। पहली और पिछली ऋचा को तीन बार पढ़ कर वह यज्ञ के दोनों सिरों को बांधता है जिससे यज्ञ काबू में रहे और गिर न पड़े। (२)

२९—अध्वर्यु होता को आदेश देता है कि दोनों हविर्धानों (वह बर्तन जिसमें हवि रक्खा जाय) के ले जाने के लिये उचित मंत्र पढ़ो।

वह पढ़ता है।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृत स्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥
(ऋ० १०।१३।१)

ये देव ब्रह्म से युक्त हुये। दोनों हविर्धानों को ब्रह्म से युक्त करता है। इस प्रकार ब्रह्म की शक्ति पाकर विपत्ति में नहीं पड़ता।

अब नीचे के तीन मंत्रों (तृचों) को बोलता है :—

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम्॥
ऋ० २।४१।१९)

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥
(ऋ० २।४१।२०)

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोम पीतये ॥
(ऋ० २।४१।२१)

यह द्यावा-पृथिवी के मंत्र हैं।

यहां प्रश्न होता है कि जब हविर्धानों के ले जाने का प्रसंग था तो द्यावा-पृथिवी की तीन ऋचायें क्यों बोली गईं। इसका उत्तर यह है कि द्यौ और पृथिवी देवों के दो हविर्धान हैं। जो कुछ हवि यहां दिया जाता है वह सब द्यौ और पृथिवी के बीच में ही होता है। इसलिये द्यावा-पृथिवी बोधक ऋचायें पढ़ी गईं।

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥
(ऋ० १०।१३।२)

'यमे इव यतमाने यदैतं' का अर्थ है कि 'दोनों हविर्धान जुड़वां बहनों के समान हाथ पसार कर चलते हैं'। "प्रवां भूरन् मानुषा देवयन्तः" का अर्थ है कि 'आदमी देवों की पूजा करते हुये तुम दोनों को लाते हैं", 'स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः' में 'इन्दु' के नाम से सोम का वर्णन है। इस आधी ऋचा को पढ़ कर सोम राजा के बैठने का स्थान ठीक करता है।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥
(ऋ० १।८३।३)

यह जो 'उक्थ्यं वचः' है वह दो हविर्धानों का तीसरा ढकना है। क्योंकि 'उक्थ्यंवचः' यज्ञ का कर्म है इसलिये ऐसा कह कर यज्ञ की उन्नति करता है।

मंत्र में "यतस्रुचा......पुष्यति" तक में 'यत्त' वाले पद से जो 'क्रूरता' प्रकट होती है उसका "असंयत्त", पद से शमन करता

है "भद्रा शक्तिः" इत्यादि से यजमान के लिये आशीर्वाद देता है।

अब वह विश्वरूपी ऋचा पढ़ता है

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।

वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥

(ऋ० ५।८१।२)

इस मंत्र को ररराटी की ओर देखते हुए पढ़ना चाहिये, (रराटी दर्भ की माला है जो हविर्धान के बीच के खंभों पर लटकी रहती है —ले०)। क्योंकि इस रराटी पर ही सफेद और काली सभी तरह की चीजें टंगी रहती हैं। जो इस रहस्य को समझ कर ररार्टी की ओर देखते हुये मंत्र को बोलता है वह अपने लिये और यजमान के लिये हर एक प्रकार की चीज सम्पादित कर लेता है।

इस मंत्र को पढ़ कर समाप्त करता है।

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।

वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ (ऋ० १।१०।१२)

इस मंत्र को तब पढ़े जब दोनों हविर्धानों को दर्भ के गुच्छे से ढका हुआ मान ले। जो इस रहस्य को समझ कर दोनों हविर्धानों के ढक जाने पर इस मंत्र को पढ़ता है वह अपने और यजमान के लिये ओढ़ी पहनी हुई स्त्रियों का (जो नंगी न हों) सम्पादन करता है।

दोनों हविर्धान यजु-मंत्र से ढकं जाते हैं। अध्वर्यु इस यजु से इस प्रकार ढकते हैं। जब अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों ओर से मेथी (एक प्रकार की लकड़ियां) चलावें तब समाप्त करना चाहिये। क्योंकि तभी दोनों हविर्धान बन्द होते हैं। यह आठ ऋचायें जो बोली गईं रूप-समृद्ध हैं। जो रूप-समृद्ध होती हैं अर्थात् जिनमें उसी बात का विधान होता है। जो क्रिया की जाती है उसी से यज्ञ में सफलता होती है। इनमें से पहले और पिछले

को तीन बार बोलते हैं जिससे बारह हो जायं। क्योंकि साल में बारह महीने होते हैं। प्रजापति संवत्सर है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति सम्बन्धी इन ऋचाओं द्वारा समृद्धि को पाता है।

पहली और पिछली ऋचा को तीन २ बार पढ़ कर वह यज्ञ के दोनों सिरों को बांध देता है जिससे यज्ञ काबू में रहे और गिर न जाय। (२)

३०—(उत्तर वेदी में अग्नि और सोम को लाना)।

अग्नि और सोम के लाने पर अध्वर्यु होता को आदेश देता है कि उचित मंत्र पढ़ो।

वह सविता के मंत्र को पढ़ता है:—

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।

अथ स्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः॥

(अथर्व ७।१४।२, आश्व० श्रौ० ४।१०)

यहां प्रश्न होता है कि जब अग्नि और सोम के लाने का प्रसंग है तो सविता का मंत्र क्यों पढ़ा गया। (इसका उत्तर यह है) कि सविता प्रसव का स्वामी है। इस मंत्र को पढ़कर (अग्नि और सोम) दोनों को सविता द्वारा उत्पन्न कराते हैं। इस लिये सविता का मंत्र पढ़ते हैं।

अब वह ब्रह्मणस्पति की ऋचा पढ़ता है :—

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता।

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥

(ऋ० १।४०।३)

यहां प्रश्न होता है कि जब अग्नि और सोम के लाने का प्रसंग है तो ब्रह्मणस्पति का मंत्र क्यों पढ़ते हैं। (उत्तर यह है) कि बृहस्पति ही ब्रह्म है। इस मंत्र को पढ़कर ब्रह्म को (अग्नि और सोम) दोनों का पुरोगव अर्थात् नेता बना देता है और

यजमान ब्रह्म से युक्त होकर हानि नहीं उठाता। 'प्रदेव्येतु सूनृता' से यज्ञ को 'सूनृत' या-भद्र युक्त कर देता है। इसलिये ब्रह्मण-स्पति का मंत्र पढ़ता है।

अब अग्नि की गायत्री छन्द की तीन ऋचाओं को पढ़ता है:—

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन् ॥
(ऋ० ३।२७।७)

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते। विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥
(ऋ० ३।२७।८)

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे। दक्षस्य पितरं तना ॥
(ऋ० ३।२७।९)

जब सोमराजा को (उत्तर वेदी पर) एक बार ले गये तो असुरों और राक्षसों ने उसको 'सदस्' और हविर्धानों के बीच में मारना चाहा। अग्नि ने माया से उसको बचा लिया। जैसा कि मंत्र में है "पुरस्तादेति मायया" (माया से आगे २ चलता है)। अग्नि ने उसे इस तरह बचाया। इसलिये (सोम के) आगे २ अग्नि को ले चलते हैं।

अब नीचे लिखे तीन मंत्र और एक मंत्र बोलते हैं:—

(१) उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि।
(२) राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥
(३) स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥
(ऋ० १।१।७-९)

(४) उप प्रियं पनिप्रतं युवानमाहुतीवृधम् ॥ अगन्म बिभ्रतो नमः ॥
(ऋ० ९।६७।२९)

क्योंकि यह दो अग्नियाँ, एक जो पहले लाई गई और दूसरी जो पीछे लाई गई, यदि आपस में लड़ जायं तो यजमान को कष्ट देंगी। इन तीन और एक मंत्रों को पढ़ कर वह उन में

मित्रता कर देता है और उनको उन उन के स्थान में पहुँचा देता है, विना स्वयं अपने को या यजमान को हानि पहुँचाये हुये।

आहुति देते हुये इस मंत्र को बोलता है :—

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः॥

(ऋ० १।१४४।७)

इससे अग्नि को एक जुष्टि*(१) आहुति देता है।

जब सोम राजा को ले जाते हैं तो होता नीचे के तीन मंत्र जो गायत्री छन्द में हैं और सोम देवता के हैं पढ़ता है :—

(१) सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम्। ऋतस्य योनिमासदम्॥

(२) सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे। अनमीवा इषस्करत्॥

(३) अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः। सोमः सधस्थमासदत्॥

(ऋ० १।९१।१३,१४,१५)

इस मंत्र को पढ़ने से वह सोम को उसी के देवता और उसी के छन्द से बढ़ाता है।

'सोमः सधस्थमासदन्' यह अन्तिम शब्द जिनसे प्रकट होता है कि सोम अपने स्थान पर बैठ रहा है होता को उस समय पढ़ने चाहिये जब कि सोम को लिये जा रहे हैं और अग्नीध्र के आगे बढ़ गये हैं तथा होता की पीठ अग्नीध्र की ओर हो गई है। अब विष्णु देवता का नीचे का मंत्र जपता है :—

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते।

(ऋ० १।१५६।४)

---

*हौग ने जुष्टि का अर्थ किया है— 'as a favour" or रियायती। सायण कहता है कि यह आहुति 'अग्ने प्रियं' अग्नि को प्रिय लगने के लिये है।

(उस मरुतों के राजा विष्णु की बुद्धि का वरुण और दोनों अश्विन अनुकरण करते हैं। विष्णु अपने मित्रों सहित अन्धकार के स्थान को खोल कर दिन को उत्पन्न करता है।)

विष्णु देवों का द्वारपाल है। इस लिये वह सोम के लिये द्वार खोल देता है।

जब सोम को सदस् में रखने के निकट होते हैं तो यह मंत्र पढ़ता है :—

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य। इन्द विन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनुराय ऋध्याः। (ऋ० ८।४८।२)

जब सोम बैठ गया हो तो यह मंत्र पढ़ते हैं :—

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति। ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः।

(ऋ० ६।७१।६)

जैसे बाज पक्षी अच्छी तरह बनाये हुये घोंसले में बैठता है वैसे ही सोम देवता स्वर्ण के आसन पर बैठता है। आसनों पर प्यारी स्तुतियां चलती हैं और यज्ञ सम्बन्धी घोड़े के समान वह देवताओं तक पहुँचता है।

स्वर्ण के आसन से काले मृगचर्म का तात्पर्य है जिससे देवों का हवि ढका जाता है।

वरुण के इस मंत्र से समाप्त करता है :—

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः। आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि।

(ऋ० ८।४२।१)

(असुर अर्थात् प्राणों के रक्षक देव ने द्यौ को थामा और पृथिवी के विस्तार को नापा। उस सम्राट् ने सब लोकों में प्रवेश किया। यह सब वरुण के व्रत हैं)

सोम जब तक बंधा हुआ है तब तक वरुण के आधीन है। यह जब तक चल रहा है। इसको इसी के देवता और इसी के छन्द से समृद्ध करते हैं।

यदि कोई यजमान का आश्रय चाहे या उसकी रक्षा का मांगने वाला हो तो होता इस मंत्र से समाप्त करे :—

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम्। स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत् पातं नो द्यावा पृथिवी उपस्थे।

(ऋ० ८।४२।२)

जो इस रहस्य को समझ कर इस मंत्र से समाप्त करता है वह जितने लोगों के लिये चाहता है उनके लिये अभय प्राप्त कराता है। जो इस रहस्य को समझता है उसे इसी मंत्र से समाप्त करना चाहिये।

यह सब १७ मंत्र जो बोले गये रूप समृद्ध हैं। जो मंत्र रूप समृद्ध होते हैं अर्थात् जिनमें उसी कृत्य का वर्णन होता है जो किया जाता है उससे यज्ञ में सफलता होती है। इन १७ में से पहले और पिछले को तीन-तीन बार पढ़ा। इस प्रकार २१ हो गये। प्रजापति २१ अंक वाला है। क्योंकि प्रजापति में १२ मास, पांच ऋतुयें, तीन लोक और सूर्य शामिल हैं। सूर्य का स्थान सब से ऊँचा है। वह देवों का क्षत्र है, वह श्री है, वह आधिपत्य है, वह चमकने वाले का स्वर्ग है, वह प्रजापति का घर है। वह स्वाराज्य है। होता यजमान को इन १७ मंत्रों से समृद्ध कर देता है।

दूसरी पत्रिका

पहला अध्याय

१—यज्ञ द्वारा ही देव ऊँचे स्वर्ग लोक को गये। उनको भय हुआ कि हमारे इस (यज्ञ) को देखकर मनुष्य और ऋषि लोग पीछे से जिज्ञासा करेंगे। उन्होंने यूप (यज्ञ शाला का खंभा जिसमें पशु बांधते हैं) द्वारा उनको रोक दिया। (आयोपयन्) इसीलिये इसका नाम यूप पड़ा। (यूप का अर्थ हुआ वह जिसके द्वारा रोका जाय)। उन (देवों) ने स्वर्ग जाते हुये यूप को भूमि में इस प्रकार गाड़ा कि सिरा नीचे को रहे। तब मनुष्य और ऋषि भी देवों के यज्ञ करने के स्थान पर आकर सोचने लगे कि हमको भी यज्ञ के विषय में कुछ ज्ञान हो जाय। उन्होंने केवल यूप को पृथ्वी में नीचे की ओर सिरा किये हुये गढ़ा पाया। उन्होंने जाना कि इसी से देवों ने यज्ञ के रहस्य को छिपा दिया। उन्होंने यूप को उखाड़ दिया और उसका सिरा ऊपर को कर दिया। इससे उन्होंने यज्ञ को मालूम किया और स्वर्ग को देख लिया। यही प्रयोजन है कि यूप का सिरा ऊपर को करके गाड़ते हैं कि यज्ञ को जानें और स्वर्ग को देखें।

यह यूप वज्र है। इसमें आठ धारें होनी चाहियें। वज्र में आठ धारें होती हैं। जब कोई वज्र को अपने शत्रु या वैरी पर मारता है वह मर जाता है। जो वध करने के योग्य है उसका वध करने के लिये। यूप वज्र है जो शत्रु के मारने के लिये खड़ा किया जाता है। इसलिये जो यजमान से द्वेष करता है वह यह देखकर कि यह अमुक पुरुष का यूप है हानि को प्राप्त हो जाता है।

स्वर्ग की कामना वाला खदिर का यूप बनावे। क्योंकि खदिर का यूप बना कर ही देवों ने स्वर्ग को प्राप्त किया। इसी प्रकार खदिर का यूप बना कर ही यजमान स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

जो अन्न और पुष्टि की इच्छा करे वह बिल्व का यूप बनावे। बिल्व पर हर साल फल आता है। वह अन्न आदि का रूप है। वह मूल से शाखा तक बढ़ता है और पुष्टि का द्योतक है। जो इस रहस्य को समझ कर बिल्व का यूप बनाता है वह अपने बच्चों और पशुओं को पुष्ट करता है।

बिल्व के यूप के विषय में यह बात है कि बिल्व ज्योति है। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने जाति वालों में ज्योति होता है श्रेष्ठ होता है।

जिस को तेज और ब्रह्मज्ञान की इच्छा हो वह पलाश का यूप बनावे। वनस्पतियों में पलाश तेज और ब्रह्मवर्चस है। जो इस रहस्य को समझ कर पलाश का यूप बनाता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी होता है।

पलाश के यूप के विषय में यह है कि पलाश सब वनस्पतियों की योनि है। इसीलिये पलाश वृक्ष के पलाशों अर्थात् पत्तों का अनुकरण करके ही हर वृक्ष के पत्तों को 'पलाश' कहते हैं। जो

इस रहस्य को समझता है वह सब वृक्षों के सम्बन्ध में जो कामनायें होती हैं उनको पूरा कर लेता है। (१)

२—अध्वर्यु होता से कहता है, "हम यूप को चुपड़ते हैं। उपयुक्त मंत्र बोलिये।"

होता पढ़ता है :—

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन। यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे। (ऋ० ३।८।१)

(हे वनस्पति, तुझ को ऋत्विज लोग यज्ञ में दिव्य मधु से चुपड़ते हैं। जो तू सीधा खड़ा है या इस माता (भूमि) की गोद में पड़ा है हमको धन दे)।

यह जो घी है वही दिव्य मधु है। अगले टुकड़े से यह तात्पर्य है कि चाहें खड़ा हो चाहें पड़ा हो मुझे धन दे।

अब होता नीचे का मंत्र पढ़ता है :—

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि। सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे। (ऋ० ३।८।३)

(हे वनस्पति पृथिवी के ऊपर उठ। तू जो अच्छी तरह पड़ा हुआ है। यज्ञ के वाहक या ले जाने वाले के लिये तेज धारण करो)।

यह मंत्र यूप के उठाने के लिये रूप-समृद्ध है। जिस में रूपसमृद्धता होती है वही सफल होता है।

'वर्ष्मन् पृथिव्या अधि' से तात्पर्य है उस स्थान का जहाँ यूप गाड़ते हैं। "सुमितीमीयमानो वर्चोधा यज्ञवाहसे" से तात्पर्य है कि यूप से आशीर्वाद चाहता है।

अब होता नीचे का मंत्र पढ़ता है :—

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्। आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय। (ऋ० ३।८।२)

(प्रज्वलित अग्नि के सामने खड़ा हुआ तू नाश न होने वाले

और वीरता युक्त ब्रह्म तेज को देता है हमारे शत्रुओं को रोकता हुआ हमारे बड़े भाग्य के लिये खड़ा हो) 'समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात्' का अर्थ है प्रज्वलित हुई अग्नि के सामने। 'ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीर्यम्' से आशीर्वाद से तात्पर्य है ''आरे अस्मदमतिं बाधमानः'' का अर्थ है कि 'अमतिं' अर्थात् पाप या भूख है। इस से वह यज्ञ और यजमान को भूख से और पाप से मुक्त कर देता है। 'उच्छ्रयस्व' (खड़ा हो) आशीर्वाद है।

अब होता नीचे के मंत्र को पढ़ता है:—

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे। (ऋ० १।३६।१३)

(सीधा खड़ा हो ! सविता के समान ! हमारी रक्षा के लिये। खड़ा होकर अन्न दे। जब हम तुझ को बुलाते हैं उस समय जब कि ऋत्विज तुझ को चुपड़ते हैं) 'देवो न सविता' में 'न' का अर्थ है 'इव' या 'समान'। 'ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता' का अर्थ है अन्न का बांटने वाला। 'अंजिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे' का तात्पर्य है छन्दों से जिनके द्वारा देवों को बुलाते हैं। जब कई यज्ञों में देवों को बुलाते हैं कि 'मेरे यज्ञ में आइये'। 'मेरे यज्ञ में आइये' तो देवता उसके यज्ञ में जाते हैं जहाँ इस रहस्य को समझने वाला होता मंत्र पढ़ कर आवाहन करता है।

अब नीचे का मंत्र पढ़ता है :—

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः। * (ऋ० १।३६।१४)

(सीधे खड़ा होकर पाप से बचा। अपनी आग से सब मांसाहारियों के जला। हमको सीधा कर कि हम खड़े हो सकें और जी सकें। हमारे हवि को देवों तक ले जा)।

'अत्रिणं' या खाने वाले राक्षस हैं। इसके द्वारा यूप से पापी राक्षसों को मरवाता है। 'चरथायै' का अर्थ है 'चरणाय' (चलने

के लिये)। 'जीवसे' कहकर वह यजमान को छुड़ाता है चाहे उसे (मृत्यु ने) पकड़ ही क्यों न लिया हो। और उसे साल भर के लिये सुरक्षित कर देता है 'विदा देवेषु नो दुवः' से आशीर्वाद का तात्पर्य है (अपने कर्मों की सफलता के लिये प्रार्थना करता है)।

होता अब नीचे का मन्त्र पढ़ता है :—

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः। पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदि यर्ति वाचम्॥ (ऋ० ३।८।५)

(उत्पन्न होकर अपनी युवावस्था में मनुष्य के हित के लिये पढ़ता है। धीर लोक इसको बुद्धिमत्ता से अलंकृत करते हैं। ऋत्विक ब्राह्मण समूह देव विषयक वाणी का उच्चारण करता है। इस मन्त्र के पहले भाग को पढ़ कर वह (धूप को) बढ़ाते हैं। "पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा" पढ़ कर उसे पवित्र या अलंकृत करते हैं। 'देव या विप्र उदियीर्त वाचम्' से धूप को देवों के प्रति निवेदन करते हैं। अर्थात् उसका देवों को परिचय कराते हैं।

होता नीचे के मन्त्र के समाप्त करता है :—

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ (ऋ० ३।८।४)

(जवान वस्त्रों से अलंकृत आया है। वह उत्पन्न हुआ श्रेष्ठ है। बुद्धिमान विद्वान् लोग अपने उत्तम विचारों को प्रकट करके उसे बढ़ाते हैं)।

"युवा सुवासा" का अर्थ है प्राण। यह शरीरों से घिरा हुआ है। "श्रेयान् भवति जायमानः" 'यूप' से तात्पर्य है अर्थात् इस मंत्र को पढ़ने से यूप अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। 'कवयः' का अर्थ है वह मंत्र वाले विद्वान् जो 'यूप' को उन्नत करते हैं।

इन सात रूप-समृद्धता युक्त मंत्रों के पढ़ने से यज्ञ सफल हो जाता है। मंत्रों की रूप-समृद्धता यह है कि उन मंत्रों में उसी क्रिया का वर्णन हो जिसके करने में वह मंत्र पढ़े जाते हैं। इसी से यज्ञ की सफलता है। इनमें से पहले और पिछले को तीन तीन बार पढ़ते हैं। इस प्रकार यह ग्यारह हो जाते हैं। त्रिष्टुभ् छन्द के प्रत्येक पाद में ग्यारह ग्यारह अक्षर होते हैं। त्रिष्टुभ् इन्द्र का वज्र है। जो इस रहस्य को समझता है वह इन इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओं द्वारा वृद्धि पाता है। पहले और पिछले मंत्र को तीन तीन बार पढ़ने से मानो वह यज्ञ के दोनों सिरों में गांठ दे देता है। जिससे यज्ञ बँधा रहे और खिसक न जाय। (२)

३—अब प्रश्न उठता है कि यूप अग्नि के सन्मुख खड़ा रहे या अग्नि में डाल दिया जाय। इसका उत्तर यह है कि यदि पशु की कामना हो तो खड़ा रहे।

एक बार देवों को खाना प्राप्त कराने के लिये पशु खड़े नहीं रहे। वे भाग कर देवों से कहते रहे कि "तुम हमको न पाओगे। तुम हमको न पाओगे।" तब देवों ने इस यूप-वज्र को देखा और गाड़ दिया। इस प्रकार डर कर वह लौट आये। यही कारण है कि यूप की ओर मुख करके ही पशु आज भी खड़े होते हैं। इस प्रकार पशु देवों को भोजन प्राप्त कराने के लिये खड़े रहे। इसी भाँति जो इस रहस्य को समझता है और यूप को खड़ा रखता है उसके पशु भी उसको खाना प्राप्त कराने के लिये खड़े रहते हैं।

जिसको स्वर्ग की कामना हो उस यजमान के यूप को (आग में) छोड़ दे! पहले जमाने के यजमान 'यूप' को अग्नि में छोड़ देते थे। यूप यजमान है, प्रस्तर अर्थात् दर्भ यजमान हैं। अग्नि देवतों की योनि है। इन आहुतियों द्वारा यजमान देवों की

योनि से संयुक्त होकर स्वर्ग का शरीर धारण करके स्वर्ग को जाता है।

जो पिछले जमाने के यजमान थे वह कहते थे कि स्वरू यूप का टुकड़ा है। (इस लिये यूप का प्रतिनिधि है)। इस लिये उसी को अग्नि में डाल ते, इससे दोनों कामनायें पूरी हो जायंगी अर्थात् यूप को अग्नि में छोड़ने से जो बात सिद्ध होती है वह भी और यूप को खड़ा रखने से जो बात सिद्ध होती है वह भी।

जो पुरुष दीक्षित होता है वह अपने को सब-देवताओं को प्राप्त कराता है। अग्नि सब देवता हैं। सोम सब देवता हैं।

जब वह अग्नि और सोम दोनों के लिये पशु को अर्पण करता है तो यजमान सब देवताओं के लिये अपने को अर्पण करने से छुटकारा पा जाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि अग्नि और सोम के पशु के दो रूप होने चाहियें क्योंकि यह दो देवताओं का है। परन्तु इसकी आवश्यकता नहीं। यज्ञ का पशु मोटा होना चाहिये। क्योंकि पशु मोटे होते हैं और यजमान पतला होता है। यदि पशु मोटा होगा तो यजमान भी उसके मेध से मोटा होगा।

कहते हैं कि अग्नि-सोम के पशु को न खायें। जो अग्नि और सोम के पशु को खाता है वह मनुष्य के मांस को खाता है। क्योंकि इसी के द्वारा तो यजमान अपने को छुड़ाता है। परन्तु इस नियम का आदर करना ठीक नहीं। यह जो अग्नि-सोम का पशु है वह वृत्रघ्न अर्थात् इन्द्र के लिये हवि है। क्योंकि अग्नि और सोम के द्वारा ही तो इन्द्र ने वृत्र को मारा था। उन दोनों ने कहा, "तुमने हमारे द्वारा ही तो वृत्र को मारा है इसलिये हम दोनों वर मांगते हैं।" उसने कहा "मांगो"। इसलिये उन्होंने इन्द्र से 'यह वर' मांग लिया। इस प्रकार वह उस पशु को लेते हैं जो सोम-इष्टि से पहले दिन मारा जाने वाला होता है।

यही उन दोनों का स्थायी भाग है। इसलिए इसमें से लेना चाहिये और खाना चाहिये। (३)

४—(अब आप्रि मंत्रों का वर्णन आता है)

अब होता आप्रि मंत्रों का पाठ करता है। आप्रि मंत्र तेज और ब्रह्मवर्चस के देने वाले हैं। इसलिये इन मंत्रों को पढ़ कर वह यजमान को तेज और ब्रह्मवर्चस दिलाता है।

वह समिधाओं के लिये याज्य मंत्र बोलता है। प्राण ही समिधा है। प्राण ही इस सब जगत् को प्रज्वलित करते हैं। इस प्रकार वह प्राणों को संतुष्ट करता है और यजमान में प्राण धारण कराता है।

अब तनूनपात् के लिये याज्य मंत्र बोलता है। प्राण ही तनूनपात् है। क्योंकि वह तनू अर्थात् शरीर की 'पाति' अर्थात् रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्राणों को संतुष्ट करता है और प्राण ही यजमान में धारण कराता है।

अब नराशंस के लिये याज्य मंत्र बोलता है। 'नर' का अर्थ है संतान और 'शंस' का अर्थ है वाणी। इस प्रकार वह संतान और वाणी को सन्तुष्ट करता है और यजमान में सन्तान और वाणी धारण करता है।

अब इला के लिये याज्य मंत्र बोलता है। इला का अर्थ है अन्न। इस प्रकार वह अन्न को संतुष्ट करता है और यजमान में अन्न धारण कराता है।

अब वह बर्हि के लिये याज्य मंत्र बोलता है। बर्हि पशु हैं। इस प्रकार वह पशुओं को संतुष्ट करता है और यजमान में पशुओं को धारण कराता है।

अब वह यज्ञशाला के द्वारों के लिये याज्य मंत्र बोलता है। द्वार वृष्टि हैं। इस प्रकार वह वृष्टि को संतुष्ट करता है और वृष्टि तथा अन्न आदि को यजमान में धारण कराता है।

वह उषा और रात्रि के लिए याज्य मंत्र बोलता है। उषा और रात्रि का अर्थ है दिन और रात। इस प्रकार वह रात और दिन को संतुष्ट करता है और यजमान में रात और दिन को धारण कराता है। दो दिव्य होताओं के लिये याज्य मंत्र बोलता है। प्राण और अपान दिव्य होता है। इस प्रकार वह प्राण और अपान को संतुष्ट करता है और प्राण और अपान को यजमान में धारण कराता है।

तीन देवियों के लिये याज्य मंत्र बोलता है। प्राण, अपान और व्यान तीन देवियाँ हैं। इस प्रकार वह इनको संतुष्ट करता है और प्राण, अपान और व्यान को यजमान में धारण कराता है।

वह त्वष्टा के लिये याज्य मंत्र बोलता है। वाणी ही त्वष्टा है। वाणी मानो सब संसार को "ताष्टि" या बनाती है। इस प्रकार वह वाणी को संतुष्ट करता है और यजमान में वाणी को धारण कराता है, वनस्पति के लिये याज्य मंत्र बोलता है। वनस्पति प्राण है। इस प्रकार वह प्राण को संतुष्ट करता है और यजमान में प्राण को धारण कराता है।

स्वाहाकृतियों के लिये मंत्र बोलता है। स्वाहाकृतियां प्रतिष्ठा हैं। इस प्रकार वह यज्ञ को ठीक ठीक स्थापित करता है। ऐसे मंत्र बोलने चाहिये जिनका सिलसिला ऋषियों से मिल सके। इस प्रकार वह यजमान की ऋषियों के साथ बन्धुता स्थापित कराता है। (४)

५—(अग्नि को ले जाना)

जब अग्नि (पशु के) चारों ओर ले जाते हैं तो अध्वर्यु कहता है "मंत्र बोल"।

अब होता अग्नि देवता और गायत्री छन्द वाले नीचे के तीन मंत्र बोलता है :—

(१) अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते ।
देवो देवेषु यज्ञियः ॥ (ऋ० ४।१५।१)
(२) परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव ।
आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ (ऋ० ४।१५।२)
(३) परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ (ऋ० ४।१५।३)

(अग्नि होता हमारे यज्ञ में घोड़े के समान बन जाता है । यह देवों में यज्ञ सम्बन्धी देव है ॥१॥ रथी के समान अग्नि यज्ञ के चारों ओर तीन बार जाता है । वह देवों के लिये आहुति को धारण करता है ॥२॥ अन्न का पति, कवि (वस्तुओं का प्रकाश) अग्नि, हवियों की परिक्रमा करता है । वह यजमान को धन देता है ॥३॥)

इस लाई हुई अग्नि को इस प्रकार इसी के देवता और उसी के छन्दों द्वारा बढ़ाता है । "वाजी सन् परिणीयते" का अर्थ है कि घोड़े के समान उसको चारों ओर फिराते हैं । "परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव" का अर्थ है कि यह अग्नि रथी के समान यज्ञ के चारों ओर फिरता है । "परिवाजपतिः कविः" का अर्थ है कि वह वज अर्थात् अन्नों का पति है ।

अब अध्वर्यु कहता है, "हे होता, देवों के हव्य के लिये आदेश कर" ।

अब मैत्रावरुण आदेश करता है, "अग्नि की विजय हो । अग्नि हम को खाना दे ।"

यहाँ प्रश्न होता है कि जब अध्वर्यु ने आदेश देने के लिये होता को कहा तो मैत्रावरुण ने क्यों आदेश दिया । इसका उत्तर यह है कि मैत्रावरुण तो यज्ञ का मन है । होता यज्ञ की वाणी है मन से ही प्रेरित होकर वाणी बोलती है । जो बिना मन के बोलता है, वह आसुरी वाणी है और देव उसको ग्रहण नहीं

करते। जब मैत्रावरुण आदेश देता है तो वह मन द्वारा वाणी को प्रेरित करता है। मन द्वारा वाणी को प्रेरित करके वह हव्य को देवों के ग्रहण के योग्य करता है। (५)

६—अब होता कहता है, "हे शांति करने वाले देवो और शांति करने वाले मनुष्यो ! आरंभ करो।" इसका तात्पर्य यह है कि जो देवों में शांति करने वाले हैं और जो मनुष्यों में शांति करने वाले हैं उन सब को आदेश करता है। "यज्ञ के स्वामी अर्थात् यजमान और उसकी पत्नी के लिये यज्ञ की सफलता की प्रार्थना करते हुये यज्ञ के योग्य सुन्दर द्वार बनाओ।"

पशु मेध है। और यजमान मेधपति है। इस प्रकार होता यजमान को उसी के मेध से बढ़ाता है। इसीलिये वह ठीक कहते हैं कि जिस देवता के लिये पशु लाया जाता है (आलभ्यते) वही मेध-पति हैं। यदि एक देवता के लिये पशु हो तो कहना चाहिये "मेधपतये" (एकवचन चतुर्थी)। यदि दो देवतों के लिये, तो "मेधपतिभ्यां" (द्विवचन चतुर्थी)। यदि बहुत से देवतों के लिये, तो "मेधपतिभ्यः" (बहुवचन चतुर्थी)। यही स्थिति है।

"इसके लिये आग लाओ।" जब पशु को ले जा रहे थे तो उसे सामने मौत दिखाई दी। उसने देवों के पीछे जाना न चाहा तब देवों ने उससे कहा, "तू चला आ ! हम तुझे स्वर्ग को ले जायंगे।" उसने कहा, "अच्छा तुम में से एक आगे-आगे चलो।" उन्होंने कहा, "अच्छा" और अग्नि उसके आगे-आगे चला। और वह अग्नि के पीछे चला। इसीलिये कहते हैं कि प्रत्येक पशु अग्नि का है क्योंकि वह अग्नि का अनुसरण करता है। इसीलिये अग्नि को आगे-आगे ले जाते हैं।

"दर्भ बिछा दो।" पशु ओषधियों पर जीता है। इस प्रकार वह पशु को सब आत्मायुक्त करता है (अर्थात् घास पशु का आत्मा है)।

"माँ, बाप, भाई, बहिन, मित्र और साथी इस पशु को दे दें।" (ऐसा कहकर) वह पशु को लेते हैं मानों माँ बाप ने उसे हवाले कर दिया। "इसके पैर उत्तर को करो। इसकी आँखें सूर्य की ओर करो। इसके प्राण वायु के लिये छोड़ो। जीवन को अन्तरिक्ष के लिये, कानों को दिशाओं के लिये, शरीर को पृथ्वी के लिये।" इस प्रकार वह उन-उन शरीर के भागों को उन-उन लोकों के हवाले करता है।

"पूरा चमड़ा उतार लो। नाभि काटने से पूर्व वपा अर्थात् अंतड़ियों (Omentum) को काट लो। इसको सांस को (मुँह बन्द करके) भीतर ही रोक दो।"

इस प्रकार होता पशु को प्राण धारण कराता है। "इसकी छाती को श्येन (गरुड) की आकृति का कर दो। बाहुओं को प्रशस (hatchets) की आकृति का। भुजाओं के अगले भागों को भालों के समान, कन्धों को दो कछुवों की आकृति का, कमर को न तोड़ो, जांघों को ढालों के समान, दोनों घुटनों को स्रेकवृक्ष के पत्तों के समान। इसकी छब्बीस पसलियों को क्रमपूर्वक निकाल लो। इसके अंग अंग को पूरा रक्खो।" इस प्रकार वह शरीर के अङ्गों को लाभ पहुँचाता है।

"इसके मल मूत्र के छिपाने के लिये भूमि में गड्ढा खोदो।" मलमूत्र 'ओषध' अर्थात् वनस्पति का होता है। पृथ्वी वनस्पति की प्रतिष्ठा है। इस प्रकार होता इस मल मूत्र को उसी की ठीक जगह में रख देता है। (६)

७—"रुधिर राक्षसों को दे दो।" देवों ने राक्षसों को यज्ञ की हवियों से वंचित कर दिया और उन को भूसी तथा छोटे दाने दिये। और यज्ञ से निकाल कर उनको रुधिर अर्पण किया। इसलिये होता कहता है, "रुधिर राक्षसों को दे दो।" राक्षसों को रुधिर देकर वह उनको यज्ञ के अन्य भाग से वंचित

कर देता है। इस विषय में कुछ लोगों का कहना है कि यज्ञ में राक्षसों का नाम भी न लेना चाहिये, कोई भी राक्षस क्यों न हो। यज्ञ राक्षसों से सर्वथा मुक्त होना चाहिये। इस पर कुछ लोगों का उत्तर है कि उनका नाम लेना चाहिये। जो जिसका अधिकारी है उसको उस भाग से जो वंचित कर देता है वह दण्डनीय होता है; यदि वह नहीं तो उसका पुत्र, यदि पुत्र नहीं तो उसका पोता।

परन्तु यदि होता (राक्षसों का) नाम ले तो धीरे से ले। क्योंकि जो धीमी आवाज है वह भी छिपी हुई है और जो राक्षस हैं वह भी छिपे हुये हैं। यदि जोर से नाम लेगा तो उसकी आवाज राक्षसों की सी हो जायगी। जो कोई क्रोध में बोलता है या उन्मत्त होकर बोलता है उसकी राक्षसी बोली हो जाती है। जो इस रहस्य को समझता है वह न तो स्वयं क्रुद्ध होगा, न उसकी सन्तान में कोई ऐसा होगा। "उल्लू के समान आकृति वाली अंतड़ियों को न काटो! हे बध करने वालो (शमितारः), और न तुम्हारे पुत्रों या सन्तान में कोई ऐसा हो जो इनको काटे।" ऐसा कह कर वह इन अंतड़ियों को वध करने वाले देवतों और बध करने वाले मनुष्यों को दे देता है।

अब कहता है।

"हे अध्रिगु! मारो, अच्छी तरह मारो। हे अध्रिगु मारो।"

अब तीन बार कहे "अपाप" (अर्थात् पाप न लगे! अप! अप! दूर! दूर!)

देवों में अध्रिगु वह है जो 'शमिता' अर्थात् पशु को चुप करता है। और अपाप वह है जो उसे नीचे डालता है। इन शब्दों को कह कर वह पशु को उनके हवाले कर देता है जो उसे चुप करते हैं या जो उसका वध करते हैं। होता तब कहता है कि "हे बध करने वालो (शमितारः), जो कुछ भी सुकृत

अर्थात् पुण्यकर्म है वह हममें रहे, और दुष्कृत है वह अन्यत्र चला जाय।" इस वाचा से (अर्थात् इन शब्दों से) होता (पशु वध का) आदेश देता है, क्योंकि जब अग्नि देवताओं का होता था तब उसने भी इन्हीं शब्दों से (पशु के) वध का आदेश दिया था।

इन शब्दों से ही होता (समस्त दुष्परिणामों को) उनसे अलग कर देता है जो पशु का दम घोंटते हैं और जो उसका वध करते हैं और जो कई प्रकार से नियमों का उल्लंघन करते हैं, जैसे एक टुकड़े को अति शीघ्र काट डालना और दूसरे को अति विलम्ब से, अथवा एक टुकड़े को बहुत बड़ा काट डालना, और दूसरे को बहुत छोटा। इस प्रकार सुख प्राप्त करता हुआ होता अपने को (पापों से) मुक्त कर लेता है, और सर्वायु अर्थात् पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, पूर्णायु प्राप्ति के लिए (वह समर्थ होता है)। जो इस (रहस्य को) जानता है, वह पूर्णायु प्राप्त करता है।

८—देवताओं ने (यज्ञ के लिये) पुरुष पशु को प्राप्त किया (या मारा)। पर उसका वह अंश जो मेध बनने या आहुति के योग्य था, उसमें से निकल गया और घोड़े में प्रविष्ट हो गया। और तब घोड़ा मेध्य पशु बन गया। तब देवताओं ने पुरुष को निकाल दिया, क्योंकि उसमें से वह भाग निकल चुका था, जो मेध्य था, और जिसके निकल जाने पर वह "किंपुरुष" अर्थात् सर्वथा अयोग्य हो चुका था।

देवताओं ने तब घोड़े को मारा, पर मेध उसमें से निकल कर गौ (गाय या बैल) के शरीर में पहुँच गया, और तब गौ मेध्य बन गई। देवताओं ने अश्व को निकाल दिया क्योंकि अश्व के शरीर में से वह अंश निकल गया था जिसके कारण

वह मेध्य था और जिसके निकल जाने पर वह "गौरमृग" बन गया था।

देवताओं ने तब गौ को मारा, पर गौ में से भी मेध निकल गया, और भेड़ के शरीर में प्रविष्ट हुआ, और तब भेड़ मेध्य बन गयी। जिस गाय में से मेध निकल चुका था उसको देवों ने निकाल दिया। और वह नील गाय बन गई। उन्होंने भेड़ को मार डाला। मरी हुई भेड़ में से मेध निकल कर बकरी में प्रविष्ट हुआ और बकरी मेध्य हो गई। जिस भेड़ में से मेध निकल चुका था उसे देवों ने निकाल दिया और वह ऊँट बन गई। बकरी में मेध बहुत दिनों तक रहा। इसलिये सब पशुओं में बकरी सब से अधिक बलि के योग्य है। उन्होंने बकरी को मारा। उस मरी हुई बकरी से मेध निकल कर पृथ्वी में घुस गया। इसलिये पृथ्वी बलि के योग्य हो गई। मरी हुई बकरी से जो मेध निकल गया तो देवों ने उसे निकाल दिया और वह शरभ बन गया।

जिन पशुओं में से मेध निकल चुका वह अमेध्य हो गये। इसलिये उनका मांस न खाना चाहिये।

जब मेध पृथ्वी में चला गया, तो देवों ने उसे घेर लिया। वह चांवल (व्रीहि) हो गया। जब पशु के बध के पश्चात् पुरोडाश को बांटते हैं तो यह इच्छा करते हैं कि हमारी पशु-इष्टि मेधयुक्त हो। जो इस रहस्य को समझता है उसका पशु मेधयुक्त हो जाता है और उसमें इष्टि का पूर्ण रूप आ जाता है। (८)

९—(पशु-इष्टि में) जो पुरोडाश होता है वही मारा जाने वाला पशु है। चावल की जो किंशारू अर्थात् भूसी है वही पशु के लोम के तुल्य है। जो तुषा है वह खाल के। जो छोटे-छोटे कण हैं वह रुधिर के, चावल की पिट्ठी मांस के। जो कसार या कठोर भाग है वह हड्डियों के। जो चावल के पुरोडाश से

यज्ञ करता है वह मानो सब पशुओं के मांस से यज्ञ करता है। इसीलिये कहते हैं कि पुरोडाश का सत्र या यज्ञ करना चाहिये।

अब वपा के लिये याज्य मंत्र पढ़ता है :—

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान्॥

(ऋ० १।९३।५)

(हे अग्नि और सोम! तुम दोनों ने संयुक्त परिश्रम से आकाश में इन प्रकाश-युक्त पदार्थों को रक्खा है। हे अग्नि और सोम! तुम दोनों ने (राक्षसों द्वारा) ली हुई नदियों को अपवित्र और खराब होने से मुक्त किया है)।

जो दीक्षित होता है वह सब देवताओं से ग्रहण किया हुआ होता है। इसलिये कहते हैं कि दीक्षित के घर में न खाना चाहिये। इस पर कुछ लोग कहते हैं कि वपा के लिये जो आहुति दी जाय उसमें से अवश्य खा लेना चाहिये क्योंकि मंत्र में है कि "अग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान्" इससे वह यजमान को सब देवताओं से छुड़ा देता है। इसीलिये तो वह यजमान हो जाता है, देवताओं के लिये दीक्षित नहीं रहता।

अब पुरोडाश के लिये याज्य मंत्र पढ़ता है :—

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम्॥

(ऋ० १।९३।६)

(मातरिश्वा द्यौलोक से अन्य को लाया। श्येन पत्थर से दूसरे को लाया।)

इन शब्दों से यह अभिप्राय है कि जैसे पत्थर से आग निकली उसी प्रकार मेघ भी निकल गया था उसे वापिस लाया गया।

(हे अग्नि, तू आज बड़ा यज्ञ करने वाला होता बनकर पृथ्वी या वेदी के ऊपर बैठा है, पूज्य होता हुआ और इषयन् अर्थात् हमारा भला चाहता हुआ। नेता लोग पहले तेरी इच्छा करते हुये ही और बड़े धन का विचार करते हुये तेरे ही पीछे चले)।

[(अः अग्निः) वह अग्निः (सपर्येण्यः) पूज्य (प्रियः) प्रिय (विक्षु) लोगों में (होता) होता, (मन्द्रः) सुखकारी (यजीयान्) यज्ञ का अधिकारी होकर (निषसाद) स्थित है। (वयं) हम लोग (जुब.धः) घुटने टिकाते हुये (नमसा) नमस्कार द्वारा (तं त्वा दाविद्वांसं) उस तुझ प्रकाश युक्त को (दमे) घर में (उप आसदेम) प्राप्त होते हैं]

तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः। त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहतारोचनेन ॥ (ऋ० ६।१।७)

[(सुध्यः) बुद्धिमान् (सुम्नायव) सुख चाहने वाले (देवयन्तः) देवों की पूजा करने वाले (वयं) हम लोग (तं त्वा नव्यम्) उस तुझ पूजनीय को (ईमहे) खोजते हैं। (त्वं) तू (दीद्यानः) प्रकाश-वान् (अग्ने) हे अग्नि, (बृहता रोचनेन) बहुत प्रकाश के साथ (विशः) लोगों को (दिवः) दिवा लोक में (अनयः) ले जाता है।]

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्। प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ (ऋ० ६।१।८)

[हम तुझ अग्नि की उपासना करते हैं जो तू (शश्वतीनां विशां) सदा रहने वाले लोगों का (कविं) उपदेश या प्रकाश करने वाला (विश्पतिं) स्वामी, (नितोशनं) शत्रुओं का घातक, (वृषभं) कामनों की वर्षा करने वाला, (चर्षणीनाम्) स्तुति करने वालों का (प्रेतीषणिं) प्राप्ति के योग्य (इषयन्तं) अन्न देने वाला, (पावकं) पवित्र करने वाला (राजन्तं) प्रकाशयुक्त (रयीणाम्) धनों द्वारा (यजतं) पूजनीय है।]

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥

(ऋ० ६ । १ । ६)

[(अग्ने) हे अग्नि ! (सः मर्तो) वह मनुष्य (ईजे) पूजता है (शशमे) और स्तुति करता है (यः) जो (ते) तुझको (समिधा) समिधा के साथ (हव्य दातिम्) हवियों को (आनट्) लाता है। (यः) जो (नमोभिः) स्तुतियों द्वारा (आहुतिं पूजा को (परिवेद) समझता है। (सः) वह (त्वोतः) तुझसे रक्षा किया हुआ होकर (विश्वेत्) सब (वामा) सुखों को (दधते) धारण करता है।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः। वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ (ऋ० ६।१।१०)

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥

(ऋ० ६।१।३)

[(बहुभिर्वसव्यैः) बहुत धनों के साथ (वृता इव यन्तं) मार्ग पर जाते हुये के समान तेरे (अनुग्मन्) पीछे चलते हैं, (त्वे रयिं जागृवांसो) वे लोग जो तुझ में अपने धन को अर्पण कर देते हैं। तू कैसा है ? रुशन्तम् अर्थात् प्रकाशवान, अग्नि, दर्शतं अर्थात् सुन्दर, बृहन्तं अर्थात् बड़ा, वपावन्तं* अर्थात् बीज को बोने की शक्ति रखने वाला है, विश्वहा दीदिवांसम् अर्थात् सदा चमकने वाला है]

पदं देवस्य नमसाव्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।

---

*'वपा' का अर्थ चरबी किया जाता है। परन्तु वप् धातु में अच् प्रत्यय करके 'वपा' बनाता है। वप् का अर्थ है बीज बोना। अग्नि को चर्बीवाला कहने का कोई तात्पर्य नहीं। इस दृष्टि में केवल 'वपा' शब्द के कारण इस को पशु की वपा के साथ सम्बद्ध किया है ।

नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥

(ऋ० ६।१।४)

[(नमसा) नमस्कार द्वारा (देवस्य पदं व्यन्तः) देव के पद को प्राप्त होते हुये (श्रवस्यवः) अन्न चाहने वालों ने (अमृक्तम्) अक्षय (श्रवः) अन्न को (आपन्) प्राप्त किया। (ते भद्रायां सन्दृष्टौ रणयन्तः) तेरी कल्याणकारक स्थिति में रमण करते हुये लोगों ने (यज्ञियानि नामानि) पूज्य नामों को (दधिरे) धारण किया।]

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन् मानुषाणाम् ॥

(ऋ० ६।१।५)

[हे अग्नि ! (त्वां) तेरी (क्षितयः) मनुष्य (पृथिव्यां) पृथिवी पर (वर्धन्ति) प्रशंसा करते हैं। (जनानाम्) मनुष्यों के (उभयासः) दोनों लोक सम्बन्धी (रायः) धन (त्वां) तुझको बढ़ाते हैं। (तरणे) हे तारने वाले (चेत्यः) चिन्तन करने के योग्य होकर (त्राता अभूः) तू रक्षक हो गया है। (सदमिन्) सदा (मानुषाणाम्) मनुष्यों का (पिता) बाप और (माता) माता है।]

सपर्येण्यः स प्रियोविक्ष्वग्निर्होता मन्द्रोनिषसादा यजीयान्। तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ (ऋ० ६।१।६)

[(अग्ने) हे अग्नि ! (सहसः सूनो) साहस के उत्पन्न करने वाले हम (अस्मै ते महे) उस तुझ बड़े की (महि विधेम) बहुत पूजा करें (समिधा) समिधा द्वारा (नमोभिः) स्तुतियों द्वारा (हव्यैः) हव्य द्वारा। (वेदी) वेदी में (गीर्भिः) गीतों द्वारा (स्वथैः) स्तोत्रों द्वारा। (ते भद्रायां सुमतौ यतेम) तेरी कल्याणकारक सुमति के लिये कोशिश करें।]

आयस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः। बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ (ऋ० ६।१।११)

[(यः) जिसने (रोदसी) द्यौ और पृथ्वी को (भासा) प्रकाश से (वि ततन्थ) ढांप रक्खा है। (च) और (तरुत्रः) तारने वाला तू (श्रवोभिः) स्तुतियों द्वारा (श्रवस्यः) प्रशंसित होता है। (अग्ने) हे अग्नि ! तू (अस्मे) हमारे लिये (बृहद्भिः वाजैः) बड़े अन्नों द्वारा (स्थविरेभिः देवद्भिः) और स्थूल धनों द्वारा (वितरं) विशेष रीति से (वि भाहि) प्रकाश युक्त हो।]

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥

(ऋ० ६।१।१२)

[(वसो) हे वसु ! (अस्मे) हमारे लिये (सदमिद्) सदा (भूरि) बहुत (पश्वः) पशुओं को (नृवद्) जिनकी मनुष्यों को आवश्यकता होती है (तोकाय) सन्तान के निमित्त (तनयाय) पुत्र के निमित्त (देहि) दीजिये। (अस्मे) हमारे लिए (पूर्वीः) पूर्ण (बृहतीः) बड़े (आरे अघा) पापों से मुक्त (भद्रा) कल्याण करने वाले (सौश्रवसानि) यश को प्राप्त कराने वाले (इषः) अन्न (सन्तु) होवें]

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम्। पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ (ऋ० ६।१।१३)

(राजन् अग्ने) हे अग्नि राजा ! (त्वाया) तेरे (पुरूणि) बहुत से (पुरुधा) गाय घोड़े रूपी (वसूनि) धन (ते) तेरी (वसुता) कृपा से (अश्यां) मैं भोगूँ। (पुरुवार अग्ने) हे वरण करने योग्य अग्नि ! (त्वे राजनि) तुझ राजा में (विधते) गुरु, उपासक या सेवक के लिए (पुरूणि) बहुत से (वसु) धन (सन्ति) हैं।

यहाँ पर एक आक्षेप है कि जब पशु अन्य देवता का है तो मनोता के लिये अङ्ग काटने में अग्नि के सूक्त को क्यों पढ़ते हैं। इसका उत्तर यह है कि देवों में तीन मनोता हैं जिनमें विचार

ओत प्रोत हैं। देवों में वाणी मनोता है जिसमें उनके विचार ओतप्रोत हैं। देवों में गौ मनोता है जिसमें उनके विचार ओत-प्रोत हैं। इन तीनों में अग्नि पूरा मनोता है। क्योंकि इसमें सब मनोता शामिल हैं। इसलिये मनोता के लिए हव्य काटने में अग्नि-सम्बन्धी सूक्त पढ़ा गया।

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्। सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथाधत्तं यजमानाय शं योः। (ऋ० १।६३।७)

हवि के लिए नीचे का याज्य मन्त्र पढ़ता है :—

(हे अग्नि और सोम! बलवान आप इस उपस्थित हवि को खाइये, ग्रहण कीजिये और प्रसन्न हूजिये। हमको कल्याण और कृपा से युक्त कीजिये। यजमान के लिये कल्याण दीजिये।)

इसमें 'हविष' शब्द है वह रूपसमृद्धता है। 'प्रस्थितस्य' शब्द भी रूपसमृद्धता देता है। जो इस रहस्य को समझता है उसका हवि समृद्धि को देता और देवों को पहुँचाता है।

वह वनस्पति के लिये आहुति देता है। प्राण ही वनस्पति है। जो इस रहस्य को समझ कर वनस्पति को आहुति देता है उसका हव्य जीवयुक्त होकर देवों को प्राप्त होता है।

अब वह स्विष्टकृत आहुति देता है। स्विष्टकृत प्रतिष्ठा है। इसी प्रतिष्ठा अर्थात् स्विष्टकृत में अन्त में वह यज्ञ को स्थापित करता है।

अब इला का आह्वान करता है। पशु ही इला हैं। इस प्रकार पशुओं का आह्वान करता है। पशुओं को यजमान में धारण कराता है। (१०)

ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त

दूसरा अध्याय

११—देवों ने यज्ञ फैलाया। वह जब यज्ञ पूर रहे थे उस समय असुरों ने आक्रमण किया कि हम यज्ञ को रोक दें। उन्होंने पूर्व की ओर से यूप पर आक्रमण किया जब आप्रि मंत्र पढ़े जा चुके थे और अग्नि पशु के चारों ओर नहीं ली जाई गई थी।

देव जग पड़े और अपनी तथा यज्ञ की रक्षा के निमित्त अग्नि रूपी तीन दीवारें चारों ओर बना दीं। असुरों ने इन दीवारों को जलता हुआ और चमकता हुआ देखकर आक्रमण न किया। वे भाग गये। देवों ने असुरों को पूर्व में भी हरा दिया और पश्चिम में भी। इसीलिये यजमान लोग अग्नि को पशु के चारों ओर ले जाते हैं और मन्त्र पढ़ते हैं। क्योंकि वह जलती हुई आग के रूप में तीन दीवारें बना देते हैं, अपनी रक्षा के लिए और यज्ञ की रक्षा के लिये।

जब पशु को आप्रि मंत्र पढ़कर पवित्र कर लिया और अग्नि को चारों ओर फिरा लिया तो वह उसे उत्तर की ओर ले जाते हैं। उसके आगे आगे जलती हुई लकड़ी ले जाते हैं मानो पशु

अन्त को यजमान ही तो है। वह मानते हैं कि इस प्रकाश द्वारा यजमान स्वर्ग को जायगा और इस प्रकार यजमान स्वर्ग को जाता है।

जहाँ पशु मारा जाने वाला है वहाँ अध्वर्यु दर्भ छोड़ देता है। जब आप्री मंत्र पढ़कर और अग्नि को चारों ओर फिरा कर, पशु को वेदी के बाहर लाते हैं तो दर्भों पर बिठा देते हैं। उसके मलमूत्र के लिये गड्ढा खोदते हैं। मलमूत्र वनस्पति से सम्बन्ध रखते हैं। वनस्पति का उपयुक्त स्थान भूमि है। इस प्रकार वह इनको उपयुक्त स्थान में रखते हैं। इस पर आक्षेप होता है कि जब समस्त पशु हवि है और जब उसके बहुत से भाग जैसे, रोम, त्वचा, रुधिर, अधपचा खाना, खुर, सींग गिर पड़ते हैं तो यह कमी कैसे पूरी की जाती है। इसका उत्तर यह है कि यदि पशु के साथ पूरा पूरा पुरोडाश भी आहुति में दिया जाय तो वह कमी पूरी हो जाती है। जब पशुओं में से मेध निकल गया तब चावल और जौ उत्पन्न हुये। जब पशु के साथ पूरा-पूरा भाग करके पुरोडाश डालते हैं तो समझते हैं कि पशु को मेध के साथ आहुत किया। पूरा पशु आहुत किया।" जो इस रहस्य को समझता है उसका पशु पूरा पूरा आहुत होता है। (१)

१२—उसकी वपा को निकाल कर (भूनने के लिये) लाते हैं। अध्वर्यु स्रुवा से घी टपकाता है और जब बूँदें टपकती हैं तो कहता है, "इसके योग्य मंत्र पढ़ो।" बूँदें सभी देवतों की होती हैं। शायद वह सोचे कि यह मेरे नहीं हैं। और वे बिना निर्देश किये ही देवों के पास चली जायँ (परन्तु उसको अनुवाक्य पढ़ना चाहिये)। वह पढ़ता है:—

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥

(ऋ० १।७५।१)

हमारी अति विस्तीर्ण और देवों के लिये प्रिय वाणी को स्वीकार कर। जब तेरे मुँह में आहुतियाँ पड़ती हों)।

इस मंत्र से वह अग्नि के मुख में वह बूँदें डालता है। अब वह तीसरे मंडल के २१वें सूक्त को पढ़ता है :—

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व। स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ (ऋ० ३।२१।१)

(हमारे इस यज्ञ को अमर लोगों में रख। हे जातवेद अग्नि! हमारी आहुतियों को स्वीकार कर! हे होता अग्नि! पहले बैठकर चिकने घी की बूँदों को खा।)

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः। स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ (ऋ० ३।२१।२)

(हे पवित्र करने वाले चिकनी घी युक्त बूँदें तेरे लिए पड़ रही हैं। अपने धर्म के अनुसार श्रेष्ठवर को जो देवों के योग्य है हमको दे)।

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य। ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ (ऋ० ३।२१।३)

(हे अग्नि तुझ विप्र के लिये घी युक्त बूँदें पड़ रही हैं। ऋषि और श्रेष्ठ तू प्रज्वलित होता है। तू यज्ञ का रक्षक बन)।

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य। कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ (ऋ० ३।२१।४)

(हे तेज चलने वाले और शक्तिशाली अग्नि तेरे लिये घी की चिकनी बूँदें पड़ रही हैं। कवियों द्वारा प्रशंसित और मेधिर अर्थात् प्रज्ञावान् अग्नि तू बड़े प्रकाश से आया है। हमारी आहुतियों को स्वीकार कर)।

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे। श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥ (ऋ० ३।२१।५)

(हम तेरे लिये बीच में से ली हुई और अत्यन्त ओज वाली चिकनाई को अर्पण करते हैं। हे वसु अग्नि ! तेरी त्वचा पर बूँदें पड़ती हैं। उनको देवों तक ले जा)।

पहले मंत्र में जो यह शब्द आये हैं "इमा हव्या जातवेदो जुषस्व" इनसे वह हवि को स्वीकार कराता है। "स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य"॥ इसमें घी और मेद (चर्बी) की बूँदों का वर्णन है। "होता प्राश्चान प्रथमो निषद्य" से तात्पर्य यह है कि देवों का होता अग्नि है। इसलिये होता का अर्थ है अग्नि।

दूसरे मन्त्र में है "घृतवंत: पावक ते स्तोका श्चोतंति मेदस:" इसमें घी और चर्बी दोनों का वर्णन है। "स्वधर्म देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम्" इससे आशीर्वाद चाहता है।

तीसरे मन्त्र में तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य" यहाँ घी की बूँदों से तात्पर्य है। "ऋषि: श्रेष्ठ: समिध्यसे" यज्ञस्यप्राविता भव" इससे यज्ञ की पूर्ति के लिये आशीर्वाद देता है।

चौथे मन्त्र के पहले भाग "तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो···घृतस्य" में घी और चर्बी दोनों का वर्णन है। पिछले भाग "कवि··· मेचिर" में हव्य की स्वीकारी के लिये आशीर्वाद है।

पाँचवें मन्त्र "ओजिष्ठं······विहि" के पश्चात् बूंदों के लिये वषट्कार बोलता है।

अब वह अनुवषट्कार बोलता है। "सोमस्य अग्ने वीहि" में 'सोम' के स्थान में "स्तोकानां" ऐसा कहता है। बूंदें सब देव-

॥ ब्राह्मण में "मेदसश्च हि घृतस्य च" ऐसा पाठ है। 'च' वेद मंत्र में नहीं है। 'च' के अभाव में 'मेदस:' 'घृतस्य' का विशेषण हो जाता है परन्तु 'च' के द्वारा अलग करने से 'मेदस:' का 'चर्बी' अर्थ होगा।

ताओं को होती हैं। इसीलिये पृथ्वी पर बूंद बूंद कर के वर्षा होती है। (२)

१३—इस पर प्रश्न होता है कि 'स्वाहा' के लिये 'पुरोनुवाक्य' क्या हैं, "प्रैषः" क्या है और याज्य क्या हैं ? (उत्तर यह है कि जो पढ़े गये वह 'पुरोनुवाक्य' हैं, ऐसे ही 'प्रैष' और ऐसे ही 'याज्य'।)

फिर प्रश्न होता है कि 'स्वाहाकृति' के देवता क्या हैं ? इसका उत्तर देना चाहिये "विश्वे देवा" अर्थात् सब देवता। क्योंकि याज्य मन्त्र के अन्त में आता है "स्वाहाकृतं हविरदंतु देवाः।" देवों ने यज्ञ, श्रम और तप, और आहुतियों द्वारा स्वर्ग लोक को जीता।

'वपा' की आहुति देने के अनन्तर ही स्वर्ग लोक उनको दिखाई दिया। उन्होंने दूसरे कृत्यों को सर्वथा छोड़कर वपा की आहुति द्वारा ही स्वर्ग लोक की प्राप्ति की। इसके पश्चात् मनुष्य और ऋषि देवों के यज्ञ स्थान को गये कि कुछ यज्ञ के विषय में ज्ञान प्राप्त करें। उन्होंने इधर-उधर घूम फिर कर देखा कि एक पशु मरा पड़ा है जिसकी अंतड़ियाँ निकली हुई हैं। तब उन्होंने जाना कि यज्ञ के पशु में वपा का होना आवश्यक है। 'वपा' ही पशु को पूर्ण बनाती है।

यह जो तीसरी आहुति में (पशु के वपा को छोड़ कर अन्य भागों को) भूनते हैं इससे तात्पर्य यह है कि हमारा यज्ञ बहुत बहुत आहुतियों से पूर्ण हो। हमारा यज्ञ पूर्ण पशु से पूरा हो।

जो इस रहस्य को समझता है उसका यज्ञ बहुत बहुत आहुतियों से पूरा होता है। उसका यज्ञ पूर्ण पशु से पूरा होता है। (३)

१४—यह जो वपा की आहुति है यह अमृत की आहुति है। अग्नि की आहुति अमृत-आहुति है। आज्य-आहुति अमृत-आहुति है।

ये सब आहुतियाँ अशरीरी अर्थात् शरीर रहित हैं। इन्हीं अशरीरी आहुतियों द्वारा यजमान अमृतत्व को प्राप्त करता है।

यह जो 'वपा' है वह वीर्य के सदृश है। जैसे वीर्य (गर्भाशय में) छिप जाता है उसी प्रकार वपा (अग्नि में) छिप जाती है। जैसे वीर्य सफेद होता है उसी प्रकार वपा। जैसे वीर्य अशरीरी होता है वैसे ही वपा। यह जो रुधिर और मांस है यही शरीर है। इसलिये (होता अध्वर्यु से) कहे, "जितना रुधिर-शून्य है उसे काट डालो"। (वपा-आहुति में) पाँच भाग होते हैं। चाहे यजमान के पास चार ही भाग क्यों न हों (अर्थात् वपा-आहुति का एक भाग सोने की तश्तरी भी है। यदि यजमान के पास सोने की तश्तरी न हो तो चार ही भाग रह जाते हैं फिर भी इन चार के ही पाँच कर लिये जाते हैं) (१) चमचे से घी डालना अर्थात् उपस्तरण क्रिया, (२) सोने की तश्तरी, (३) वपा, (४) सोने की तश्तरी का घी, (५) घी की बूँदें टपकाना।

यहाँ प्रश्न होता है कि यदि सोना न हो तो क्या करे। (इसका उत्तर यह है) कि पहले दो बार घी को चमचे में डाले अर्थात् दो बार उपस्तरण क्रिया करे, फिर वपा रक्खे, फिर उस पर दो बार गर्म घी टपकावे। घी अमृत है। सोना भी अमृत है। इससे घी टपकाने से यजमान का अभिप्राय पूरा हो जाता है। दो बार के घृत लेने और सोने के सहित वपा-आहुति के पाँच भाग हो जाते हैं।

पुरुष में भी पाँच भाग होते हैं, लोम, त्वचा, मांस, अस्थि, मज्जा। होता वपा-आहुति द्वारा यजमान को पाँच भाग वाला बना कर अग्नि में आहुति देता है जो देवों की योनि है। अग्नि देवों की योनि है। आहुतियों द्वारा अग्नि की योनि में उत्पन्न होकर सोने के शरीर के साथ स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। (४)

१५—अध्वर्यु कहता है, "होता ! प्रातःकाल वाले देवों के लिये अनुवाक्य बोलो।" प्रातःकाल आने वाले देव हैं उषा, अग्नि और दो अश्विन। यह देव सात सात छन्दों द्वारा आ जाते हैं और उसके बुलाने से आ जाते हैं जो इस रहस्य को समझता है।

प्रजापति होता के प्रातःकाल के अनुवाक्य बोलने पर देव और असुर यज्ञ में आ पहुँचे और कहने लगे, "यह हमारे लिये कहेगा। यह हमारे लिये कहेगा।" उसने केवल देवों के लिये कहा। इस प्रकार देव असुरों से जीत गये। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने शत्रु, अहितकारी के ऊपर विजय पा लेता है। इसको "प्रातरनुवाक्य" कहते हैं। क्योंकि प्रजापति ने प्रातःकाल इसका उच्चारण किया था।

बड़ी रात से ही इसका पाठ करना चाहिये। जो पूर्ण वाणी और पूर्ण ब्रह्म का गृहीता होता है और जो श्रेष्ठ होता है उसी की बात लोग मानते हैं। इसलिये बहुत रात से ही उठ कर सबके बोलने से पहले ही पाठ करे (अर्थात् प्रातःकाल सब से पहले उसी की वाणी सुनाई दे)। यदि वह देर से उठकर पाठ करेगा तो उसका पाठ 'पहले कहा हुआ' न होकर दूसरों का 'अनुवाद' स्वरूप हो जायगा। इसलिये बड़ी रात से उठकर पाठ करना चाहिये। मुर्गा से भी पहले बोलना चाहिये। यह जो पक्षी हैं, मुर्गा सहित सब निर्ऋति (मृत्यु ?) के मुख हैं। मुर्गा बोलने से पहले 'प्रातरनुवाक्य' बोलने का तात्पर्य यह है कि यदि अन्य (मनुष्य या पशु) अपनी बोली सुना चुकेंगे तो यज्ञ सम्बन्धी वाणी नहीं सुनाई जा सकेगी। इसलिये बड़ी रात से ही अनुवाक का पाठ होना चाहिये।

जब अध्वर्यु उपाकर्म (कृत्य) करे तभी होता "प्रातरनुवाक" बोले। जब अध्वर्यु उपाक्रम करता है तो वाणी से ही प्रारंभ

करता है। और होता भी वाणी से ही पाठ करता है। वाणी ही ब्रह्म है इसलिये वाणी या ब्रह्म से जो कामना सिद्ध हो सकती है वह सब सिद्ध हो जाती है। (५)

१६—जब प्रजापति स्वयं होता था और वह प्रातरनुवाक बोलने को था तो सब देवता उत्सुक थे कि "वह सबसे पहले मेरा नाम लेगा। मेरा नाम लेगा।" उसने इधर-उधर देखकर सोचा कि यदि एक ही देवता को लक्ष्य करके पढ़ता हूँ तो अन्य देवता किस प्रकार तृप्त हो सकेंगे।

तब उसने नीचे की ऋचा को देखा :—

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद् गृणते वयो धात्॥

(ऋ० १०।३०।१२)

(हे धनयुक्त "आपः" तुम सब कोशों के ऊपर शासन करते हो। यज्ञ, कल्याण और अमृत को देने वाले हो। तुम स्वतंत्र धनों की पत्नी (स्वामिनी) हो। सरस्वती देवी गान करने वाले को चिरायु करें।)

"आप" सब देवता हैं। और "रेवती" भी सब देवता हैं। इस प्रकार उसने ऐसे मंत्र से अनुवाक पढ़ा कि सब देवता सन्तुष्ट हो गये। सबने सोचा, "यह मेरे लिये कहता है। यह मेरे लिये कहता है।" जब वह अनुवाक पढ़ रहा था तो सब प्रसन्न हुये।

जो इस रहस्य को समझकर इस मंत्र से अपना अनुवाक पढ़ता है वह सब देवताओं को लक्ष्य में रखकर पढ़ता है और सब देवता उससे प्रसन्न होते हैं।

देवों को भय हुआ कि इस प्रातर्यज्ञ को असुर ले लेंगे क्योंकि वह बड़े हैं, बलिष्ठ हैं। परन्तु इन्द्र ने उनसे कहा, "मत डरो। मैं अपने प्रातःकाल के वज्र की तीन गुनी शक्ति से उनको मार दूंगा।" तब उसने ऊपर की ऋचा पढ़ी। यह ऋचा वज्र है

क्योंकि 'अपोनप्त्रीय' इसका देवता है। यह ऋचा वज्र है क्योंकि त्रिष्टुप् छन्द में है। यह ऋचा वज्र है क्योंकि यह 'वाणी' है। उस वज्र को इन्हीं तीनों के द्वारा फेंका और इस वज्र से असुरों को मारा। इस प्रकार देव जीत गये और असुर परास्त हो गये। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने अहित-चिंतक शत्रु के ऊपर आधिपत्य कर लेता है।

इस पर कहते हैं कि उसी को होता बनना चाहिये जो इस ऋचा में सब छन्द उत्पन्न कर दे। यदि यह तीन बार बोली जाय तो इसमें सब छन्द उत्पन्न हो जाते हैं। (६)

१७—दीर्घ आयु की कामना वाला सौ मंत्र पढ़े। मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है। उसमें सौ पराक्रम और सौ इन्द्रियाँ होती हैं। जो सौ मंत्र पढ़ता है वह यजमान के लिये इतनी आयु, इतना पराक्रम और इतनी इन्द्रियों को धारण करता है।

जिसको यज्ञ की कामना हो वह ३६० मंत्र पढ़े। क्योंकि संवत्सर में ३६० दिन होते हैं। संवत्सर इतना ही होता है। संवत्सर प्रजापति है। प्रजापति यज्ञ है। जो होता यह समझकर ३६० मंत्र पढ़ता है वह यज्ञ को यजमान की ओर झुकाता है।

प्रजा और पशु की कामना वाला ७२० मंत्र पढ़े। सम्वत्सर में ७२० दिन रात होते हैं। सम्वत्सर इतना ही होता है। संवत्सर प्रजापति है। क्योंकि इसी के उत्पन्न होने पर सब प्रजा उत्पन्न होती है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति संवत्सर के पीछे उत्पन्न होकर प्रजा और पशु को पाता है। प्रजावाला और पशु वाला होता है।

यदि कोई ब्राह्मणेतर या ऐसा पुरुष यज्ञ करे जिस पर अपराधों का धब्बा हो तो ८०० मंत्र पढ़ने चाहिये। गायत्री में आठ अक्षर होते हैं। देवता भी गायत्री की ही प्रकृति के हैं। इस लिये उन्होंने पाप के अनिष्ट फलों का निवारण कर दिया। जो

इस बात को समझता है वह गायत्री के द्वारा अपने को पाप और दोष के बुरे परिणाम से बचा लेता है।

जिसको स्वर्ग की कामना हो वह हजार मंत्र पढ़े। स्वर्ग यहाँ से घोड़े की एक हजार दिन की यात्रा के बराबर दूर है। स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिये (ऐसा किया जाता है)।

सम्पत्ति और देव-संगम के लिये अपरिमित मंत्र बोले। प्रजापति अपरिमित है। यह जो प्रातरनुवाक है वह प्रजापति का है। उसमें सब कामनायें शामिल हैं। यह जो अपरिमित संख्या में मंत्र बोले जाते हैं वह सब कामनाओं की सिद्धि के लिए बोले जाते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसकी सब कामनायें सिद्ध हो जाती हैं। इसलिये अपरिमित मंत्र बोलने चाहिये। वह अग्नि के लिए सात छन्दों में मंत्र बोलता है। क्योंकि देव-लोक सात हैं। जो इस रहस्य को जानता है वह सब लोकों में सुख पाता है। उषा के लिये सात छन्दों का मंत्र बोलता है। गाँव के पशु सात* होते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह गाँव के सात पशुओं को प्राप्त होता है।

दोनों अश्विनों के लिये सात प्रकार के छन्द बोले जाते हैं। क्योंकि वाणी ने सात प्रकार से बोला। सात प्रकार से वाणी ने बोला। पूर्ण वाणी और पूर्ण ब्रह्म में (यही सात छन्द हैं)। तीन देवताओं के लिये मन्त्र बोलता है। क्योंकि यह तीन लोक तिहरे तिहरे हैं। यह मन्त्र तीनों लोकों की विजय के लिए पढ़े जाते हैं। (७)

१८—इस पर प्रश्न होता है कि प्रातरनुवाक कैसे बोलने चाहिये? छन्दों के अनुसार बोलने चाहिये। यह जो छन्द हैं वह प्रजापति के अंग हैं। जो यज्ञ करता है वह प्रजापति है।

*बकरी, भेड़, गाय, घोड़े, गधे, ऊँट और मनुष्य।

यजमान के हित के लिये प्रातरनुवाक पाद पाद करके बोलने चाहिये। पशुओं के चार पाद होते हैं। (ऐसा करने से) पशुओं को पाता है। ऋचायें आधी आधी करके बोलनी चाहियें। यह जो इस प्रकार बोलता है प्रतिष्ठा के लिए बोलता है। मनुष्य के दो पाद होते हैं पशु के चार पाद। इस प्रकार वह दो पैर वाले यजमान को चार पैर वाले पशुओं में स्थापना करता है। इसलिए प्रातरनुवाक को आधी आधी ऋचा करके बोलना चाहिये।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि प्रातरनुवाक तो व्यूळ्ह हैं, फिर यह अव्यूळ्ह कैसे हो गये? इसका उत्तर यह है कि *"यदि इसके मध्य से बृहती छन्द चला न जाय"।

कुछ देवता आहुतियों में भाग लेते हैं, कुछ स्तोमों (सामवेदीय प्रार्थना) में। कुछ छन्दों में। आहुतियों से उन देवों को प्रसन्न किया जाता है जो आहुतियों में भाग लेने वाले हैं। स्तुति और प्रशंसा से उनको जो स्तोम और छन्दों में भाग लेने वाले हैं। जो इस रहस्य को समझता है उससे दोनों प्रकार के देव सन्तुष्ट रहते हैं।

---

*छन्दों का साधारण क्रम यह है—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती। गायत्री में २४ अक्षर होते हैं। उष्णिक् में २८, अनुष्टुप में ३२, बृहती में ३६, पंक्ति में ४०, त्रिष्टुप् में ४४ और जगती में ४८। इस प्रकार हर दूसरे में ४ अक्षर बढ़ जाते हैं। इस क्रमशः बढ़ने को व्यूह्ल कहते हैं। प्रातरनुवाक में छन्दों का क्रम टूट जाता है अर्थात् गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप्, बृहती, उष्णिक्, जगती, पंक्ति। इस प्रकार यह अव्यूह्ल हो गये। इसका उत्तर यह दिया गया है कि 'बृहती' छन्द बीच से उठाया नहीं गया इस लिये व्यूह्ल का अव्यूह्ल हो गया।

तेंतीस देवता सोमपा हैं। ३३ असोमपा।

सोमपा यह हैं। आठ वसु, ११ रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति, और वषट्कार।

असोमपा यह हैं, ११ प्रयाज, ११ अनुयाज, ११ उपयाज॥ यह पशु में भाग रखते हैं।

सोम से सोमपा देवताओं को संतुष्ट करता है और पशु से असोमपा देवताओं को। इस प्रकार जो इस रहस्य को समझता है वह दोनों प्रकार के देवों को सन्तुष्ट कर देता है।

वह इस मंत्र से समाप्त करता है :—

अभूदुषा रुशत् पशुराग्निरधाय्यृत्वियः। अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ (ऋ० ५।७५।६)

(श्वेत पशु वाली उषा आ गई। ऋतु के अनुकूल अग्नि रख दी गई। हे विचित्र वीरो (दोनों अश्विनो) तुम्हारा न मरने वाला रथ जोता जा चुका। हे मधु को प्रिय रखने वाले, तुम दोनों हमारे बुलाने को सुनो)।

इस पर प्रश्न होता है कि यदि अग्नि के, उषा के और अश्विन की तीन ऋचाओं को बोलता है तो यह एक ऋचा बोलने का क्या प्रयोजन है? इसका उत्तर यह है कि इस ऋचा में तीनों देवों का वर्णन है। "अभूदुषा रुशत् पशुः" ,यह 'उषा' के लिये। "अग्निरधाय्यृत्वियः" यह अग्नि के लिए। "अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्।" दोनों अश्विनों के लिये। इस प्रकार एक ऋचा से समाप्त करने से तीनों देवों की स्तुति शामिल हो जाती है। (८)

तीसरा अध्याय

१९—ऋषियों ने सरस्वती के किनारे सत्र करते हुये कवष को जो इलूषा का पुत्र था यह कह कर सोम यज्ञ से निकाल दिया, "यह दासीपुत्र, ज्वारी, अब्राह्मण हमारे मध्य में दीक्षा को कैसे प्राप्त करेगा।" उन्होंने उसको रेगिस्तान में निकाल दिया कि वह प्यासा मर जाय और सरस्वती का पानी न पी सके। उसने रेगिस्तान में जाकर प्यास से तंग आकर अपोनप्त्रीय मंत्रों को देखा :—

"प्रदेवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु" "इति* (ऋ० १०।३०)

---

* इस "अपां न पात्" सूक्त में १५ मंत्र हैं जो नीचे दिये जाते हैं —

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१॥
अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताऽच्छाप इतो शतीरुशन्तः।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२॥
अध्वर्यवोऽप इता समुद्र मपां नपातं हविषा यजध्वम्।
स वो ददूर्मिमद्या सुपूत तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥३॥

"ब्राह्मण के लिये देवों तक पहुँचने के लिये रास्ता हो।"
इस प्रकार वह जलों के (अपाम्) प्रियधाम को प्राप्त हो

यो अनिध्मो दीदय दप्स्वन्तर्यं विप्रास ईलते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमती रपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥४॥
याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥५॥
एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
स जानते मनसा संचिकित्रऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६॥
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७॥
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वाऽऽपो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८॥
तं सिन्धवो मत्सरमिद्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युत मौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९॥
आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०॥
हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूत नास्मभ्यमापः ॥११॥
आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥
प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥
एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥
आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन् देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥

(ऋ० १०।३०)

गया। वे उसको मिलने गये। सरस्वती ने उसे चारों ओर से घेर लिया। इसलिये इस स्थान को परिसारक कहते हैं। क्योंकि सरस्वती ने इसको घेर लिया (परि ससार) इसलिये ऋषि कहने लगे कि देवता इसको जानते हैं, लाओ इसे बुला लें। उनको बुलाने के पश्चात् उन्होंने "अपो नप्त्रीयम्" बनाया। अर्थात् "प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु" इत्यादि। इसके द्वारा उन्होंने जलों के परम धाम को पाया और देवों के परम धाम को भी। जो कोई इस रहस्य को समझता है और जो इस रहस्य को समझ कर 'अपोनप्त्रीय' को करता है वह जलों और देवों के प्रिय धाम को प्राप्त होता है और परम लोक पर विजय पाता है। उसको इसका पाठ निरन्तर करना चाहिये। ऐसा करने से सन्तान के लिये निरन्तर वर्षा होगी। यदि ठहर ठहर कर पढ़ेगा तो सन्तान के लिये बादल भी रुक कर बरसेगा। इसलिए निरन्तर पढ़ना चाहिये। यदि पहली ऋचा को बिना रुके हुये तीन बार बोले तो सभी सूक्त निरन्तर बोला हुआ माना जा सकता है। (१)

२०—पहली नौ ऋचायें (१०।३० की) क्रमशः बोलकर ग्यारहवीं ऋचा को दसवीं के स्थान में अर्थात् "हिनोतानोऽअध्वरं देव यज्या" और दसवीं को ग्यारहवीं के स्थान में अर्थात् "आववृततीरध नु द्विधारा" इत्यादि बोले। यह उस समय बोलना चाहिये जब "एकधना" नामक जलों को नदी से लावें। जब होता इन जलों को आता देखे तो कहे :—

प्रति यदापो अदृश्रमायती र्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि। अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः॥ (ऋ० १०।३०।१३)

जब जल आ जावें तो नीचे का मंत्र पढ़े :—

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा। महो राये बृहतीः सप्तविप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति॥ (ऋ० ५।४३।१)

जब (वसतीवरि और एकधना जल) मिलाये जायं तो होता यह मंत्र पढ़े :—

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति । तनू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ (ऋ० २।३५।३)

जो जल पहले दिन लाये जाते हैं उनको "वसतीवरि" और जो उसी दिन प्रातःकाल लाये जाते हैं उनको "एकधन" कहते हैं। ये दोनों जल इस बात पर झगड़ पड़े कि "हम यज्ञ को पहले ले जावें", "हम यज्ञ को पहले ले जावें।" भृगु ने इनको देखा कि झगड़ रहे हैं। उसने इनको ऊपर की ऋचा (ऋ० २।३५।३) से शान्त किया। इससे वह शान्त हो गये। जो इस रहस्य को समझ कर इस प्रकार जलों को शान्त करता है वह इसी प्रकार यज्ञ को पहले ले जायेगा।

होता के चमसे में 'वसतीवरी और एकधना जलों के डालने पर यह मन्त्र पढ़ता है :—

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः। प्राचैर्देवासः प्रणयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव।

(ऋ० १।८३।२)

अब होता अध्वर्यु से पूछता है, "क्या तुमको जल मिल गये ?" जल ही यज्ञ है। इस प्रश्न से तात्पर्य यह है कि "क्या यज्ञ मिल गया ?" इस पर अध्वर्यु उत्तर देता है, "मिल गये। देख लो।"

(अब होता अध्वर्यु से कहता है :—)

"हे अध्वर्यु इन जलों से तुम इन्द्र के लिये मधु-सहित सोम को जो वर्षा लाने वाला और तीव्रान्त अर्थात् शुभ परिणाम वाला है। बीच में अन्य कृत्य करके निचोड़ो। वह इन्द्र कैसा है ? वसु वाला, रुद्र वाला, आदित्य वाला, ऋभु वाला, विभु वाला, अन्न वाला, बृहस्पति वाला, और विश्व-देव वाला, यह (आठ

इन्द्र के विशेषण हैं)। जिस (सोम) को पीकर इन्द्र ने वृत्रों को मारा और शत्रुओं को पराजित किया। ओ३म्।" यह कह कर होता अपनी जगह से उठता है। उठकर जलों का सम्मान करता है जैसे जब कोई प्रतिष्ठित पुरुष निकट आता है तो उठ कर सम्मान करते हैं। इसलिये उठ कर और सामने मुँह करके जलों का सम्मान किया जाता है। इसी प्रकार प्रतिष्ठित पुरुष का सम्मान करते हैं। इसलिये होता को सम्मानार्थ जलों के पीछे जाना चाहिये। यदि दूसरा कोई भी यज्ञ करे तो भी होता यश प्राप्ति के समर्थ है। इसलिये मंत्र पढ़ने वाले को जलों के पीछे जाना चाहिये। उनके पीछे जाते हुये उसे यह मंत्र बोलना चाहिये :—

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्।
पृञ्चतीर्मधुना पयः॥ (ऋ० १।२३।१६)

जो यश की कामना करे वह यह मंत्र पढ़े।

जो तेज या ब्रह्मवर्चस् की कामना करे वह यह मंत्र पढ़े :—

अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥
(ऋ० १।२३।१७)

जो पशु की कामना हो तो यह मंत्र पढ़े :—

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥
(ऋ० १।२३।१८)

जो इनको पढ़ता हुआ जलों के पीछे जायगा वह अवश्य ही इन कामनाओं की पूर्ति करेगा। जो इस रहस्य को समझता है वह इसे इन कामनाओं को पा लेता है।

जब वसतीवरी और एकधना जल वेदी पर रक्खे जा रहे हैं तब वह यह मंत्र पढ़ता है :—

एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः। नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥

(ऋ० १०।३०।१४)

और जब जलों को वेदी में रख चुकता है तो नीचे के मंत्र पढ़ता है :—

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन् देवयन्तीः। अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदुवः सुशका देवयज्या ॥ (२) (ऋ० १०।३०।१५)

२१—प्रातरनुवाक यज्ञ का शिर है। उपांशु और अंतर्याम प्राण और अपान है। (उपांशु और अंतर्याम दो घड़े होते हैं जिनमें सोम रस रक्खा जाता है। घड़ों को उपांशु पात्र और अंतर्याम पात्र कहते हैं। और घड़ों के ऊपर जो छोटे प्याले से होते हैं उनको उपांशु ग्रह और अंतर्याम ग्रह कहते हैं)। वाणी वज्र है। जब उपांशु और अंतर्याम से आहुतियां दी जाती हों तो होता शब्द न बोले। यदि वह बोलेगा तो इस वाणी रूपी वज्र के द्वारा यजमान के प्राण ले लेगा। यदि बोल पड़े तो किसी अन्य को चाहिये कि होता से कहदे कि तुमने वाणी बोलकर वाणी रूपी वज्र से होता के प्राण ले लिये अब तुम्हारे प्राण भी चले जायँगे। सदा ऐसा ही होता है। इस लिये जब उपांशु और अंतर्याम से आहुतियां दी जायं तो होता वाणी को न निकाले। जब उपांशु से आहुति दी जा चुके तो वह यह बोले :—

"प्राणं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्याय।"

अर्थात् "प्राण को ले। स्वाहा। हे अच्छी प्रकार बुलाने वाली वाणी, तुझको सूर्य के लिये छोड़ता हूँ।"

अब वह प्राण को खींचे और कहे, "हे प्राण, मुझ में प्राण धारण करो।"

जब अंतर्याम ग्रह से आहुति दी जा चुके तो वह बोले :—

"अपानं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्याय।"

और अपान को बाहर निकाल कर कहे, "हे अपान, मुझ में अपान धारण करो।"

फिर जिस पत्थर पर उपांशु का सोम पीसा गया उसको यह कह कर छूता है "व्यानाय त्वा" और वाणी को छोड़ता है। यह उपांशु सवन आत्मा है। होता इस प्रकार आत्मा में प्राण धारण करा के वाणी को छोड़ता है, और पूर्ण आयु को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वह भी जो इस रहस्य को समझता है। (३)

२२—यहाँ कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि होता उन सब के साथ चले या न चले। कुछ लोग कहते हैं कि चले, क्योंकि बहिष्पवमान का स्तोत्र मनुष्यों और देवों दोनों के लिए है। इस लिये यह भी उसमें शामिल हो सकता है। परन्तु यह विचार ठीक नहीं। यदि वह चलेगा तो ऋक् को साम के पीछे डाल देगा। यदि कोई उसे ऐसा करते भी देखे तो उससे कह दे—"यह होता साम गाने वालों के पीछे हो लिया और हमने अपना यश उद्गाता को दे दिया। अपने स्थान से गिर गया और गिरता रहेगा"। ऐसा सदा होता है। इस लिये जहाँ बैठा है वहीं बैठा रहे और यह अनुमंत्र पढ़ता रहे,

"यो देवानामिह सोम पीथो यज्ञे बर्हिषि वेद्याम्। तस्यापि भक्षयामसि"।

अर्थात्

"इस बर्हि यज्ञ में देवों के लिए सोम निकाला गया, इसे हम खावें।"

इस प्रकार होता उस सोम से वंचित नहीं रहता। अब उसको कहना चाहिये:—

"मुखमसि मुखं भूयासम्"

"तू मुख है, मैं भी मुख अर्थात् मुख्य हो जाऊँ।"

बहिष्पवमान यज्ञ का मुख (मुख्य भाग) है । जो इस रहस्य को समझता है वह अपने लोगों में मुख्य होता है। श्रेष्ठ होता है ।

दीर्घजिह्वी (लम्बी जबान वाली) नाम की एक आसुरी स्त्री थी । उसने देवताओं के प्रातःसवन को चाट लिया । उसमें नशा नहीं रहा । देवों ने इसका उपचार करना चाहा । उन्होंने मित्र और वरुण से कहा, "तुम दोनों इसका उपचार कर दो" ।

उन्होंने कहा, "अच्छा, पहले हम तुमसे वर माँग लें।" देवों ने कहा, "माँग लो"। उन्होंने प्रातःसवन में से पयस्या (मट्ठे) को माँग लिया। यह उनका सदा का वर है। यह जो पहले उस आसुरी ने बिना नशे के कर दिया था वह पयस्या मट्ठे के द्वारा ठीक हो गया। क्योंकि (मित्र और वरुण) दोनों ने पयस्या के द्वारा (सोम रस को) ठीक कर दिया। (४)

२३—देवों के सवन साथ जुड़े नहीं रहते थे (गिरे पड़ते थे) उन्होंने पुरोडाशों को देखा। उन्होंने उनमें से हर एक सवन का भाग अलग कर दिया। जिससे वह सब संवन जुड़े रहें। इस लिये जब सवनों के लिये पुरोडाश के भाग किये जाते हैं तो वे सवन जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार उन्होंने उनको जोड़े रक्खा। देवों ने इनको (सोमरस से) पहले काटा। इस लिये इनका नाम पुरोडाश हुआ। यही पुरोडाशों का पुरोडाशत्व है।

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि हर एक सवन के लिये इस प्रकार पुरोडाश को विभाजित करे—प्रातः सवन के लिये आठ कपालों का, दोपहर के सवन के लिए ११ कपालों का और १२ कपालों का तीसरे सवन के लिए। क्योंकि सवनों का रूप छन्दों के रूपों के अनुसार है। लेकिन यह बात माननीय नहीं। जितने पुरोडाश सवनों के लिए काटे जाते हैं वे सब इन्द्र के हैं। इस लिये उनको ११ कपालों पर ही रखना चाहिये।

कुछ का कथन है कि पुरोडाश का जितना भाग बिना घी लगा हुआ हो उतना ही खाले, सोम पान की रक्षा के लिए। क्योंकि घृतरूपी वज्र से ही इन्द्र ने वृत्र को मारा। परन्तु यह माननीय नहीं। क्योंकि जो हवि है वह भी अग्नि में डाली जाती है और जो सोम-पान है वह भी अग्नि में छोड़ा जाता है। इस लिये पुरोडाश का जो भाग चाहे खाले। ये जो हवियां, आज्य, धान, करंभ, परिवाप, पुरोडाश, पयस्या आदि हैं वे यजमान के पास चारों ओर से आ जाते हैं, इसी प्रकार जो इस रहस्य को समझता है उसके पास यह चारों ओर से आ जाते हैं। (५)

२४—जो हवियों के पंचक को समझता है वह इन पंचकों द्वारा समृद्धि को पाता है। यज्ञ की हवियों का पंचक यह है :—धान, करंभ, परिवाप, पुरोडाश, पयस्या। जो इस रहस्य को समझता है वह इन हवियों के पंचक द्वारा समृद्धि को पाता है। जो यज्ञ के अक्षरों के पंचक को समझता है वह अक्षरों के पंचक द्वारा यज्ञ से समृद्धि का लाभ करता है। यह अक्षर-पंचक यह है :—सु, मत्, पद्, वग्, दे। जो इस रहस्य को समझता है वह अक्षरों के पंचक द्वारा समृद्धि को लाभ करता है।

जो यज्ञ के नराशंसपंचक को समझता है वह इसके द्वारा समृद्धि को पाता है। प्रातःसवन के दो नराशंस हैं। दोपहर के सवन के दो और तीसरे सवन का एक। यह नराशंस पंचक है। जो इस रहस्य को समझता है वह इसके द्वारा समृद्धि को लाभ करता है।

जो यज्ञ के सवन पंचक को जानता है वह इसके द्वारा समृद्धि को प्राप्त करता है। यह सवन पंचक यह है :—सोम के पहले दिन का पशु-उपवसथ, तीन सवन, पशुरनुबंध्य। यह यज्ञ का सवन-पंचक है। जो इस रहस्य को समझता है वह सवन-पंचक द्वारा समृद्धि को लाभ करता है।

हविष्पंक्ति का याज्य मंत्र यह है :—

हरि वाँ इन्द्रो धाना प्रत्तु पूषण्वान् करंभं सरस्वतीवान् भारतीवान् परिवाप इन्द्रस्यापूप"।

"घोड़ों वाला इन्द्र धान खावे, पूषावाला करंभ, सरस्वतीवाला और भारतीवाला इन्द्र परिवाप खावे। इन्द्र का पुरोडाश या अपूप है।"

इन्द्र के दो घोड़े हैं ऋक् और साम। पशु पूषन हैं। करंभ अन्न है। सरस्वतीवान और भारतीवान् कहा, इसमें सरस्वती का अर्थ है वाणी। प्राण भरत है। "परिवाप इन्द्रस्य अपूप" में परिवाप अन्न है और अपूप इन्द्रिय है। इस प्रकार यज्ञ करके होता यजमान को देवताओं का सायुज्य, सरूपता और सालोक्यता प्राप्त करा देता है और स्वयं भी श्रेय, सायुज्य और श्रेष्ठता का लाभ करता है जो इस रहस्य को समझता है।

पुरोडाश की हर सवन की स्विष्टकृत आहुति यह है "हविरग्नेवीहि"—"अग्नि हवि खा।" इस प्रकार अवत्सार ऋषि अग्नि के प्रिय धाम को पा गया और परम लोक को पहुँच गया। जो इस रहस्य को समझता है और समझकर हविष्पंक्ति की आहुति देता है और याज्य मंत्र बोलता है वह भी यही लाभ प्राप्त करता है। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का तीसरा
अध्याय समाप्त

चौथा अध्याय

२५—सोम राजा का पहले पान करने के लिये देव झगड़ पड़े। उन्होंने चाहा कि "मैं पहले पिऊँ", "मैं पहले पिऊँ।" अब वे इस बात पर राजी हुये कि बाजी लगाकर दौड़ें। जो जीत जाय वही पहले पीले। ऐसा कह कर वह दौड़े। जितने दौड़े थे उनमें वायु पहले नियत स्थान पर पहुँचा, फिर इन्द्र, फिर मित्र और वरुण, फिर दोनों अश्विन। इन्द्र यह सोच कर कि मैं वायु से आगे पहुँचूँ, (ऐसा दौड़ा कि) वायु के पास ही गिर पड़ा। तब उसने कहा, "हम दोनों साथ आये हैं इसलिये दोनों जीते हैं"। उस (वायु) ने कहा, "नहीं मैं ही जीता हूँ"। इन्द्र ने कहा, "तीसरा भाग मुझे मिले, हम दोनों जीते हैं"। उस (वायु) ने कहा, "नहीं, मैं ही जीता हूँ।" तब इन्द्र ने कहा, "चौथाई मुझे मिले, हम दोनों जीते हैं"। वायु मान गया और चौथाई भाग इन्द्र को मिला। तभी से इन्द्र को चौथाई भाग मिलता है और वायु को तीन भाग। इस प्रकार इन्द्र और वायु दोनों जीते। फिर मित्र और वरुण। फिर दोनों अश्विन। वह जिस जिस क्रम से जीते उसी क्रम से

उनको सोम पीने का अधिकार मिला, इन्द्र और वायु पहले, फिर मित्र और वरुण, फिर अश्विन। ऐन्द्र-वायव ग्रह (वह घड़ा जो इन्द्र-वायु का है) वह है जिसमें इन्द्र का चौथाई भाग है। इस बात को एक ऋषि ने देखा था। उसने यह मन्त्र पढ़ाः—

"नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः"※ (ऋ० ४।४६।२)

'वायु और उसका सारथि इन्द्र।"

इस लिये आजकल जब भरत अर्थात् वीर पुरुष शत्रुओं को जीत कर युद्ध में लूट का माल लेते हैं, तब सारथि लोग कहते हैं, कि इसमें चौथाई भाग हमारा है क्योंकि इन्द्र ने वायु का सारथि बनकर विजय पाई थी। (१)

२६—यह जो दो देवतों के सोमग्रह या घड़े हैं वे प्राण हैं। इन्द्र और वायु के वाणी और प्राण। मित्र और वरुण के चक्षु और मन। और अश्विन के श्रोत्र और आत्मा। कुछ लोग ऐन्द्रवायु वाले घड़े में से आहुति देते समय दो अनुष्टुभ् छन्दों में पुरोनुवाक्य और दो गायत्री छन्दों में याज्य पढ़ते हैं। चूँकि ऐन्द्रवायव्य ग्रह वाणी और प्राण का है इस लिये ठीक-ठीक छन्द हो गये (अर्थात् अनुष्टुभ् वाणी का और गायत्री प्राण का)। परन्तु यह बात माननीय नहीं। क्योंकि जब पुरोनुवाक्य मंत्र याज्य मंत्र से बढ़ गया तो यज्ञ सफल नहीं होता। जब याज्य पुरोनुवाक्य से बढ़ जाता है तब सफलता होती है। इसी प्रकार जब दोनों बराबर हों (तब भी सफलता नहीं होती)। प्राण और वाणी की सफलता के लिये ऐसा (कि दो अनुष्टुभ् छन्दों में अनुवाक्य पढ़े और दो गायत्री

※ पूरामंत्र शेतना नो० (ऋ ४।४६।२) २६ वें खंड में देखो।

छन्दों में याज्य)। इससे कामना पूरी होगी। पहला पुरोनु-वाक्य वायु का है :—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ (ऋ० १।२।१)

दूसरा इन्द्र और वायु का :—

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि॥ (ऋ० १।२।४)

इसी प्रकार दो याज्यों में जो पहला याज्य मंत्र वायु का है अर्थात् :—

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु।
त्वं हि पूर्वपा असि॥ (ऋ० ४।४६।१)

उससे यजमान में प्राण धारण कराता है। क्योंकि वायु प्राण है।

और जो इन्द्र वायु का याज्य है अर्थात् :—

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्र सारथिः।
वायो सुतस्य तृम्पतम्॥ (ऋ० ४।४६।२)

इसमें जो इन्द्र का पद है उससे वाणी को धारण कराता है। क्योंकि वाणी इन्द्र की है। इस प्रकार प्राण और वाणी की जो जो कामना है उसको बिना यज्ञ को विषम किये हुये पूरी कर देता है। (२)

२७—दो देवतों का जो सोम है वह प्राण है। उसे एक ही पात्र से ग्रहण करते हैं। क्योंकि सब प्राण एक ही हैं। दो पात्रों से आहुति देते हैं क्योंकि प्राण दो हैं। इसके पश्चात् जिस यजु मन्त्र से अध्वर्यु सोम के प्याले को देता है, उसी मन्त्र से होता ग्रहण करता है :—

"एष वसुः पुरूवसुरिह वसुः पुरूवसुर्मयि वसुः पुरूवसुर्वाक्पा वाचं मे पाहि"

"यह अच्छा है। यह बहुत अच्छा है। यहाँ अच्छा है, बहुत अच्छा है। मुझमें अच्छा है, बहुत अच्छा है। हे वाणी के रक्षक, मेरी वाणी की रक्षा कर।"

होता सोम को ऐन्द्रवायवी ग्रह से पीता है। अब पढ़ता है :—

"उपहूता वाक् सह प्राणेनोपमां वाक सह प्राणेन ह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस्तनू पावानस्तन्वस्तपोजा उपमामृषयो दैव्यासो ह्वयं तां तनूपावानस्तन्वस्तपोजा"।

"वाणी प्राण के साथ बुलाई गई। वाणी प्राण के साथ मुझे बुलावे, दिव्य ऋषि जो शरीरों की रक्षा करने वाले और तप से उत्पन्न हुये हैं, बुलाये गये। दिव्य ऋषि जो शरीर के रक्षक और तप से उत्पन्न हुये हैं मुझे बुलावें।"

दिव्य शरीरों के रक्षक और तप से उत्पन्न हुये ऋषियों का अर्थ है प्राण। उन्हीं को वह बुलाता है।

मित्र और वरुण के ग्रह से इस मन्त्र को पढ़ कर पीता है—

"इप वसुविदद् वसुरिह वसुर्विदद् वसुर्मयि वसुविदद् वसुश्चक्षुर्मा-श्चक्षुर्मे पाहि"।

"यह वसु है, ज्ञान वाला वसु है। यहाँ वसु है, ज्ञान वाला वसु है। मुझमें वसु है, ज्ञान वाला वसु है। हे आँख के रक्षक, मेरी आँख की रक्षा कर।"

अब वह कहता है:—

"उपहूतं चक्षुः सहमनसोपमां चक्षुः सहमनसाह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजा उपमामृषयो दैव्यासो ह्वयतां तनूपावान-स्तन्वस्तपोजा"।

"मन के साथ आँख बुलाई गई। आँख मुझे मन के साथ बुलावे। दिव्य तनूपा और तपोजा ऋषि बुलाये गये। दिव्य तनूपा और तपोजा ऋषि मुझे बुलावें"।

दिव्य तनूपा और तपोजा ऋषि प्राण हैं। इससे उन्हीं को बुलाता है।

नीचे के मंत्र से अग्नि के ग्रहों से पान करता है : —

"एष वसुः संयद् वसुरिहवसुः संयद् वसुर्मयि वसुः संयद् वसुः श्रोत्रपाः श्रोत्र मे पाहि"।

"यह वसु है, सदा रहने वाला वसु है। यहाँ वसु है, सदा रहने वाला वसु है। हे कान के रक्षक, मेरे कान की रक्षा कर"।

अब वह कहता है:—

उपहूत श्रोत्रं सहात्मनोपमां श्रोत्रं सहात्मनाह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजा उपमामृषयो दैव्यासोह्वयंतां तनूपावानस्तन्वस्तपोजा"।

"कान आत्मा के साथ बुलाया गया। कान आत्मा के साथ मुझे बुलावे। दिव्य तनूपा और तपोजा ऋषि बुलाये गये। दिव्यतनूपा और तपोजा ऋषि मुझे बुलावें"।

यह दिव्य तनूपा, तपोजा ऋषि प्राण हैं, इनसे इन्हीं को बुलाता है।

ऐन्द्रवायव्य ग्रह से पीते समय होता ग्रह (घड़े या प्याले) के मुँह को अपनी ओर करके उसमें से पीता है। क्योंकि प्राण और अपान उसके सामने हैं। इसी प्रकार मित्र वरुण के ग्रह में से पीता है क्योंकि दोनों आँखें उसके सामने हैं, अश्विनों के ग्रह से पीते समय अपने मुख को पीछे फेर लेता है क्योंकि मनुष्य और पशु चारों ओर से शब्द सुनते हैं। (३)

२८—दो देवताओं के सोम पात्र प्राण हैं। इसलिये प्राणों को जारी रखने और उनको टूटने न देने के लिये याज्य मन्त्रों को निरन्तर पढ़ना चाहिये। दो देवताओं के सोम पात्र प्राण हैं। अतएव होता अनुवषट्कार न पढ़े। इससे प्राणों का क्रम टूट जायगा। क्योंकि अनुवषट्कार क्रम के टूटने का द्योतक है। यदि

कोई होता को अनुवषट्कार करते देखे तो कहे कि तुमने प्राणों का क्रम बन्द कर दिया जो अन्यथा बन्द न होता और इसलिये तुम्हारा जीवन समाप्त हो जायगा। ऐसा सदा होता है। इसलिये दो देवताओं के सोमपात्रों पर अनुवषट्कार न पढ़े।

इस पर कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि जब मित्र, वरुण सम्बन्धी पुरोहित दो बार आगू कहता है और दो बार याज्य मन्त्र पढ़ने की प्रेरणा करता है तो होता एक बार आगू कह कर दो बार वषट्कार क्यों बोलता है (आगू का अर्थ यह है कि पुरोहित कहता है "होता यक्षत" या "होतर्यज"; यह वह दो बार कहता है। होता एक बार उत्तर देता है "ये ३ यजामहे।" (प्रश्न यह है कि दो प्रश्नों का होता एक ही उत्तर क्यों देता है ?) इसका उत्तर यह है कि दो देवताओं के सोम पात्र तो प्राण हैं और आगू वज्र है। इसलिये यदि होता दो याज्य मन्त्रों के बीच में आगू बोल दे तो वह वज्र से यजमान का जीवन काट दे। (यदि कोई होता को ऐसा करते देखे तो) कहे कि तूने यजमान के जीवन को आगू वज्र से काट कर अपना जीवन भी काट डाला। सदा ऐसा ही होता है। होता दो याज्य मन्त्रों के बीच में आगू न बोले।

इसके अतिरिक्त मैत्रावरुण पुरोहित यज्ञ का मन है और होता वाणी है। मन से प्रेरित होकर ही वाणी बोलती है। जो मन से विरुद्ध वाणी बोलता है वह वाणी असुरों को प्यारी होती है, देवों को नहीं। होता का आगू मैत्रावरुण के पुरोहित के दोनों आगुओं के अन्तर्गत है। (४)

२९—ऋतु याज प्राण हैं। जो ऋतु याज करते हैं अर्थात् जो ऋतुओं के लिये आहुतियाँ देते हैं वे यजमान को प्राण धारण कराते हैं। 'ऋतुना' शब्द से आरम्भ होते हुये ऋतुओं के छः मन्त्र बोल कर यजमान में प्राण धारण कराते हैं।

"ऋतुभिः" शब्द से आरम्भ होते हुये चार मन्त्रों से अपान को यजमान में धारण कराते हैं। पीछे के दो मन्त्र जो 'ऋतुना' से आरम्भ होते हैं उनसे यजमान में व्यान धारण कराते हैं। यह प्राण तीन तरह का है—प्राण, अपान, व्यान। यह जो "ऋतुना", "ऋतुभिः", "ऋतुना" आदि वाले मन्त्रों को निरन्तर पढ़ते हैं वह प्राणों के सिलसिले को जारी रखने के लिये। उनका खंडन न होने देने के लिये। ऋतुयाज प्राण हैं। उनके पीछे अनुवषट्कार न कहे। ऋतुओं का कोई अन्त नहीं। एक के बाद दूसरी आती है। अगर वह ऋतुयाजों के पीछे अनुवषट्कार कहेगा तो रोक देगा। क्योंकि अनुवषट्कार विराम का सूचक है। जो इसको कहेगा वह ऋतुओं को रोक देगा और आपत्ति में पड़ेगा। सदा ऐसा ही होता है। इसलिये ऋतुयाज के मन्त्र बोलने के बाद अनुवषट्कार न कहे। (५)

३०—दो देवों वाले सोम पात्र प्राण हैं। और इला अर्थात् पुरोडाश पशु हैं। सोम पात्रों में से पकर इला को बुलाता है। पशु ही भोजन है। इस प्रकार पशुओं को बुलाता है यजमान में पशुओं को धारण कराता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि पहले इला (पुरोडाश) को खावे या चमचे में से पान करे। इसका उत्तर यह है कि पहले भोजन कर ले, फिर सोम पान करे। दो देवतों के सोम ग्रह से उसने सोम पान पहले कर ही लिया। इसलिये अब पहले अपने हाथ का पुरोडाश खाले, फिर चमसे में से सोम पान करे। इस तरह से उसे दोनों तरह का अन्न अर्थात् खाना और पानी मिल जाता है।

(ग्रह और चमसा) दोनों में से सोम पान करने से सब प्रकार का भोजन प्राप्त हो जाता है।

दो देवतों के ग्रह प्राण हैं और होता का चमसा आत्मा है।

ग्रहों में से चमसे में सोमरस उँडेलने का तात्पर्य यह है कि होता अपने में प्राण धारण कर रहा है, और पूर्ण आयु को प्राप्त हो रहा है। जो इस भेद को समझता है वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है। (६)

३१—देवों ने जो यज्ञ किया वही असुरों ने किया। वे बराबर शक्ति वाले हो गये, और देवों के अधीन न रहे। तब देवों ने "तूष्णी शंस" (चुपचाप प्रार्थना या जाप) को देखा। असुरों ने इसको न किया। यह जो चुपचाप की प्रार्थना है वह मन्त्रों का सार रूप है। देव जिस जिस वज्र को उठाते थे असुर उसको जान जाते थे। देवों ने अब "चुपचाप की प्रार्थना" को देखा और इसी वज्र को उठाया। असुर न जान सके। देवों ने इस वज्र का असुरों पर प्रहार किया। असुर न जान सके। इस प्रकार देव असुरों पर विजय पा गये। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने शत्रु, अहितकर और अत्याचारी पर विजय पा लेता है।

देवों ने अपने आपको विजयी समझ कर यज्ञ रोप दिया। असुर उसके निकट आये कि विघ्न डालें। उन्होंने बड़े असुरों को चारों ओर से आते देखा। तब उन्होंने कहा "इसे समाप्त कर दें जिससे असुर इसका विध्वंस न कर सकें।" उन्होंने ऐसा ही किया, "तूष्णी शंस" अर्थात् चुपचाप प्रार्थना द्वारा उसको समाप्त किया। उन्होंने "भूरग्निर्ज्योतिरग्निः" से आज्य और प्रउग को समाप्त किया है। "इन्द्रो ज्योतिर्भुवोज्योतिरिन्द्रः" से उन्होंने निष्केवल्य और मरुत्वती को समाप्त किया। "सूर्य्यो-ज्योतिर्ज्योतिः स्वःसूर्यः" से वैश्वदेव और अग्निमारुत को समाप्त किया। (आज्य और प्रउग प्रातःकाल की प्रार्थनायें हैं। निष्केवल्य और मरुत्वती दोपहर की। तथा वैश्वदेव और अग्नि-मारुत शाम की)।

इस प्रकार "चुपचाप प्रार्थना" से उन्होंने यज्ञ समाप्त किया। इस प्रकार "चुपचाप प्रार्थना" से यज्ञ को समाप्त करके यज्ञ की रक्षा के लिये उनको अन्तिम ऋचा मिल गई। जब होता "चुपचाप प्रार्थना" को कह लेता है तो यज्ञ समाप्त हो जाता है। "चुपचाप प्रार्थना" करने पर होता के लिये यदि कोई बुरा कहे तो उससे कहना चाहिये कि यह तेरे ही लिये हानि पहुँचावेगा। अब होता पढ़ता है :—

"प्रातर्वाव वयमद्येमं शस्ते तूष्णीं शंसे संस्थापयामः।"

"आज प्रातःकाल हम इस चुपचाप प्रार्थना को कह कर यज्ञ को समाप्त करते हैं।" जैसे घर में पाहुने का किसी कृत्य के द्वारा स्वागत करते हैं उसी प्रकार यज्ञ का इस "चुपचाप प्रार्थना" द्वारा स्वागत करते हैं। जो इस रहस्य को समझ कर "चुपचाप प्रार्थना" के बाद होता को बुरा कहता है वह हानि उठाता है। इसलिये जो इस रहस्य को समझता है उसको "चुपचाप प्रार्थना" के बाद होता को बुरा नहीं कहना चाहिये। (७)

२६—यह जो तूष्णी शंस या "चुपचाप प्रार्थना" हैं, वे सवनों की आँखें हैं। "भूरग्निर्ज्योतिः" "ज्योतिरग्निः" यह प्रातः सवन की दो आँखें हैं। "इन्द्राज्योतिः" "भुवो ज्योतिरिन्द्र" यह दोपहर के सवन की दो आँखें हैं। "सूर्य्योज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्यः" यह शाम के सवन की दो आँखें हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह आँखों वाले सवनों से समृद्धि को प्राप्त होता है और आँखों वाले सवनों से स्वर्ग को जाता है।

यह जो "तूष्णी शंस" है वह यज्ञ की आँख है। हर प्रार्थना में एक ही व्याहृति आती है पर वह दो बार बोली जाती है। आँख है तो एक पर मालूम दो होती है।

यह जो "तूष्णी शंस" है, वह यज्ञ की जड़ है। जो कोई

यजमान की जड़ खोदना चाहे वह "चुपचाप की प्रार्थना" न पढ़े क्योंकि इसके न पढ़ने से यज्ञ बिना जड़ के हो जाता है और यजमान यज्ञ के साथ ही नष्ट हो जाता है।

इस पर कहते हैं कि होता को यह प्रार्थना पढ़नी ही चाहिये। यह ऋत्विज् के लाभ के लिये है, जो "तूष्णी शंस" पढ़ी जाती है। ऋत्विज् में ही यज्ञ प्रतिष्ठित है। और यजमान यज्ञ में प्रतिष्ठित है। इसलिये "चुपचाप प्रार्थना" पढ़नी चाहिये। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त

वर्ष के पश्चात् उसने बारह पद कहे, यही बारह निविद् के पद हैं। निविद् कहने के पश्चात् सब प्राणी उत्पन्न हुये।

इसको (कुत्स) ऋषि ने नीचे का मन्त्र पढ़ते हुये देखा—

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्। विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥

(ऋ० १।९६।२)

"उस अग्नि ने पहले निविद् से और काव्य से मनुओं की प्रजा को उत्पन्न किया। हर जगह चमकते हुये प्रकाश से द्यौ और जलों को उत्पन्न किया। देवों ने धन देने वाले अग्नि को धारण किया।" इसीलिये अब होता सूक्त से पहले निविद् को कहता है तो उसे सन्तान का लाभ होता है। जो इस रहस्य को समझता है उसको संतान और पशु की प्राप्ति होती है। (१)

३४—होता कहता है :

"अग्निर्देवेद्धः"

"अग्नि देवों से प्रज्वलित की गई"।

देवों की प्रज्वलित की हुई वह (स्वर्गीय) अग्नि है क्योंकि उसको देवों ने प्रज्वलित किया है। इसी के द्वारा वह उस लोक में इस अग्नि पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब कहता है :

"अग्निर्मन्विद्धः"

"अग्नि मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित की गई।"

मनुष्यों से प्रज्वलित की गई अग्नि यह (पृथ्वी) की अग्नि है। क्योंकि मनुष्यों ने इसे जलाया है। इसके द्वारा वह इस लोक की अग्नि पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"अग्निः सुषमित्"

"अग्नि जो अच्छी तरह प्रज्वलित करता है"। यह "अग्निः

सुषमित्" वायु है। वायु अपने द्वारा अपने को और जो कुछ संसार में है उसको प्रज्वलित करता है। इसके द्वारा वह अन्तरिक्ष में वायु पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब कहता है :—

"होता देववृतः"

"देवों से वरण किया हुआ होता"।

देवों से वरण किया हुआ होता वह (स्वर्गीय) अग्नि है। क्योंक वह हर जगह देवों से वरण किया हुआ है। इस प्रकार वह उस लोक में उस पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"होता मनुवृतः"

"मनुष्यों से वरण किया गया होता।"

मनुष्यों से वरण किया हुआ होता यह (इस लोक की) अग्नि है। क्योंकि यह अग्नि हर जगह मनुष्यों द्वारा वरण की जाती है। इस प्रकार होता इस लोक में इस अग्नि पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"प्रणीर्यज्ञानाम्"

"यज्ञों को ले जाने वाला"।

वायु यज्ञों का ले जाने वाला है। जब वह चलता है तब यज्ञ होता है तभी अग्निहोत्र होता है। इस प्रकार अन्तरिक्ष में वायु पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब कहता है :—

"रथीरध्वराणाम्"

"अध्वरों का रथी।"

अध्वरों का रथी वह (सूर्य्य) है। क्योंकि वह रथी के समान चलता है। इस प्रकार होता इस अग्नि पर इस लोक में आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"अतूर्तो होता"

"अपराजित होता" ।

यह अग्नि अपराजित होता है। क्योंकि कोई इसका मुकाबिला नहीं कर सकता। इस प्रकार होता इस लोक में इस अग्नि पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"तूर्णिर्हव्यवाट्"

"हव्य को ले जाने वाले वाहक" ।

हव्यों को ले जाने वाला वाहक वायु है। क्योंकि वायु सारे संसार में शीघ्रता से बहता है। वह हवियों को देवों तक ले जाता है। इस प्रकार वह अन्तरिक्ष में वायु पर आधिपत्य पाता है।

अब वह कहता है :—

"आ देवो देवान् वक्षत् ।"

"देव देवों को लावें ।"

वह देव (स्वर्गीय अग्नि) है जो देवों को यहां लाता है। इस प्रकार वह उस लोक में उस अग्नि पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"यक्षदग्निर्देवो देवान् ।"

"अग्नि देव देवों के प्रति मन्त्र बोले ।"

देवों के प्रति मन्त्र बोलने वाला यह अग्नि है। इस प्रकार वह इस लोक में अग्नि पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

अब वह कहता है :—

"सो अध्वराकरति जातवेदाः ।"

"वह जातवेद पवित्र आहुति को बनावे ।"

वायु ही जातवेद है। वायु ही इस सब संसार को बनाता है। इस प्रकार वह अन्तरिक्ष में वायु पर आधिपत्य प्राप्त करता है।

(निविद् के यह बारह पद हुये)। (२)

३५—अब होता इन अनुष्टुभ् मन्त्रों को पढ़ता है :—

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै । गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः। हविष्मन्तस्तमीलते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षरः। अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
श नः शोचा मरुद् वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥
नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ (ऋ० ३।१३।१-७)

वह पहले पद को अलग करता है। क्योंकि स्त्री अपनी जांघों को अलग करती है। वह अन्तिम पदों को जोड़ता है। क्योंकि पुरुष जांघों को मिलाता है। यह मैथुन है। वह आज्य मंत्र को पढ़ने के आरम्भ में संतान-प्रजनन के लिये मैथुन करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सन्तान और पशुओं से युक्त होता है।

इस सूक्त को पढ़ते हुये पहले पदों को अलग करने से वज्र के पिछले भाग को मोटा कर देता है। और अन्तिम भागों को

मिलाकर अगले भाग को पतला कर देता है। यही हाल दण्ड या कुठार का है। इस प्रकार वह अपने शत्रु पर प्रहार करता है। जिस शत्रु को दबाना हो, वज्र उसको दबा लेगा। (३)

३६—इन लोकों में देव और असुर लड़ते थे। देवों ने (उत्तर वेदी के दक्षिण को) ऋत्विजों के बैठने के स्थान (सदस्) को ग्रहण किया। असुरों ने उनको वहाँ से उठा दिया। तब वे उत्तर वेदी के बांई ओर अग्नीध्र के स्थान पर चले गये। वहाँ वह पराजित न हो सके। इस लिये ऋत्विज् अग्नीध्र के पास बैठते हैं। सदस् पर नहीं। अग्नीध्र के पास बैठ कर वह अग्नि के पास धरे जाते हैं इसलिये उसे अग्नीध्र कहते हैं। अग्नीध्र का अग्नीध्रत्व यही है।

असुरों ने देवों के सदस् की अग्नि को बुझा दिया। लेकिन देवों ने अग्नीध्र से अपने सदस् की अग्नि को जला लिया। इस प्रकार उन्होंने असुरों और राक्षसों को हरा दिया और बाहर निकाल दिया। इस लिए यजमान लोग अग्नीध्र से अग्नि लेकर असुरों और राक्षसों को हरा देते और निकाल देते हैं।

उन्होंने प्रातःकाल के आज्यों द्वारा विजय पाई, और जीती हुई जगह पर आ गये। इसी लिये इनका नाम आज्य पड़ा। यही आज्यों का आज्यत्व है।

उन विजय पाये हुये होताओं के शरीरों में से केवल अच्छावाक का शरीर न मिल सका क्योंकि इन्द्र और अग्नि उसमें घुस गये थे। देवों में इन्द्र और अग्नि ही बड़े और बलवान तथा जीतने वाले, उत्तम और अच्छे मित्रों वाले हैं। इस लिये प्रातः सवन में अच्छावाक इन्द्र और अग्नि की स्तुति करता है। क्योंकि इन्द्र और अग्नि ने ही अच्छावाक के शरीर में प्रवेश किया था। इस लिये अन्य होता अपने स्थान पर पहले जाते हैं और पीछे से अच्छावाक। जो पीछे आवे वही हीन

है। क्योंकि वह देर में पहुँचेगा। इसलिये जो ब्राह्मण बह्वृच (बहुत ऋचायें जानने वाला) और वीर्यवान हो, वही अच्छावाक का कार्य्य करे। क्योंकि तभी वह अहीन (न खोया हुआ) हो सकता है। (४)

३७—यह जो यज्ञ है वह देवों का रथ है। आज्य और प्रउग दो बीच की रस्सियां हैं। पवमान स्तोत्र के बाद आज्य पढ़ने और आज्य स्तोत्र के बाद प्र-उग पढ़ने से होता देवों के रथ की रस्सियों को थाम लेता है कि रथ टूट न जाय। उसी का अनुकरण करके मनुष्यों के रथों की रस्सियों को सारथी थामते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसका देवरथ या मनुष्यरथ टूटने नहीं पाता।

यहाँ एक शंका होती है। नियम यह है कि शस्त्रस्तोत्र के अनुकूल होना चाहिये। सामगाओं के पवमान गाने पर होता अग्नि के आज्य स्तोत्र को कहता है। तो यह पवमान के अनुकूल कैसे हो जाता है? इसका समाधान यह है कि "अग्नि पवमान" है। जैसे ऋषि ने कहा :—

अग्निर्ऋषिः पवमानः। (ऋ० ६।६६।२०)

इसलिये अग्नि वाले मंत्रों से आज्य शस्त्र आरंभ होता है, वह पवमान स्तोत्र के अनुकूल हो जाता है।

अब प्रश्न होता है कि जब नियम यह है कि स्तोत्र शस्त्र के अनुकूल हो तो सामगाओं का स्तोत्र गायत्री छन्द में और होता का आज्य-शस्त्र अनुष्टुभ् में क्यों होता है? इसका उत्तर यह है कि योग तो ठीक ही है। आज्य शस्त्र के अनुष्टुभ् छन्द में सात मन्त्र हैं। पहले और पिछले मन्त्र को तीन बार बोलने से ११ हो जाते हैं। बारहवाँ याज्य मन्त्र विराट् में है। उसे भी गिन लेना चाहिये क्योंकि एक या दो अक्षरों के बढ़ने से छन्दोभेद नहीं होता। यह बारह अनुष्टुभ् १६ गायत्री के बराबर

हैं। अनुष्टुभ् छन्द का शस्त्र इस प्रकार स्तोत्र के गायत्री छन्दों के बराबर हो जाता है। होता के आज्य शस्त्र का याज्य मन्त्र यह है।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम्। अमर्धन्ता सोम पेयाय देवा ॥ (ऋ० ३।२५।४)

(यहाँ 'इन्द्राग्नी' के बजाय अग्नि-इन्द्र कहा है। इसका कारण यह है कि) इन्होंने इन्द्राग्नी के रूप में विजय नहीं पाई किन्तु "अग्नीन्द्रौ" के रूप में। अग्नीन्द्र का याज्य वह विजय पाने के लिये पढ़ता है। यह मन्त्र विराट् छन्द में है जो तेतीस अक्षर का होता है। देव तेतीस हैं, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य ; एक प्रजापति और एक वषट्कार। इस प्रकार वह पहले ही शस्त्र में एक एक अक्षर एक एक देवता के लिये कह देता है। अक्षरों के क्रम से ही देव सोमपान करते हैं। इस प्रकार देवपात्र से देवता तृप्त हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि जब याज्य मन्त्र शस्त्र के अनुकूल होना चाहिये तो आज्य शस्त्र केवल अग्नि का है, फिर याज्य मन्त्र अग्नीन्द्र का क्यों है? इसका उत्तर यह है कि अग्नि-इन्द्र याज्य वही है जो इन्द्राग्नी याज्य है। यह इन्द्राग्नी का शस्त्र है जैसा ग्रह और तूष्णीशंस से प्रकट होता है। अध्वर्यु नीचे के मन्त्र से ग्रह को लेता है :—

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता ॥
(ऋ० ३।१२।१)

"हे इन्द्र और अग्नि, स्तुतियों के साथ बादल के समान पवित्र सोम के पास आओ। और बुद्धि से प्रेरित होकर इसको पियो"।

होता की तूष्णी-शंस या "चुपचाप प्रार्थना" यह है:—

"भूरग्निर्ज्योतिरग्निरिंद्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिंद्रः सूर्योज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्यः"। (५)

३८—होता का जप रेत या वीर्य है। वीर्य सिंचन चुपचाप होता है। इसी प्रकार जप भी चुपचाप होता है। यह भी वीर्य-सिंचन ही है।

'आहाव' से पहले जप होता है। आहाव से पीछे जो कुछ होता है वह शस्त्र है। होता 'आहाव' को अध्वर्यु के प्रति उस समय कहता है जब अध्वर्यु चारों पैरों पर (पशु के समान) भूमि पर पड़ा होता है। और उसका मुँह दूसरी ओर होता है। चौपाये मुँह को फेर कर वीर्यसिंचन करते हैं। अब अध्वर्यु दो पैरों पर खड़ा हो जाता है और सामने मुँह कर लेता है क्योंकि मनुष्य (दुपाये) सामने मुँह करके वीर्य सिंचन करते हैं।

जप के भिन्न-भिन्न भाग यह हैं :—

"पिता मातरिश्वा"

प्राण पिता है। प्राण मातरिश्वा है। प्राण वीर्य है। इन शब्दों को कहकर मानो वीर्यसिंचन करता है।

"अच्छिद्रा पदाधा"

वीर्य छिद्र-रहित है। इस लिये इस छिद्ररहित या पूर्ण का जन्म होता है।

"अच्छिद्रोक्थाकवयः शंसन"

जो पढ़े हुये हैं वह कवि हैं। उन्होंने इस पूर्ण वीर्य को उत्पन्न किया।

अब कहता है :—

"सोमो विश्वविन् नीथानिनेषद् बृहस्पतिरुक्था मदानि शंसिषद्।"

बृहस्पति ब्राह्मण है। स्तुति किया गया सोम क्षत्रिय है। "नीथानि" और "उक्था मदानि" शस्त्र हैं। दैवी ब्राह्मण और

दैवी क्षत्रिय से प्रेरित होकर होता शस्त्र पढ़ता है। यह दोनों (बृहस्पति और सोम) समस्त जगत् या जो कुछ है उस पर शासन करते हैं। इन दोनों की प्रेरणा के बिना होता जो कुछ करता है वह न करने के बराबर है। जैसे कहा जाता है कि इसका किया बेकिया हो गया। जो इस रहस्य को समझता है उसका सब किया हुआ सुकृत होता है, अकृत नहीं होता।

अब कहता है :—

"वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुः"

आयु प्राण है। प्राण वीर्य है। वाणी योनि है। यह पढ़कर मानो वह योनि में वीर्य सींचता है।

अब कहता है :—

"क, इदं शंसिष्यति स इदं शंसिष्यति"।

'कः' प्रजापति है। इसके कहने का तात्पर्य यह है कि प्रजापति उत्पन्न करेगा। (६)

३९—'आहाव' के बाद तूष्णी-शंस ("चुपचाप प्रार्थना") कहता है। मानो सींचे हुये वीर्य में विकार उत्पन्न करता है। पहले वीर्य सींचा जाता है फिर उसमें विकार उत्पन्न होता है। 'तूष्णी-शंस' चुपके-चुपके होती है। वीर्य सिंचन भी चुपके-चुपके होता है। जैसे चुपके से तूष्णी-शंस कही जाती है उसी प्रकार चुपके से वीर्य भी विकृत होते हैं। वह 'तूष्णी-शंस' को छः पदों में (ठहर-ठहर कर) कहता है। पुरुष छः वाला है अर्थात् उसके छः अङ्ग होते हैं। इस प्रकार वह आत्मा को छः वाला अर्थात् छः अंगों वाला बना देता है। 'तूष्णी-शंस' को कह कर वह "पुरोरुक्" कहाता है। इस प्रकार वह विकृत वीर्य को जन्म देता है। पहले विकार होता है फिर जन्म।

'पुरोरुक्' को उच्च स्वर से कहता है। इस प्रकार वह इसको उच्च स्वर से जन्म देता है (अर्थात् बच्चा पैदा होते ही रोता है)।

'पुरोरुक्' को बारह पदों में कहता है। बारह मास का संवत्सर होता है। संवत्सर प्रजापति है। वह सब सृष्टि को बनाता है। जो इस सब जगत् को उत्पन्न करता है वही यजमान को उत्पन्न करता है और वही उसको सन्तान और पशुओं से युक्त करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशुओं से युक्त होता है। वह 'पुरोरुक्' को जातवेद के लिये पढ़ता है। जातवेद का नाम अंतिम पद में आता है।

इस पर प्रश्न उठाते हैं कि जब जातवेद तीसरे सवन का देवता है तो प्रातः सवन में जातवेद के प्रति 'पुरोरुक' क्यों पढ़ते हैं। इसका उत्तर यह है कि जातवेद प्राण हैं। जातवेद कहते हैं उसको जो उत्पन्न हुओं को जाने (जात = उत्पन्न हुआ ; वेद = जाने)। जितने उत्पन्न हुओं को वह जानता है, उतने ही होते हैं। जिनको वह नहीं जानता वह कैसे हो सकते हैं ? जिसने समझ लिया कि "आज्य शस्त्र" द्वारा मेरी आत्म-संस्कृति (आत्म-सुधार) हो गई वही ज्ञानी है। (७)

४०—अब वह इस आज्य सूक्त को पढ़ता है :—

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै। गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥१॥

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः। हविष्मन्तस्तमीलते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२॥

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः। अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा। यतो नः प्रुष्णवद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः। ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः। शं नः शोचा मरुद् वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥

नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु। द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७॥ (ऋ० ३।१३।१-७)

'प्र' का अर्थ है प्राण। सब जीव प्राण पाकर ही चलते फिरते हैं। इस प्रकार होता (यजमान में) प्राण धारण कराता है और प्राणों को सुसंस्कृत करता है। वह कहता है "दीदिवांसमपूर्व्यं" (३।१३।५) क्योंकि मन ही चमकने वाला है। मन से पहले कुछ नहीं। इस प्रकार वह मन को उत्पन्न करता है और मन का संस्कार करता है।

वह कहता है "स नः शर्माणि वीतये" (३।१३।४)। वाणी ही ही शर्म है। जो दूसरों की बात को दुहराता है, उसके लिये कहते हैं कि हमने इस को चुप कर दिया। इसको पढ़कर वह वाणी को उत्पन्न करता है और वाणी का संस्कार करता है।

कहता है "उत नो ब्रह्मन्नविषः" (३।१३।६)। श्रोत्र ब्रह्म है। श्रोत्र से ही ब्रह्म को सुनता है। श्रोत्र में ब्रह्म प्रतिष्ठित है। इस प्रकार वह श्रोत्र को उत्पन्न करता है और श्रोत्र का संस्कार करता है।

वह कहता है "स यन्ता विप्र एषां" (३।१३।३) अपान यंता (नियंता) है। क्योंकि प्राण अपान के द्वारा नियंत्रित होता है और पीछे नहीं लौट सकता। इस प्रकार वह अपान को उत्पन्न करता और अपान का संस्कार करता है।

वह कहता है "ऋतवा यस्य रोदसी" (३।१३।२)। चक्षु ऋत है। अगर दो आदमियों में से एक कहे "मैंने स्वयं अपनी आँख से देखा है" तो उसका विश्वास कर लेते हैं। इस प्रकार चक्षु को उत्पन्न करता और चक्षु का संस्कार करता है।

"नूनो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमत् वसु" (ऋ० ३।१३।७) यह पढ़कर समाप्त करता है। आत्मा ही 'समस्त' है, सहस्रवान् है तोकवान् है, पुष्टिमान है। इस को पढ़कर वह 'समस्त आत्मा' को उत्पन्न करता और समस्त आत्मा को सुसंस्कृत करता है।

अब वह एक याज्य मंत्र पढ़ता है। याज्य पूर्ति है। याज्य पुण्य है। याज्य लक्ष्मी है। इस प्रकार पुण्य लक्ष्मी को उत्पन्न करता है और उसका संस्कार करता है।

जो इस रहस्य को समझता है वह छन्दों, देवताओं, ब्रह्म और अमृत से युक्त होकर देवताओं में मिल जाता है।

जो जानता है कि मैं इस प्रकार छन्दों, देवताओं, ब्रह्म और अमृत से युक्त हो गया वही ज्ञानी है। यही अध्यात्म विद्या है। यही आधिदैवत विद्या है। (८)

४१—'तूष्णीशंस' को छः पदों में पढ़ता है। छः ऋतुएं होती हैं। इस प्रकार वह ६ ऋतुओं को बनाता और उन्हीं में प्रवेश करता है!

'पुरोरुक्' को बारह पदों में पढ़ता है। बारह महीने होते हैं। इस प्रकार वह महीनों को बनाता और उनमें प्रवेश करता है।

"प्रवो देवाय अग्नये" (ऋ० ३।१३।१) पढ़ता है। 'प्र' अन्तरिक्ष है। यह सब भूत अन्तरिक्ष में ही रहते हैं। वह अन्तरिक्ष को बनाता है और अन्तरिक्ष में प्रवेश करता है।

"दीदिवांसमपूर्व्यं" (३।१३।५) पढ़ता है। यह सूर्य ही 'दीदिव' या चमकने वाला है। इससे पूर्व कोई नहीं है। वह इस प्रकार सूर्य को बनाता है और सूर्य्य में ही प्रवेश करता है।

"स नः शर्माणि वीतये" (३।१३।४) पढ़ता है। अग्नि शर्माणि है। यही अन्न आदि को देती है। इस प्रकार अग्नि को ही बनाता है और उसी में प्रवेश करता है।

"उतनो ब्रह्मन्नविषः" (३।१३।६) पढ़ता है। चन्द्रमा ही ब्रह्म है, इस प्रकार चन्द्रमा को बनाता है और चन्द्रमा में ही प्रवेश करता है।

"स यंता विप्र एषाम्" (३।१३।३) इसको पढ़ता है। वायु ही नियंता है। वायु से ही अन्तरिक्ष नियंत्रित है, और इधर उधर नहीं हो सकता। इसको पढ़कर वह वायु को बनाता और वायु में प्रवेश करता है।

"ऋतावा यस्य रोदसी" (३।१३।२) इसको पढ़ता है। द्यौ और पृथिवी रोदसी हैं। इस प्रकार वह द्यौ और पृथिवी को बनाता है और उन्हीं में प्रवेश करता है।

"नूनो रास्वसहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमत् वसु" (३।१३।७) इसको पढ़ कर समाप्त करता है। संवत्सर ही 'समस्त' है "सहस्रवान्, तोकवान् और पुष्टिमान्" है। वह समस्त संवत्सर को बनाता है और उसी में प्रवेश करता है।

"याज्य" पढ़ता है। वृष्टि याज्य है। विद्युत् ही याज्य है। क्योंकि विद्युत् ही वर्षा और अन्न को उत्पन्न करती है। इस प्रकार वह विद्युत् को बनाता और उसमें प्रवेश करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह इस सब से युक्त होकर देवतामय हो जाता है। (९)

ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पंचिका का पांचवां अध्याय समाप्त।

तीसरी पत्रिका

पहला अध्याय

१—यह जो प्रउग शास्त्र है वह ग्रहों* में से सोम की आहुतियां देने के लिये उपयुक्त है। प्रातः काल के नौ ग्रह हैं। बहिष्पवमान सूक्त के नौ मंत्रों से इनकी आहुति की जाती है। इस स्तुति के पश्चात् अध्वर्यु दसवें ग्रह को लेता है। हर एक मंत्र के साथ जो हिंकार बोली जाती हैं वह दसवां मंत्र मान लिया जाता है। इस प्रकार दश ग्रह और दश मंत्रों का समन्वय हो जाता है।

होता वायु वाले तीन मंत्रों को पढ़ता है :—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः ॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे। उरूची सोमपीतये ॥

(ऋ० १।२।१-३)

---

*ग्रह उस प्याले को कहते हैं जो पात्र अर्थात् कलश के ऊपर रक्खा जाता है, और जिसमें से लेकर सोम की आहुतियां दी जाती हैं। नौ ग्रह यह हुये —(१) उपांशु (२) अन्तर्याम (३) वायव (४) ऐन्द्र-वायव (५) मैत्रावरुण (६) अश्विन (७) शुक्र (८) मन्थी (९) आग्रायण।

इससे वायु के ग्रह की स्तुति की जाती है।

नीचे के तीन इन्द्र-वायु वाले मंत्र पढ़ता है :—

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि ॥

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत् ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्ष्वित्था धिया नरा ॥

(ऋ० १।२।४-६)

यह इन्द्र-वायु के ग्रह की स्तुति हुई।

नीचे के तीन मित्रा-वरुण के मंत्र पढ़ता है :—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ॥

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ॥

(ऋ० १।२।७-९)

इससे मित्रावरुण के ग्रह की स्तुति हुई।

नीचे के तीन मंत्र दो अश्विनों के लिये पढ़े गये :—

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत् पाणी शुभस्पती। पुरुभुजा चनस्यतम् ॥

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया। धिष्ण्या वनतं गिरः ॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातं रुद्रवर्तनी ॥

(ऋ० १।३।१-३)

इससे अश्विनों के ग्रहों की स्तुति की गई।

नीचे के तीन इन्द्र के मंत्र पढ़ता है :—

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥

(ऋ० १।३।४-६)

इससे शुक्र और मंथी ग्रह की स्तुति हुई।

अब विश्वेदेवों के तीन मंत्र पढ़ता है :—

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥
विश्वे देवासो अस्रिध एहि मायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥
(ऋ० १।३।७-९)

इससे आग्रायण ग्रह की स्तुति हुई ।
अब सरस्वती के तीन मंत्र पढ़ता है :—
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां । यज्ञं दधे सरस्वती ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥
(ऋ० १।३।१०-१२)

कोई सरस्वती का ग्रह ही नहीं । सरस्वती वाणी है । वाणी से जो कोई ग्रह लिये जाते हैं उन्हीं की इन शस्त्रों से स्तुति हो जाती है । जो इस रहस्य को समझता है वह कीर्ति पाता है । (१)

२—यह जो प्रउग है इससे अन्न की प्राप्ति करता है । प्रउग में अन्य देवता की स्तुति होती है । और प्रउग में अन्य का ही कृत्य होता है । जो इस रहस्य को समझता है वह ग्रहों में अन्यान्य खाद्य पदार्थों को रखता है । यह जो प्रउग शस्त्र है वह यजमान का सबसे निकटस्थ सम्बन्धी है । इस लिये उसको इसका बहुत ध्यान रखना चाहिये । ऐसा कहा जाता है, क्योंकि इसी से होता संस्कार करता है ।

वह वायु के तीन मंत्रों को पढ़ता है । इसीलिये कहते हैं कि वायु प्राण है । प्राण वीर्य है । शरीर में वीर्य पहले उत्पन्न होता है, फिर मनुष्य पैदा होता है । यह जो वायु के मंत्रों को पढ़ता है उससे यजमान में प्राण का संस्कार करता है ।

इन्द्र और वायु के तीन मंत्र इसलिये पढ़ता है कि जहाँ प्राण है, वहाँ अपान है । इनके पढ़ने से यजमान में प्राण और अपान का संस्कार करता है ।

वह मित्र और वरुण के लिये तीन मंत्र पढ़ता है। यह इस लिये कि कहते हैं कि जब आदमी बनता है तो पहले आंख बनती है। मित्र और वरुण के लिये मंत्र पढ़ कर वह मानों यजमान की आंख का संस्कार करता है।

वह अश्विनों के तीन मंत्र पढ़ता है क्योंकि बच्चे के पैदा होने पर कहते हैं कि यह सुनने की इच्छा करता है। यह ध्यान दे रहा है। अश्विन के मंत्र पढ़कर वह यजमान के कानों का संस्कार करता है।

इन्द्र के तीन मंत्र पढ़ता है क्योंकि उत्पन्न हुये बच्चे के विषय में कहा करते हैं कि यह पहले गर्दन उठाता है, फिर सिर। इन्द्र के मंत्र पढ़कर मानो वह यजमान में वीर्य का संस्कार करता है।

विश्वेदेवों के तीन मंत्र पढ़ता है क्योंकि जब बच्चा पैदा होता है तो पीछे से हाथ पैर हिलाता है। अङ्ग विश्वेदेवों के हैं। इन मंत्रों को पढ़ कर मानो वह यजमान के अंगों का संस्कार करता है।

वह सरस्वती के लिये तीन मंत्र पढ़ता है। क्योंकि जब बच्चा पैदा होता है तो वाणी सब से पीछे आती है। सरस्वती वाणी है। सरस्वती के तीन मंत्र बोलकर मानो वह यजमान में वाणी का संस्कार करता है।

जो होता इस रहस्य को समझता है या जिस यजमान के लिये होता मंत्र पढ़ता है, वह एक बार उत्पन्न होने पर भी इन सब देवताओं, सब स्तुतियों, सब छन्दों, सब प्रउगों, सब सवनों द्वारा फिर नया जन्म पाता है। (२)

३—यह जो प्रउग शस्त्र है वह प्राणों के लिये है। सात देव के लिये मंत्र पढ़े जाते हैं। सिर में सात प्राण हैं। इनको पढ़कर मानो (होता यजमान के) सिर में सात प्राणों को रखता है।

यहां प्रश्न करते हैं कि क्या होता यजमान के लिये पाप या भद्र कर सकता है ? इसका उत्तर यह है कि जो जिसका होता होता है वह उसके लिये जो चाहे कर सकता है। यदि वह चाहे कि यजमान को प्राणों से वंचित करदे तो वायु के मंत्रों में गड़बड़ कर दे या एक पद छोड़ दे जिससे मंत्रों में गड़बड़ हो जाय। बस यजमान प्राणों से वंचित हो जायगा।

यदि वह चाहे कि यजमान को प्राण और अपान से वंचित कर दे तो इन्द्र-वायु के मंत्रों में गड़बड़ करदे या एक पद छोड़ दे जिससे मंत्रों में गड़बड़ हो जाय। बस यजमान प्राण और अपान से वंचित हो जायगा।

अगर चाहे कि आंख से उसे वंचित कर दे तो मित्र-वरुण के मंत्रों में गड़बड़ कर दे या एक पद छोड़ दे जिससे मंत्रों में गड़बड़ हो जाय। बस यजमान आंख से वंचित हो जायगा।

अगर चाहे कि कान से उसे वंचित कर दे तो अश्विनों के तीन मंत्रों में गड़बड़ कर दे या एक पद छोड़ दे जिससे मंत्रों में गड़बड़ हो जाय। बस यजमान कान से वंचित हो जायगा।

अगर चाहे कि उसे वीर्य से वंचित करते तो इन्द्र के तीन मंत्रों में गड़बड़ कर दे या एक पद छोड़ दे जिससे मंत्रों में गड़-बड़ हो जाय। बस यजमान वीर्य से वंचित हो जायगा।

अगर चाहे कि उसको अंगों (हाथ पैर) से वंचित कर दे तो विश्वेदेवों के मंत्रों में गड़बड़ कर दे या एक पद छोड़ दे जिस से मंत्रों में गड़बड़ हो जाय। बस यजमान अंगों से वंचित हो जायगा।

अगर वह चाहे कि उसे वाणी से वंचित करदे तो सरस्वती के मंत्रों में गड़बड़ कर दें या एक पद छोड़ दे जिससे मंत्रों में गड़बड़ हो जाय और यजमान वाणी से वंचित हो जायगा।

अगर वह चाहे कि उसको सब अंगों और आत्मा से युक्त रक्खूँ तो वह उन मंत्रों को यथाविधि ठीक ठीक पढ़े। इस प्रकार वह उसको सब अंगों और आत्मा से युक्त रखता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सब अंगों और आत्मा से अपने को युक्त रखता है। (३)

४—यहाँ प्रश्न होता है कि जब शस्त्र स्तोत्र के अनुकूल होना चाहिये तो सामगान करने वाले जिन अग्नि वाले मंत्रों को पढ़ते हैं उनको होता वायु वाले मंत्र से कैसे प्रतिपादन करता है। अग्नि के मंत्र वायु के मंत्रों के अनुकूल कैसे हो सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि यह जो देवता है वह अग्नि के ही शरीर हैं। यह जो अग्नि जलता है वह उसका वायु रूप है। इस प्रकार वायु के रूप में अग्नि की स्तुति करता है। अग्नि जो जलता है वह दो भागों में जलता है। इन्द्र और वायु दो हैं। यह उसका ऐन्द्र-वायू रूप है। इस प्रकार वह ऐन्द्र-वायू के रूप में अग्नि की स्तुति करता है। यह जो अग्नि जलने में ऊपर नीचे होता है यह मित्र और वरुण का रूप है। इस प्रकार वह मित्रावरुण के रूप में अग्नि की स्तुति करता है।

अग्नि का जो भयानक स्पर्श है वह वरुण का रूप है। यह जो भयानक स्पर्श होते हुये भी मित्र के समान उसके पास बैठते हैं यह उसका मित्र रूप है। इस प्रकार वह मित्रावरुण के रूप में अग्नि की स्तुति करता है।

यह जो दो भुजाओं और दो अरणियों से घिस कर अग्नि जलाते हैं यह अग्नि का अश्विन-रूप है। इस प्रकार वह अश्विनों के रूप में अग्नि की स्तुति करता है।

यह जो बड़े जोर से बबबब करके जलता है जिससे डरकर लोग भाग जाते हैं यह उसका इन्द्र का रूप है। इस प्रकार वह इन्द्र के रूप में अग्नि की स्तुति करता है।

यह जो एक अग्नि को कई जगह ले जाकर कई भाग कर देते हैं यह उसका विश्वेदेवों का रूप है। इस प्रकार विश्वेदेवों के रूप में अग्नि की स्तुति करता है।

जब अग्नि शोर करके बातचीत करने के समान जलता है, यह उसका सरस्वती रूप है। इस प्रकार होता सरस्वती के रूप में अग्नि की स्तुति करता है।

इस प्रकार जिन तीन-तीन मंत्रों को पढ़ते हैं उनमें भिन्न-भिन्न देवते होते हुये भी सामगान करने वाली स्तुति को वायु के मंत्र से आरंभ करके अनुकूलता दिखाते हैं।

विश्वेदेवों के लिये शस्त्र पढ़कर नीचे का याज्य विश्वेदेवों के प्रति पढ़ता है :—

विश्वेभिः सोम्यं मध्वऽग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः॥

(ऋ० १।१४।१०)

इस प्रकार सब देवतों को भाग देकर वह सन्तुष्ट करता है। (४)

५—यह जो वषट्कार है वह देवों का पात्र है। वषट्कार रूपी देवपात्र से वह देवतों को तृप्त करता है। अनुवषट्कार से वह देवों को पुनः तृप्त करता है, जैसे लोग घोड़ों या गायों को बार बार घास या पानी देते हैं।

इस पर शंका करते हैं कि जिस अग्नि में पहले आहुति दी थी उसी में फिर क्यों आहुति देते हैं और धिष्ण्या अग्नि के पास वषट्कार करते हैं? इसका उत्तर यह है कि अनुवषटकार "सोमस्याग्ने वीहि" करके वह वषट्कार भी करता है और धिष्ण्यों को तृप्त भी करता है।

प्रश्न करते हैं कि सोम का वह स्विष्टकृत भाग कौन सा है जिसमें से बिना समाप्त किये हुये भक्षण कर लेते हैं और अनुवषट्कार करते हैं? इसका उत्तर यह है कि 'सोमस्याग्ने वीहि'

इस अनुवषट्कार से वह कृत्य को समाप्त कर देते हैं और सोम पान कर लेते हैं। यही सोम का स्विष्टकृत भाग है। अब वह वषट्कार करता है। (५)

६—यह जो वषट्कार है वह वज्र है। यदि उसका कोई शत्रु हो तो वषट्कार करते हुये उस शत्रु का ध्यान करले, बस वह वषट्कार वज्र के रूप में शत्रु का हनन कर देगा।

वषट्कार में "षट्" (छः) शब्द आया है। छः ऋतुयें हैं। इस प्रकार वह ऋतुओं को बनाता और स्थापित करता है। जो ऋतुओं में स्थापित हो गया वह दूसरी चीजों में भी स्थापित हो जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह भली भांति स्थापित हो जाता है।

वेद के पुत्र हिरण्यदन ने इस सम्बन्ध में यह कहा है :—

वषट्कार में 'षट्' (छः) से होता इन छः चीजों को स्थापित करता है। द्यौ अंतरिक्ष में प्रतिष्ठित हैं। अंतरिक्ष पृथ्वी में। पृथिवी जलों में। जल सत्य में। सत्य ब्रह्म में। ब्रह्म तप में। यदि यह चीजें स्थापित हो गईं तो शेष सब कुछ स्थापित हो जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह भली भांति स्थापित हो जाता है।

"वौषट्" का 'वौ' छः ऋतुओं का बोधक है। वषट्कार कहकर होता यजमान को ऋतुओं में भली भांति स्थापित करता है। जैसा वह देवों के साथ करता है वैसा देव उसके साथ करते हैं। (६)

७—वषट्कार तीन होते हैं। (१) वज्र (२) धामच्छद् (३) रिक्त। यह जो उच्चस्वर से और बल से वषट्कार करते हैं वह वज्र है। इससे वह जब चाहे तब अपने शत्रु और अहित-कारी को जिसको वह दबाना चाहे दबा सकता है। जिस यज-

मान के शत्रु हों उसके लिये वह वषट्कार रूपी इस वज्र का प्रयोग करे।

यह धामच्छद् इसलिये हैं कि जिस ऋचा के साथ बोला जाता है उसी का भाग हो जाता है बिना कुछ भाग छोड़े हुये। प्रजा और पशु उसके पास होते हैं। इसलिये प्रजा और पशु की कामना वाले को यह वषट्कार करना चाहिये।

जिसमें 'षट्' धीरे से कहा जाता है वह रिक्त है। इस प्रकार वह आत्मा और यजमान दोनों को रिक्त (शून्य) कर देता है। जो ऐसा वषट्कार करता है, वह स्वयं भी पापी है और वह भी जिसके लिये यह वषट्कार किया जाय। इसलिये उसको यह वषट्कार न करना चाहिये।

यहां प्रश्न होता है कि क्या होता यजमान को पापी या भद्र बना सकता है? इसका उत्तर यह है कि हां, यदि वह किसी का होता है तो ऐसा कर सकता है। इस समय होता यजमान के लिये जो चाहे कर सकता है। यदि वह चाहे कि यजमान को यज्ञ का फल न मिले तो ऋचा और वषट्कार दोनों को एक स्वर से पढ़े। वह उसको यज्ञ के फल से वंचित कर देगा।

अगर वह यजमान को बहुत पापी बनाना चाहे तो भाज्य को जोर से पढ़े और वषट्कार को धीरे से। इससे यजमान पापी हो जायगा।

यदि वह यजमान को प्रसन्न करना चाहे तो याज्य मंत्र को धीरे से पढ़ कर वषट्कार को जोर से पढ़े। यह श्री के लिये किया जाता है। इससे वह यजमान को कल्याण युक्त कर देता है। मंत्र और वषट् को मिला देना चाहिये। बीच में रुकना*

*विषय यह है कि मंत्र को बोलकर पीछे से 'ओ३म्' लगा देते हैं। और सबसे पिछला स्वर छोड़ देते हैं। जैसे अगर मंत्र के अंत में 'य' आया तो 'य' और 'ओ३म्' मिलकर 'योम्' बोलेंगे।

नहीं चाहिये। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशु से युक्त होता है। (७)

८—वषट्कार करते समय जिस देवता के लिये आहुति दी जाय उसी का ध्यान करे। इस प्रकार साक्षात् देवता को प्रसन्न करता है, और उसके लिये प्रत्यक्ष रूप से याज्य मन्त्र पढ़ता है।

वषट्कार ही वज्र है। इस वज्र को अगर बिना शांत किये फेंका जाय तो वह बिजली के समान हानिकारक होता है। इसको शांत करना सभी नहीं जानते, न उसकी प्रतिष्ठा को सभी जानते हैं। इसलिये जब बहुतों की मृत्यु होती हो तो वषट्कार के पश्चात् होता 'वागोजः' अनुमन्त्र बोलता है। इस प्रकार शांत होकर वषट्कार यजमान को हानि नहीं पहुँचाता।

यजमान इस अनुमन्त्र को बोले :—

"वषट्कार मा मां प्रमृक्षो माहंत्वां प्रमृक्ष बृहामनऽउपह्वये व्यातेन शरीरं प्रतिष्ठासि प्रतिष्ठां गच्छ प्रतिष्ठा मा गयम।"

"हे वषट्कार! मुझे मत नष्ट कर। मैं तुझे नहीं नष्ट करूँगा। मैं तेरे मन को कोशिश कर के बुलाता हूँ। व्यान रूप से तू शरीर में प्रतिष्ठित है। प्रतिष्ठा को प्राप्त कर और मुझे प्रतिष्ठा को प्राप्त करा।"

कुछ लोग कहते हैं कि यह अनुमन्त्र बहुत बड़ा है और इसका कोई प्रभाव नहीं। इसके स्थान में "ओजः सह ओजः" ऐसा अनुमन्त्र वषट्कार के बाद बोलना चाहिये। ओज और सह वषट्कार के दो बड़े प्यारे शरीर हैं। इस प्रकार वह यजमान को प्रियधाम प्राप्त कराता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रिय धाम को प्राप्त होता है।

"वषट्कार वाणी है और प्राण और अपान है। जब वषट्कार किया जाता है तो यह तीनों शरीर से बाहर निकलते हैं।

इसलिये यह अनुमन्त्र पढ़ना चाहिये "वागोजः सह ओजो मयि प्राणापानौ"। इस प्रकार होता अपने में वाणी, प्राण और अपान को स्थापित करता है और पूर्ण आयु भोगता है। जो इस रहस्य को समझता है वह पूर्ण आयु भोगता है। (८)

९—यज्ञ देवताओं के पास से चला गया। उन्होंने उसको 'प्रैष' मन्त्रों से बुलाना चाहा। इन मन्त्रों का नाम 'प्रैष" इसी लिये है कि इनके द्वारा यज्ञ को चाहा (प्र+इष्)। 'पुरोरुक्' मन्त्रों के द्वारा उन्होंने इसको चमकाया (प्रारोचयन्)। इसी लिये इनको 'पुरोरुक' कहते हैं। उन्होंने उसको वेदी में पाया (विद्-प्रापणे) इसीलिये इसको वेदी कहते हैं। उसको पाकर ग्रहों में ग्रहण किया। इसीलिये इनको 'ग्रह' कहते हैं। इसको पाकर उन्होंने 'निविद' के द्वारा देवताओं से निवेदन किया इसलिये इनका नाम 'निविद' हुआ।

जब कोई किसी खोई हुई चीज को पाना चाहता है तो इसका अधिक भाग चाहता है या कम भाग। जो बड़ा (या बुद्धिमान) होता है वह अच्छा भाग चाहता है। जो समझता है कि 'प्रैष' बलवान हैं वह यह भी जानता है कि वह श्रेष्ठ हैं। 'प्रैष' का अर्थ है खोये हुये को चाहना। इसलिये 'प्रैष' को सिर झुका कर बोलते हैं। (९)

१०—निविद जो हैं वह 'उक्थ' अर्थात् शास्त्रों के गर्भ हैं। प्रातः सवन में वे उक्थ या शास्त्रों से पहले रक्खे जाते हैं। क्योंकि गर्भ में बच्चे नीचे को सिर किये रहते हैं और नीचे को सिर किये पैदा होते हैं।

दोपहर के सवन में वे शस्त्र के मध्य में रक्खे जाते हैं। क्योंकि गर्भ योनि के मध्य में होते हैं। सायं के सवन में निविद पीछे रक्खे जाते हैं। क्योंकि गर्भ ऊपर से पैदा होते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशु से युक्त होता है।

जो निविद हैं वह 'उक्थों' के पेश (किनारे की बेल) हैं। यह प्रातः सवन में उक्थों के पहले रक्खे जाते हैं जैसे जुलाहा कपड़े के सिरे पर बेल बनाता है। दोपहर के सवन में बीच में रक्खे जाते हैं जैसे जुलाहा कपड़े के बीच में बेल बनाता है।

सायंकाल के सवन में यह पीछे रक्खे जाते हैं जैसे जुलाहा कपड़े के पीछे बेल बनाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह यज्ञ के बेल बूटों से अपने को सजा लेता है। (१०)

११—यह जो निविद हैं वह सूर्य्य के हैं। ये जो प्रातः सवन में उक्थों से पहले रक्खे जाते हैं, दोपहर के सवन में बीच में और तीसरे सवन में पीछे। ये सूर्य्य के ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

देवों ने यज्ञ को थोड़ा थोड़ा करके (पच्छः) पाया। इस-लिये निविद भी टुकड़े टुकड़े कर के पढ़े जाते हैं।

जब देवों ने यज्ञ को पाया तो उसमें से एक अश्व निकला। इसलिये कहते हैं कि यजमान निविद पढ़ने वालों को एक अश्व दे। यह वर बहुत अच्छा समझा जाता है।

निविद पढ़ने वाला किसी पद को न छोड़े। क्योंकि पद छोड़ने से मानों यज्ञ में छेद करता है। यज्ञ में छिद्र हो जाने से यजमान बड़ा पापी हो जाता है। इसलिये निविद में कोई पद न छोड़े।

निविद के दो पदों को उलट पलट न करे। यदि उलट पलट करेगा तो यज्ञ उलट पलट हो जायगा और यजमान भी उलट पलट हो जायगा। इसलिये निविद के दो पदों को उलट पलट न करे।

निविद के दो पदों को मिलाना भी न चाहिये। यदि निविद के दो पदों को मिला देगा तो यज्ञ की आयु को बिगाड़ देगा

और यजमान के लिये बड़ा कष्टदायक होगा। इसलिये निविद पढ़ते हुये दो पदों को मिलाना नहीं चाहिये।

केवल दो पदों को मिलाना चाहिये 'प्रेदं ब्रह्म', प्रेदं क्षत्र'। ऐसा करने से ब्रह्म और क्षत्र को जोड़ता है। इससे ब्रह्म और क्षत्र जुड़ जाते हैं।

निविद के लिये तीन मंत्रों से अधिक के सूक्त चुने, क्योंकि निविद के पद सूक्त के भिन्न भिन्न मन्त्रों के अनुकूल होने चाहिये। इसलिये निविद के लिये तीन या चार मन्त्रों से अधिक के सूक्त चुनने चाहिये। निविद के द्वारा स्तोत्र बढ़ जाता है।

तीसरे सवन में निविद को एक मन्त्र शेष रहने पर कहे। अगर दो मन्त्र शेष रहने पर निविद कहेगा तो उत्पत्ति की शक्ति को नष्ट कर देगा और गर्भों को बालक से शून्य कर देगा। इसलिये तीसरे सवन में एक मन्त्र शेष रहने पर निविद कहे।

निविद को सूक्त से आगे न जाने दे। जिस सूक्त से निविद आगे निकल जाय तो फिर उसको पीछे न लौटावे क्योंकि उसका स्थान नष्ट हो गया। अब दूसरे देवता का और दूसरे छन्द का एक सूक्त चुने और उसमें निविद रक्खे।

दूसरे निविद सूक्त को पढ़ने से पहले ऋग्वेद मंडल १० का ५७वां सूक्त पढ़े :—

"मा प्रगाम पथो वयं" इत्यादि।

"हम मार्ग से न भटकें" इत्यादि।

क्योंकि जो यज्ञ में भूल जाता है वह मानों मार्ग से भटक जाता है।

"मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः" (ऋ० १०।५७।१ का दूसरा पद) पढ़ कर वह यजमान को यज्ञ में भूल करने से बचा लेता है।

"मान्तः स्थुर्नो अरातयः" (ऋ० १०।५७।१ का तीसरा पद) पढ़ने से वह शत्रुओं को हराकर मार भगाता है।

"यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं निशीमहि"

इसमें 'तन्तु' का अर्थ है सन्तान। क्योंकि इसको पढ़कर होता यजमान की सन्तान को फैलाता है (संतनोति) ।

(ऋ० १०।५७।२)

"मनो न्वाहुवामहे नाराशंसेन सोमेन" । (ऋ० १०।५७।३)

यह मन्त्र पढ़ता है क्योंकि मन से ही यज्ञ ताना जाता है। मन से ही किया जाता है। यही उसका (निविद् के सूक्त से आगे निकल जाने में जो भूल हुई उसका) प्रायश्चित है। (११)

एतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त

दूसरा अध्याय

१२—कहते हैं कि देवताओं के लिये वैश्यों की कल्पना होनी चाहिये। एक छन्द को दूसरे छन्द में रखना चाहिये। प्रातः सवन में होता तीन अक्षर का 'शोंसावोम्' कहता है और अध्वर्यु पांच अक्षर का "शंसामोदैवोम्" कहता है। इस प्रकार आठ अक्षर हो जाते हैं। आठ अक्षर की गायत्री होती है। इस प्रकार प्रातः सवन में पहले इसको गायत्री बना देते हैं। प्रातः सवन के अन्त में होता चार अक्षरों का "उक्थं वाचि" कहता है। इस पर अध्वर्यु चार अक्षरों का "ओमुक्थशः" कहता है। इस प्रकार प्रातः सवन के आरंभ और अन्त में गायत्री की कल्पना हो जाती है।

दोपहर के सवन में होता छः अक्षरों का "अध्वर्योशोंसावोम्" कहता है। इस पर अध्वर्यु पांच अक्षरों का 'शंसामोदैवोम्' कहता है। इस प्रकार ग्यारह अक्षर हो जाते हैं। ग्यारह अक्षर का त्रिष्टुभ् होता है। इस प्रकार दोपहर के सवन के पहले त्रिष्टुभ् की कल्पना हो जाती है। सवन के अन्त में होता सात अक्षरों का "उक्थं वाचि इन्द्राय" कहता है। अध्वर्यु चार

अक्षरों का "ओमुक्थाशाः" कहता है। यह ग्यारह अक्षर हो जाते हैं। ग्यारह अक्षरों का त्रिष्टुभ् होता है। इस प्रकार दोपहर के सवन के आरंभ और अन्त में त्रिष्टुभ् की कल्पना हो जाती है।

तीसरे सवन के आरंभ में होता सात अक्षर का "अध्वर्योशो शोंसावोम्" कहता है। अध्वर्यु पांच अक्षर का "शंसामो दैवोम्" कहता है। यह बारह अक्षर हो जाते हैं। बारह अक्षर की जगती होती है। इस प्रकार तृतीय सवन के आदि में जगती छन्द की कल्पना हो जाती है। तृतीय सवन के अन्त में होता ग्यारह अक्षर का "उक्थं वाचि इन्द्राय देवेभ्यः", अध्वर्यु एक अक्षर का 'ओम्' कहता है। इस प्रकार बारह अक्षर हो जाते हैं। बारह अक्षरों की जगती होती है। इस प्रकार तीसरे सवन के आरंभ और अन्त दोनों में जगती की कल्पना की जाती है।

ऋषि ने इसको देखा और कहा :—

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभ निरतक्षत। यद् वा जगज् जगत्याहितं पदं य इत्तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥

(ऋ० १।१६४।२३)

"जो गायत्री को गायत्री पर, रखना जानते हैं, जिनको ज्ञान है कि त्रिष्टुभ् से त्रिष्टुभ् निकलता है और जगती जगती में रक्खा जाता है वह अमृतत्व को प्राप्त होते हैं।"

इस प्रकार जो इस रहस्य को समझता है वह छन्द में छन्द को रखता है और देवताओं के लिये वैश्यों की कल्पना करता है। (१)

१६—प्रजापति ने देवों के लिये यज्ञ और छन्दों के भाग अलग अलग कर दिये। उसने प्रातः सवन में अग्नि और वसुओं के लिये गायत्री छन्द दिया। दोपहर के सवन में इन्द्र

और रुद्रों के लिये त्रिष्टुभ् को, विश्वेदेवों और आदित्यों के लिये तीसरे सवन में जगती को दिया।

उसका अपना छन्द अनुष्टुभ् था। उसको उसने अन्तिम मंत्र में जो 'अच्छावाक' का मंत्र है कर दिया। इस पर अनुष्टुभ् ने कहा, "तू देवों में बड़ा पापी है कि तूने अपने ही मुझ अनुष्टुभ् छन्द को अन्त की अच्छावाकीय ऋचा में ढकेल दिया। उसने भूल स्वीकार कर ली और उसने अपना सोम यज्ञ लिया और अनुष्टुभ् को उस के पहले ही अर्थात् मुख पर ही रख दिया। इसलिये सब सवनों में पहले अनुष्टुभ् रक्खा जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह पहला और मुख्य हो जाता है और श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

प्रजापति ने अपने ही सोमयाग में ऐसा किया। इसलिये ऐसा करने से यजमान यज्ञ का स्वामी हो जाता है और यज्ञ ठीक हो जाता है। जब कभी यजमान इस प्रकार यज्ञ का स्वामी होकर यज्ञ करता है वह यज्ञ जनता के लिये होता है। (२)

१४—अग्नि देवताओं का होता था। मृत्यु उसके लिये बहिष्पवमान स्तोत्र में बैठा छिपा रहा। अनुष्टुभ् छन्द में आज्य शस्त्र आरंभ करके उसने मृत्यु को जीता। मृत्यु आज्य में छिप रहा। प्र-उग शस्त्र का आरम्भ करके उसने मृत्यु को परास्त किया।

दोपहर के सवन में वह मृत्यु (अग्नि के लिये) पवमान में बैठा रहा। उसने अनुष्टुभ् के साथ मरुत्वतीय शस्त्र आरम्भ करके मृत्यु को जीता। वह उस दोपहर के सवन में बृहती छन्दों में न बैठ सका। क्योंकि बृहती प्राण हैं। इस प्रकार मृत्यु प्राणों को न ले सका। इसीलिये होता दोपहर के सवन में बृहती छन्द में स्तोत्रिय के द्वारा कहता है। बृहती प्राण हैं ऐसा करने का प्रयोजन ही प्राणों की रक्षा है।

तीसरे सवन में मृत्यु अग्नि के लिये पवमान स्तोत्र में छिपा रहा। अनुष्टुभ् के साथ वैश्वदेव शस्त्र आरंभ करके उसने मृत्यु को जीता। मृत्यु यज्ञायज्ञीय में जा छिपा। वैश्वानरीय अग्नि-मारुत सूक्त का आरंभ करके उसने मृत्यु को जीता। वैश्वानरीय सूक्त वज्र है। यज्ञायज्ञीय साम प्रतिष्ठा है। वैश्वानरीय सूक्त को पढ़ कर वह मृत्यु को अपने स्थान से निकाल देता है। मृत्यु के सब पाशों और सब गदाओं (स्थाणून्) का पार करके अग्नि छूट आया। जो होता इस रहस्य को समझता है वह सब झंझटों से छूट जाता है और पूरी आयु प्राप्त करता है। (३)

१५—इन्द्र ने वृत्र को मार कर यह सोचा कि शायद मैं इसको न हरा सका, और दूर-दूर तक फिरता रहा। यहाँ तक कि वह बहुत दूर देश में पहुँचा।

यह सब से दूर जगह अनुष्टुभ् है। वाणी ही अनुष्टुभ् है। वह (इन्द्र) वाणी में प्रवेश करके वहीं पड़ा रहा। सब प्राणी अलग अलग होकर उसको तलाश करते रहे। पितरों ने उसको एक दिन पहले ढूँढ़ लिया और देवों ने एक दिन पीछे। इसीलिये पितरों के लिये कृत्य एक दिन पहले किया जाता है और देवों के लिये एक दिन पीछे।

उन्होंने कहा, "हम सोम निचोड़ें। इन्द्र हमारे पास शीघ्र ही आयेगा"। उन्होंने कहा "अच्छा", और सोम निचोड़ा। और नीचे का मंत्र पढ़कर उसको सोम के पास लाये :—

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि। तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते॥ (ऋ० ८।६८।१)

नीचे के मंत्र से इन्द्र 'सुत' शब्द के द्वारा देवताओं पर प्रकट हुआ :—

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन् ररिमा ते ॥
(ऋ० ८।२।१)

नीचे के मन्त्र से उन्होंने उसे यज्ञ के मध्य में बिठायाः—

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः। आ शन्तम शन्तमाभिर-भिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ (ऋ० ८।५३।५)

जो इस रहस्य को समझता है अपने यज्ञ को इन्द्र के सामने करता है और इन्द्र के कारण उसका यज्ञ सफल हो जाता है। (४)

१६—जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तो सब देवताओं ने जाना कि वह मार न सका और वह भाग गये। केवल मरुत् जो उसी के सम्बन्धी हैं न भागे। ऊपर के मंत्र में जो "स्वापयः" "मरुतों" का वर्णन है वह प्राण हैं। प्राणों ने इन्द्र को न छोड़ा। इसलिये 'स्वापि' युक्त प्रगाथ बोला जाता है अर्थात् "आस्वापे स्वापिभिः"। जब इस प्रगाथ के बाद इन्द्र के लिये मंत्र पढ़ा जाता है तो इसी को "मरुत्वतीय शास्त्र" कहते हैं। यदि 'स्वापि युक्त' यह प्रगाथ बोला जाता है तो "मरुत्वतीय शस्त्र ही बन जाता है"। (५)

१७—अब ब्रह्मणस्पति के प्रगाथ को बोलता है। ब्रह्मणस्पति को पुरोहित बनाकर देवों ने स्वर्ग को जीता और इस लोक को भी। इस लिये यजमान भी बृहस्पति को पुरोहित बनाकर स्वर्ग लोक को जीत लेता है और इस लोक को भी।

यह दोनों प्रगाथ स्तुति-शून्य होते हैं। उनको दुहरा कर पढ़ा जाता है (चौथे पाद को तीन-तीन बार पढ़ने से दो मंत्रों के तीन मंत्र या तृच् हो जाते हैं)।

यहाँ कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि जब अन्य कोई मंत्र स्तुति-शून्य होते हुये दुहराये नहीं जाते तो यह दोनों प्रगाथ स्तुति-शून्य होते हुये क्यों दुहराये जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि जो मरुत्वतीय शस्त्र है, वह पवमान उक्थ वाला है। यह स्तोत्र

के छः मंत्रों, बृहती के छः मंत्रों और त्रिष्टुभ् के तीन मंत्रों में गाया जाता है। इस प्रकार दोपहर के सवन के पवमान स्तोत्र में तीन छन्द और पंद्रह मंत्र होते हैं। यहां प्रश्न यह है कि यह तीन छन्दो वाला और पंद्रह मन्त्रों वाला दोपहर के सवन का पवमान अनुशस्त कैसे होता है। इसका उत्तर यह है कि प्रतिपद् तृच् (ऋ० ८।६८।१-३) की अन्तिम दो ऋचायें गायत्री छन्द में हैं (पहली ऋचा अनुष्टुभ् में है) और प्रतिपद के पीछे के मंत्र भी गायत्री छन्द में हैं। इस प्रकार पवमान स्तोत्र के गायत्री मंत्र अनुशस्त हो जाते हैं। इन दोनों प्रगाथों द्वारा बृहती अनुशस्त होती हैं।

इन बृहती मंत्रों को सामगान करने वाले- रौरव और यौधाजय स्वरों में तीन वार दुहरा कर पढ़ते हैं। इसलिये ये दो प्रगाथ स्तुति-शून्य होकर भी दुहरा कर पढ़े जाते हैं। इस प्रकार शस्त्र स्तोत्र के अनुकूल हो जाता है।

दो धाय्य त्रिष्टुभ् में हैं और निविद का सूक्त भी। इन मंत्रों से त्रिष्टुभ् अनुशस्त होते हैं। इस प्रकार जो इस रहस्य को समझता है उसके लिये तीन छंद और पंद्रह मंत्रों वाले पवमान अनुशस्त होते हैं। (६)

१८—वह धाय्यों को पढ़ता है। प्रजापति ने धाय्यों के द्वारा इन लोकों में जिस जिस चीज की कामना की उसका पान किया (अधयत्)। इसी प्रकार जो यजमान इस रहस्य को समझता है वह इन धाय्यों के द्वारा जिस जिस कामना को करता है उसका इन लोकों में पान करता है (धयति) (धय से धाय्य बना है)।

धाय्य क्या हैं ? जहाँ जहाँ देवों ने यज्ञ में छिद्र पाये वहां उनको धाय्यों से छिपा दिया। इस लिये उनको धाय्य कहते

हैं ('धा' रखना से)। जो इस रहस्य को समझता है उसका यज्ञ बिना छिद्र या त्रुटि के पूरा हो जाता है।

जिस प्रकार कपड़े को सुई से सीते हैं इसी प्रकार यज्ञ (के फटे हुये भाग) को धाय्यों से सीते हैं। इसीलिए इनको धाय्य कहते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उस यज्ञ (का फटा भाग) इन धाय्यों द्वारा सिल जाता है।

यह जो धाय्य हैं वे उपसदों के उक्थ हैं।

नीचे का अग्नि का मन्त्र पहले उपसद का उक्थ है :—

अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा। स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥

(ऋ० ३।२०।४)

नीचे का सोम का मंत्र दूसरे उपसद का उक्थ है :—

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः। त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः॥ (ऋ० १।९१।२)

नीचे का विष्णु का मंत्र तीसरे उपसद का उक्थ है :—

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयोघृतवद् विदथेष्वाभुवः। अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥

(ऋ० १।६४।६)

सोम यज्ञ के द्वारा जिस किसी लोक की कामना करके उसे जीतता है वह जो इस रहस्य को समझता है धाय्यों को पढ़कर इन उपसदों द्वारा विजय पाता है।

कुछ लोगों का कहना है कि ("मिन्वन्त्यपो" इत्यादि के स्थान में) नीचे का मंत्र पढ़ना चाहिये :—

तान् वो महो मरुत एव यान् वो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे। हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥

(ऋ० २।३४।११)

उनका कहना है कि हमने भरतों को इस प्रकार पढ़ते सुना है। लेकिन यह बात माननीय नहीं है। यदि होता इसको पढ़ेगा तो मेघ को रोक देगा। क्योंकि पर्जन्य वृष्टि का स्वामी है। अगर "पिन्वन्त्यपो" पढ़ेगा तो मेघ अवश्य बरसेगा क्योंकि इस मंत्र में "अत्यं न मिहे" पद में मेघ की ओर संकेत है और पहले पद में मरुतों की ओर। 'विनियन्ति' विष्णु के लिये है इसका अर्थ है 'विक्रांत'। 'विक्रांत' वाला विष्णु है (जो तीन पग चला)। 'वाजिन' इन्द्र के लिये है। इसमें चार पद हैं, एक वर्षा के लिये, दूसरा मरुतों के लिये तीसरा विष्णु के लिये और चौथा इन्द्र के लिये। यद्यपि यह तीसरे सवन की है लेकिन दोपहर के सवन में पढ़ी जाती है। इसीलिये भरतों के पशु जो शाम को गोष्ठ में होते हैं दोपहर को संगविनी (दोपहर को धूप से बचने के स्थान) में आ जाते हैं। 'पिन्वन्त्यपो' यह जगती छन्द है। पशु भी जगती है। यजमान का आत्मा दोपहर है। इस प्रकार यजमान में पशुओं को धारण कराता है। (७)

१९—वह मरुत्वतीय प्रगाथ को पढ़ता है।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥ (ऋ० ८।८९।३)

मरुत पशु हैं। पशु ही प्रगाथ हैं। अर्थात् प्रगाथ पशुओं की प्राप्ति के लिये हैं।

वह नीचे का सूक्त पढ़ता है:—

"जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय"...इत्यादि (ऋ० १०।७३।१-११)

यह यजमान के जन्म के लिये हैं। इससे वह देवयोनि अर्थात् यज्ञ से यजमान को पैदा करता है। इससे विजय होती है। इससे यजमान जीत जाता है। अन्यथा पराजित रहता है।

इस सूक्त का ऋषि "गौरिवीति" है। इस शक्ति के पुत्र गौरिवीति ने स्वर्ग लोक के पास इस सूक्त का दर्शन किया

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयोनाधमानाः । अप ध्वान्तमूर्णु हि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥

(ऋ० १०।७३।११)

प्रिय विचार वाले ऋषि लोग सुन्दर परों वाले पक्षियों के समान इन्द्र के पास गये। और प्रार्थना की कि जो अन्धकार में छिपा है उसे खोल दे। आँख को (प्रकाश से) भर दे। और रस्सी से बँधे हुये जैसे हमको युक्त कर दे।"

जब कहे "अप ध्वान्तमूर्णु हि" (अँधेरे से हटा) उस समय मन में विचार करे कि अँधेरे से हट रहा हूँ। इस प्रकार वह अँधेरे से हट जायगा। जब कहे "पूर्धि चक्षुः" (आँख को प्रकाश से भर दे) तो दोनों आँखें मले। जो इस रहस्य को समझता है उसकी आँखें बुढ़ापे तक ठीक रहती हैं। "मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्" में निधि का अर्थ है पाश या रस्सी। रस्सी से बँधे हुओं के समान। (८)

२०—इन्द्र जब वृत्र को मारने लगा तो उसने सब देवताओं से कहा, "मेरे पास रहो। मेरी मदद करो।" उन्होंने ऐसा ही किया। वे उसे मारने को दौड़े। उसने समझा कि यह मुझे मारने आते हैं। उसने सोचा, "मैं इनको डरा दूँ।" उसने उनकी ओर फुसकार मार दी। वह फुसकार से डर कर भाग गये। मरुतों ने उस (इन्द्र) को न छोड़ा। उन्होंने उससे कहा, "भगवन् मारो! मारो!! अपने वीर्य का परिचय दो।" एक ऋषि ने इसको देखा और इस मंत्र को पढ़ा :—

"वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वेदेवा अजहुर्ये सखायः। मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि।"

(ऋ० ८।९६।७)

"वृत्र के फुसकार मारने पर सब देवते जो तेरे साथ थे और

तेरे मित्र थे भाग गये। हे इन्द्र, अगर तुझे मरुतों की दोस्ती मिल जाय तो तू इन सब युद्धों में जीत जाये।"

इन्द्र ने सोचा. "सचमुच मरुत् मेरे सचिव हैं। ये मुझे प्यार करते हैं। मैं इनको अपने उक्थ में साझी बना लूँ।" उसने उनको इस उक्थ में साझी बनाया। पहले निष्केवल्य उक्थ में इन्द्र और मरुत दोनों साझी थे। अब मरुतों के लिये मरुत्वतीय शस्त्र अलग बना दिया गया। मरुतों का भाग यह है कि अध्वर्यु मरुत्वतीय ग्रह को ले, होता मरुत्वतीय प्रगाथ, मरुत्वतीय सूक्त और मरुत्वतीय निविद को पढ़े। मरुत्वतीय शस्त्र को पढ़ कर मरुत्वती याज्य को पढ़े। इस प्रकार इन मरुतों की भक्ति करता है। और देवतों को उनके भागों के अनुकूल प्रसन्न करता है। मरुत्वतीय याज्य यह है :—

"ये त्वा हि हत्ये मघवन्नवर्धन् ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः"

(ऋ० ३।४७।४)

"हे मघवन्, जिन मरुतों ने तुझे अहि (वृत्र) के मारने में सहायता दी; हे हरि अर्थात् घोड़ों वाले इन्द्र, जिन मरुतों ने तुझे शम्बर के युद्ध में सहायता दी, और जो विप्र तुझे अब प्रसन्न करते हैं उन मरुतों के साथ गणयुक्त होकर तू सोम पी।" जिस जिस युद्ध में इन्द्र ने विजय पाई और अपने वीर्य का परिचय दिया वहीं वहीं उसने मरुतों का अपना साथी बताया और उनके साथ सोमपान किया। (९)

२१—जब इन्द्र ने वृत्र को मार डाला और सब युद्धों को जीत लिया तो वह प्रजापति के पास गया और बोला, "मैं तुझ जैसा होना चाहता हूँ। मैं बड़ा होना चाहता हूँ।" प्रजापति ने कहा, "कः अहम्, मैं कौन हूँ ?" इन्द्र ने कहा, "वही है जो तूने कहा (प्रजापति ने कहा "कः", इन्द्र ने कहा तू "कः" है)।

तभी से प्रजापति का 'कः' नाम हो गया। प्रजापति "कः" है। इन्द्र का नाम महेन्द्र है क्योंकि वह बड़ा हो गया।

इन्द्र ने महान होकर देवतों से कहा, "मेरा स्वागत करो, ऐसा जैसा वह लोग चाहते हैं, जो वैभवशील हैं या जो महान हो जाते हैं"। उन्होंने कहा, "तुम्हीं बताओ कि किस प्रकार किया जाय अर्थात् तुम क्या चाहते हो ?" उसने कहा, सोम का माहेन्द्र ग्रह दो, सवनों में दोपहर का सवन दो। उक्थों में निष्केवल्य दो, छन्दों में त्रिष्टुभ् दो। सामों में पृष्ठ दो"। (सामवेद के दो तृच् मिलकर पृष्ठ होते हैं)। उन्होंने यह सब दे दिये। जो इस रहस्य को समझता है उसको भी देवते यही देते हैं। देवों ने उससे कहा, "तुमने सब कुछ ले लिया। कुछ हमको भी दो"। उसने कहा, "नहीं, तुमको क्यों दें ?" देवों ने कहा, "हे मघवन् हमको भी दो"। उसने उनकी ओर आँख मार दी (देखा)। (१०)

२२—देव बोले, "इंद्र की प्रासहा नाम की वावाता स्त्री बहुत प्यारी है, उसी से पूछें।" (राजा की बड़ी स्त्री महिषी कहलाती है। उससे निचली वावाता। उससे निचली परिवृक्ति)। उन्होंने उससे पूछा। उसने कहा, "कल सवेरे बताऊँगी"। क्योंकि स्त्रियां जो पतियों से पूछना होता है रात को पूछती हैं। प्रातःकाल को देव उसके पास गये। उसने इनसे नीचे का मंत्र पढ़ाः—

यद्वावान पुरुतमं पुराषालावृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः। अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत्॥ (ऋ० १०।७४।६)

"अपने यश से संसार को भरने वाले, युद्धों में जीतने वाले, वृत्र को मारने वाले इन्द्र ने जो कुछ प्राप्त किया और जिसके द्वारा वह प्रासह का पति और बलवान हुआ उसीसे हम इच्छा

करते हैं। वह हमारी याचना को पूरी करे"। ('प्रासहस्पति' का अर्थ है 'प्रासहा' का पति और शक्ति का पति)।

"यदीसुरस्मसि कर्तवे करत् तत्" का अर्थ है कि जो कुछ हम कहेंगे वह करेगा।

ऐसा उसने कहा। देवों ने कहा, "इसमें उस रानी को भी भाग दो जिसे अब तक कोई भाग नहीं मिला"। उन्होंने ऐसा ही किया और एक भाग दिया। इस लिये ऊपर की ऋचा निष्केवल्य शस्त्र का भाग है।

प्रासहा नाम की इन्द्र की वावाता प्यारी रानी सेना है। 'कः' नाम प्रजापति उस (स्त्री) का ससुर है। इसलिये यदि कोई चाहे कि उसकी सेना विजयी हो जाय तो युद्ध की सीमा के पार जाकर एक कुशी ले और दोनों सिरे तोड़ कर शत्रु की ओर फेंक दे और यह कहे "प्रासहे कस्त्वा पश्यति" (हे प्रासहा, तुझे कौन देखता है या तुझे प्रजापति देखता है। जो इस रहस्य को समझता है वह यदि अपनी सेना को जिताना चाहे तो एक तृण लेकर दोनों सिरे तोड़कर शत्रु पर फेंक दे और कहे "प्रासहे कस्त्वा पश्यति"। तो वह सेना छिन्न भिन्न हो जायगी जैसे ससुर के सामने आते ही पुत्र-वधू शरमा जाती है।

इन्द्र ने उन देवों से कहा, "इस शस्त्र में आपको भी भाग मिलेगा"। देवों ने कहा "निष्केवल्यशस्त्र में विराट् छंद में आज्य शस्त्र हमारा भाग हो"। विराट् में तैंतीस अक्षर होते हैं। देव भी तैंतीस होते हैं, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति और वषट्कार। देवता अक्षर अक्षर बाँट लेते हैं और अक्षर अक्षर करके देवपात्र से पीते और संतुष्ट होते हैं।

यदि कोई होता चाहे कि यजमान को घर से वंचित कर दे तो विराट् छंद में आज्य न पढ़े, किसी और छंद अर्थात् गायत्री

या त्रिष्टुभ् में पढ़े। और यजमान वर आदि से वंचित रह जायगा।

यदि होता यजमान को वर से मुक्त करना चाहे तो विराट् छन्द के नीचे के मंत्र से याज्य पढ़े और उसे अवश्य वर की प्राप्ति हो जायगी :—

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा॥ (११) (ऋ० ७।२२।१)

२३—पहले ऋक् और साम अलग अलग थे। 'सा' ऋक् था "अमः" साम था। 'सा' जो ऋक् थी उसने 'अमः' नाम के नाम से कहा "हम दोनों एक दूसरे के साथ प्रसंग करें कि सन्तान हो जाय।" साम ने कहा, "नहीं, मेरी महिमा बड़ी है।" तब ऋक् दो हो गईं और उन्होंने साम से वही बात कही। उसने नहीं माना। तब ऋक् तीन हो गईं। तीनों वही बोलीं। इस प्रकार साम तीनों ऋचाओं से मिल गया। इसलिये तीन ऋचाओं को पढ़ते हैं, और तीन ऋचाओं से आरंभ करते हैं। इसीलिये एक आदमी के कई स्त्रियां होती हैं और एक स्त्री के कई पति नहीं होते। 'सा' और 'अमः' से मिलकर साम बन गया। जो इस रहस्य को समझता है वह सामन या न्यायवाला हो जाता है। जो बड़े पद को प्राप्त होता है उसे साम कहते हैं और जो न्याय-शून्य होता है उसे असामन्य कहते हैं। यह निंदा वाचक है।

वे दोनों अर्थात् साम और ऋक् पाँच पाँच भाग करके बनाये गये। (१) आहाव और हिंकार, (२) प्रस्ताव और पहली ऋचा, (३) उद्गीथ और दूसरी ऋचा, (४) प्रतिहार और तीसरी ऋचा (५) निधन और वषट्कार। यह हुये पांच भाग। इसीलिये कहते हैं कि यज्ञ पांच भाग वाला है। पशु पांच भाग वाले हैं (४ पैर और एक मुँह)।

ऋक् और साम दोनों में पांच पांच भाग हैं। यह विराट् के अन्तर्गत हैं) क्योंकि विराट् के दश भाग होते हैं। इसलिये कहते हैं कि यज्ञ दस भाग वाले विराट् में स्थापित है। स्तोत्रिय आत्मा है। अनुरूप प्रजा है, धाय्या पत्नी है। पशु प्रगाथ हैं। और सूक्त घर हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह इस लोक और परलोक दोनों में प्रजा और पशुओं के साथ अपने घरों में रहता है। (१२)

२४—वह स्तोत्रिय को कहता है। स्तोत्रिय आत्मा है। वह मध्यम आवाज से कहता है। इससे वह अपने लिये आत्मा को बना लेता है।

वह अनुरूप को कहता है। अनुरूप प्रजा है। उसको उच्च स्वर से पढ़ना चाहिये। उससे वह अपनी सन्तान को अपनी अपेक्षा अधिक सुखी बनाता है।

वह धाय्या को पढ़ता है। धाय्या स्त्री है। धाय्या को बहुत नीचे स्वर से पढ़ना चाहिये। जो उस रहस्य को समझकर धाय्या को बहुत नीचे स्वर से पढ़ता है उसकी स्त्री घर में उससे अप्रिय नहीं बोलती।

वह प्रगाथ को बोलता है। इसको स्वर सहित पढ़ना चाहिये। पशु ही स्वर हैं। पशु ही प्रगाथ हैं। वह पशुओं को प्राप्ति के लिये है।

अब वह इस सूक्त को पढ़ता है :—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि—इत्यादि (ऋ० १।३२।१-१५)

यह निष्केवल्य शस्त्र का सूक्त इन्द्र को प्रिय है। इसका ऋषि हिरण्यस्तूप है। इस सूक्त से आङ्गिरस हिरण्यस्तूप ने इन्द्र को प्रसन्न किया और परम धाम को पाया जो इस रहस्य को समझता है, वह इन्द्र को प्रसन्न करता और परमधाम को प्राप्त होता है।

गृह ही प्रतिष्ठा हैं। यह सूक्त प्रतिष्ठा है इसलिये बड़ी प्रतिष्ठा-युक्त वाणी से सूक्त को पढ़ना चाहिये। यदि किसी के पशु दूर-दूर चर रहे हों तो वह उनको घर लाना चाहता है। घर ही पशुओं की प्रतिष्ठा अर्थात् ठहराने की जगह हैं। (१३)

ऐतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

२५—सोम राजा दूसरे लोक में था। देवों और ऋषियों दोनों ने सोचा कि सोम राजा कैसे हम तक आवे। उन्होंने कहा, "छन्दो, तुम सोम राजा को हम तक लाओ।" वह मान गये और सुपर्ण (पक्षी) बन कर उड़े। चूंकि वह सुपर्ण बन कर उड़े इसलिये इस घटना को आख्यान के जानने वाले सौपर्ण-आख्यान कहते हैं। जो छन्द सोम राजा को लेने उड़े थे वह चार अक्षर के थे। क्योंकि तब चार अक्षर के ही छन्द थे। जगती अपने चार अक्षरों से सबसे पहले उठी। वह आधी दूर उडकर ही थक गई, उसके तीन अक्षर जाते रहे। वह एक अक्षर की रह गई तब उसने (स्वर्ग से) दीक्षा और तप लिये और इस लोक को लौट आई। जिसके पशु होते हैं वह दीक्षा और तप वाला होता है। पशु जगती के हैं। जगती उनको अपने साथ लाई थी।

अब त्रिष्टुभ् उडा। वह आधी से अधिक दूर जाकर थक गया और उसका एक अक्षर जाता रहा। उसके तीन अक्षर रह गये। और (स्वर्ग से) दक्षिणा को लेकर लौट आया। इसलिये

दक्षिणा दोपहर के सवन में होती हैं जो त्रिष्टुभ् का सवन है। क्योंकि त्रिष्टुभ् ही तो उसे लाई थी। (१)

२५—तब देवों ने कहा, "गायत्री, तू इस सोम राजा को ला।" उसने कहा, "अच्छा, लेकिन तुम सब मेरे जाने और लौट आने के लिये स्वस्ति बोलते रहना।" उन्होंने कहा, "अच्छा"। वह उड़ी और ये सब "प्र च च" स्वस्ति कहते रहे। इसलिये यदि कोई अपना प्यारा यात्रा करने जावे तो उसके आराम से जाने और आराम से लौटने के लिये 'प्र च च' ऐसा स्वस्ति वचन बोलना चाहिये। तो वह आराम से जायगा और आराम से लौट आवेगा।

गायत्री ने ऊपर जाकर सोम के संरक्षकों को डरा दिया और सोम को अपने पैरों और चोंच में पकड़ लिया। और उन अक्षरों को भी जो दो पहले छन्द छोड़ आये थे। सोम के पालक कृशानु ने एक तीर छोड़ा और उस के बाँयें पैर का नाखून गिर गया। वह नाखून शल्यक् (सेही) हो गया। नाखून से जो वशा या चर्बी गिरी वह वशा (बकरी) हो गई। इसलिये वशा हवि के तुल्य है।

तीर की जो नौक थी वह न काटने वाला सर्प (निर्दंशी) हो गयी। और जिस बल से तीर छोड़ा गया उससे स्वज नामी सर्प हुआ। जो पंख थे उनसे (अश्वत्थ की) हिलनेवाली शाखायें। स्नायु अर्थात् नसों से गंडूपद (केंचुए) कीड़े। तीर के तेज से अंधाहि (अंधा सांप) उत्पन्न हुआ (कृशानु के) तीर का यह हाल हुआ। (२)

२६—गायत्री ने जिस भाग को सीधे पैर से पकड़ा वह प्रातः सवन हुआ। गायत्री ने उसको अपना स्थान बना लिया। तभी से प्रातः सवन सब से अच्छा समझा जाता है। और

सब सवनों में यह पहला और मुख्य होता है। जो इस रहस्य को समझता है उसे श्रेष्ठता मिलती है।

जो बायें पैर से पकड़ा था वह दोपहर का सवन हुआ। यह फिसल पड़ा और फिसलने के कारण यह प्रातः सवन के पद को न पा सका। देवों को मालूम हो गया। उन्होंने चाहा कि यह व्यर्थ न जाये। इसलिये उन्होंने छन्दों में से त्रिष्टुभ् को इस में रख दिया। और देवों में से इन्द्र को। इसलिये उसमें भी उतना ही बल आ गया जितना पहले सवन में था। जो इस रहस्य को समझता है वह दोनों सवनों से सुख लाभ करता है क्योंकि वह समान वीर्य वाले और गुण वाले हैं।

जिसको गायत्री मुख में लाई थी वह तीसरा सवन हुआ। नीचे को उड़ते हुये भाग में गायत्री ने इस भाग का रस चूस लिया। इसलिये यह पहले दोनों सवनों की अपेक्षा नीरस हो गया। देवों को ज्ञात हो गया और उन्होंने चाहा कि वह नष्ट न हो। तब उन्होंने ढूँढा, तब उसको पशुओं में पाया। इसलिये ऋत्विज् लोग शाम के सवन में दूध की आहुति देते हैं, और पशु का याज्य देते हैं। इससे वह सवन पहले सवनों के बराबर हो जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सब सवनों द्वारा सुखी होता है जो तुल्य गुण वाले और तुल्य शक्ति वाले है। (२)

२८—दोनों छन्दों ने गायत्री से कहा, "तू जो हमारे अक्षर ले आई है उनको दे दे।" गायत्री बोली, "नहीं।" उन्होंने कहा, "वे हमारी सम्पत्ति हैं।" उन्होंने देवों से पूछा। देवों ने कहा, "हां, वे तुम्हारी सम्पत्ति हैं।" इसी के अनुकरण में लोग कहते हैं, "यह चीज हमारी सम्पत्ति है।"

इस प्रकार गायत्री के आठ अक्षर हो गये। त्रिष्टुभ् के तीन और जगती के एक!

आठ अक्षर की गायत्री ने पहले सवन को देवों तक उठाया। तीन अक्षर का त्रिष्टुभ् दोपहर के सवन को न उठा सका। गायत्री ने उससे कहा, "मैं ऊपर जाती हूँ। तू मेरा भी भाग दे।" त्रिष्टुभ् ने कहा, "अच्छा। तू उन पर अपने आठ अक्षर रख दे।" गायत्री राजी हो गई और अपने आठ अक्षर रख दिये। यही कारण है कि दोपहर के सवन में मरुत्वतीय शस्त्र के तृच की अन्तिम दो ऋचायें और इसके पीछे की ऋचा गायत्री की होती हैं। ग्यारह अक्षर पाकर त्रिष्टुभ् ने दोपहर के सवन को ऊपर उठा लिया। एक अक्षर की जगती तीसरे सवन को देवों तक न ले जा सकी। गायत्री ने कहा, "मैं ऊपर जाती हूँ। तू मुझे भाग दे।" "जगती ने कहा, "अच्छा, मेरे ऊपर वे ग्यारह अक्षर रख दे।" गायत्री ने कहा, "अच्छा।" और वे ग्यारह अक्षर जगती पर रख दिये। इसीलिये तीसरे सवन में वैश्वदेव शस्त्र के तृच् की पिछली दो ऋचायें और उनकी अगली ऋचा गायत्री की हैं। १२ अक्षर पाकर जगती ने तीसरे सवन को देवों तक उठाया। इस प्रकार गायत्री के आठ, त्रिष्टुभ के ग्यारह और जगती के बारह अक्षर हुये।

जो इस रहस्य को समझता है वह सब छन्दों द्वारा सुखी होता है। क्योंकि उनकी बराबर शक्ति और बराबर गुण हैं। जो एक था वह तीन हो गया। इसीलिये कहते हैं कि जो इस रहस्य को समझता है कि एक के तीन कैसे हो गये उसी को भेंट मिलनी चाहिये। (४)

२९—देवों ने आदित्यों से कहा, "तुम्हारे द्वारा इस (तीसरे) सवन को उठावें।" उन्होंने स्वीकार कर लिया। इसलिये तीसरे सवन के आरंभ में आदित्य ग्रह होता है। इसका याज्य मंत्र यह है :—

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥

(ऋ० ७।५१।२)

इसमें 'मद्' शब्द है, इससे मंत्र की समृद्धता है। तृतीय सवन का रूप ही मदवाला होता है। न अनुवषट्कार किया जाता है, न सोम का पान होता है। क्योंकि अनुवषट्कार समाप्ति का सूचक है और सोमपान भी। प्राण आदित्य हैं। इससे वह यजमान के प्राणों का अन्त नहीं करना चाहता।

आदित्यों ने सविता से कहा कि तेरी सहायता से हम इस तीसरे सवन को ऊपर उठावें। वह राजी हो गया। इसलिये तीसरे सवन के वैश्वदेव शस्त्र का प्रतिपद सविता का तृच है। सवितृ ग्रह वैश्वदेवशास्त्र का है। इसका याज्य मंत्र है :—

* दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्ना दक्ष पितृभ्य आयुनि।
पिबात्सोमं ममदन्नेन मिष्टयः परिज्माचिद् रमते अस्य धर्मणि ॥

(आश्व० श्रौत सूत्र ५।१८)

'मद' शब्द से इस मंत्र की रूपसमृद्धता है। तीसरे सवन की विशेषता मदवाला होना है। न अनुवषट्कार कहता है न सोमपान करता है। क्योंकि अनुवषट्कार समाप्ति का सूचक है और सोमपान भी। प्राण सविता है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिये कि कहीं यजमान के जीवन को समाप्त कर दे। सविता अधिकतर प्रातः और सायं सवन से पीता है। तृतीय सवन में सावित्री निविद् में 'पिब' शब्द आया है। और अन्त

---

* अथर्ववेद में पाठ भेद हैं :—

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि।
पिबात् सोमं ममद्देनमिष्टे परिज्माचित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥

(अथर्व० ७।१४।४)

में 'मद्' । इस प्रकार वह प्रातः और सायं दोनों सवनों में सविता का भाग देता है ।

प्रातः और सायं सवन में वायु के मंत्र बोले जाते हैं । प्रातः सवन में कई । और सायं सवन में केवल एक । क्योंकि शरीर के ऊपरी भाग में प्राण बहुत हैं और नीचे के भाग में कम ।

द्यावापृथिवी का मंत्र पढ़ता है । द्यावापृथिवी ही प्रतिष्ठा हैं । यहाँ पृथिवी प्रतिष्ठा है, वहाँ द्यौ । इस प्रकार द्यावापृथिवी के मंत्र बोल कर वह यजमान की द्यौ और पृथिवी दोनों में प्रतिष्ठा कर देता है । (५)

३०—वह ऋभु-सूक्त (ऋ० १-१११) को पढ़ता है ।

तक्षन् रथं सुवृतं—इत्यादि ।

देवों में ऋभुओं ने तप करके सोमपान का अधिकार पा लिया । उनके लिये देवों ने प्रातः सवन में स्थान देना चाहा । लेकिन अग्नि ने वसुओं की सहायता से उनको वहाँ से निकाल दिया । अब देवों ने दोपहर के सवन में उनको स्थान देना चाहा । तब इन्द्र ने रुद्रों से मिल कर उनको वहाँ से निकाल दिया । अब उन्होंने उनको सायंकाल के सवन में स्थान देना चाहा । विश्वेदेवों ने कोशिश की कि उनको वहाँ से निकाल दें और कहा, "यह यहाँ सोमपान नहीं कर सकते, नहीं कर सकते ।" प्रजापति ने सविता से कहा, "यह तेरे शिष्य हैं, तू इनके साथ पीले ।" वह मान गया और बोला, "तू भी ऋभुओं के दोनों ओर खड़ा हो कर पी ।" प्रजापति ने उनके दोनों ओर खड़े होकर पान किया । इसीलिये ऋभु सूक्त के बाद दो धाय्य जो अनिरुक्त हैं (अर्थात् जिनमें विशेष देवों का उल्लेख नहीं है) और जो प्रजापति की हैं, एक के बाद दूसरी पढ़ी जाती हैं :—

(१) सुरूप कृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥
(ऋ० १।४।१)

(२) अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपां सङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥
(ऋ० १०।१२३।१)

इस प्रकार प्रजापति ने दोनों ओर खड़े होकर पिया। इसलिये श्रेष्ठी जिसको चाहता है पिला सकता है।

देवों ने उन ऋभुओं से घृणा की क्योंकि उनमें मनुष्य की गंध आती थी। उन्होंने अपने और ऋभुओं के बीच में दो धाय्य और रख लीं :—

(१) येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थ शुष्मान् वृषभरान् त्स्वप्न सस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥
(ऋ० १०।६३।३)

(२) एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ (ऋ० ४।५०।६) (६)

३१—अब वह वैश्वदेव सूक्त को पढ़ता है (ऋ० ५।८९) वैश्वदेव शस्त्र प्रजा का संबन्ध बताने के लिये है। जैसे राज्य के अन्तर्गत जनता होती है उसी प्रकार शस्त्र के सूक्त हैं। धाय्य अरण्य पशुओं के समान हैं। इसलिये हर धाय्य के पहले और पीछे 'शोंसावोम्' कहना चाहिये। इस पर कुछ लोग कहते हैं कि धाय्य में जीवन है, वह अरण्य के समान कैसे हुई ? ऋषि ऐतरेय उत्तर देते हैं कि यह अरण्य भी अनरण्य के समान है क्योंकि अरण्य में हिरन और पक्षी पाये जाते हैं।

वैश्वदेव शस्त्र पुरुष के समान है। इसके सूक्त उनके अंग हैं। जो धाय्य हैं वे पर्व या जोड़ हैं। इसीलिये होता हर धाय्य के पहले और पीछे 'शोंसावोम्' कहता है। क्योंकि पुरुष के जोड़ शिथिल होते हैं। ब्रह्म उनको दृढ़ करता है।

ये जो धाय्य और याज्य हैं वह यज्ञ की मूल हैं। अगर अन्य धाय्य और अन्य याज्य पढ़े जायं तो यज्ञ निर्मूल हो जाय। इसलिये वे समान होनी चाहिये।

यह जो वैश्वदेव शस्त्र है वह पांचजन्य है। अर्थात् यह पाँचों का है, देव, मनुष्य, गंधर्व, अप्सरा, सर्पों तथा पितरों का। वैश्वदेव शस्त्र इन पाँचों में से सब का है। इन पाँचों में से सभी (वैश्वदेव शस्त्र के होता को) जानते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसके पास इन पाँचों में से सभी हवी लोग (हवन करने में कुशल) आते हैं।

जो होता वैश्वदेव शस्त्र को पढ़ता है वह सब देवताओं का होता है। जब वह शस्त्र को पढ़ने लगे तो उसे सब दिशाओं का चिन्तन कर लेना चाहिये। इस प्रकार वह सब दिशाओं को रस युक्त कर देता है। परन्तु जिस दिशा में उसका शत्रु हो उसका चिन्तन न करें। ऐसा करने से वह उसे निर्बल देता है।

इस मंत्र से समाप्त करता है :—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ (ऋ० १।८९।१०)

"अदिति द्यौ है, अदिति अन्तरिक्ष है। अदिति माता है, वह पिता है। वह पुत्र है। यह मां है, बाप है, बेटा है। अदिति विश्वेदेव है। अदिति पांचजन्य है। इसी में विश्वेदेव है। इसी में पंचजन हैं। पैदा हुई वस्तु अदिति है। पैदा होनेवाली भी अदिति है।" वह अन्तिम मंत्र को दो बार पढ़ता है, पादों पर ठहर-ठहर कर। पशुओं की प्राप्ति के लिये। क्योंकि पशु चार पैर के होते हैं। पहली बार वह आधे मंत्र पर ठहरता है, प्रतिष्ठा के लिये। मनुष्य के दो पैर होते हैं और पशु के चार। दो बार फिर दुहराने से मानों दुपाये को चौपायों में स्थान देता है।

वैश्वदेव शस्त्र की समाप्ति पर पांचजन्य मंत्र (१।८९।१० के समान) बोलना चाहिये और फिर भूमि का स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार वह जहाँ यज्ञ को रखना चाहता है वहीं उसकी स्थापना कर देता है।

वैश्वदेव-उक्थ को पढ़ने के उपरान्त वैश्वदेव याज्य मंत्र पढ़ता है।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥

(ऋ० ६।५२।१३)

इस प्रकार वह देवों को उनके भाग के अनुसार प्रसन्न करता है। (७)

३२—पहला घृत का याज्य मंत्र अग्नि का है। दूसरा सोम का (चरु का) याज्य सोम का। एक घृत का याज्य विष्णु का है।

सोम का याज्य यह है :—

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ। तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ (ऋ० ८।४८।१३)

इस में पितर शब्द पड़ा है। जब सोम को निचोड़ते हैं तो इसका अर्थ यह है कि उसका हनन करते हैं। यह चरु (भात का पिण्ड) अनुस्तरणी (वह गौ जो मृत यजमान को चिता पर रखने के बाद दी जाती है) है। यह चरु सोम के लिये वही अर्थ रखता है जो अनुस्तरणी पितरों के लिये। इसी लिये होता 'पितर' शब्दों वाला याज्य मंत्र पढ़ता है। जिन्होंने सोम निचोड़ा उन्होंने उसका हनन कर दिया। अब वह उसको पुनर्जीवित करते हैं, अब उस सोम को बढ़ाते हैं (आप्यायन्ति) उपसदों के रूप में। यह जो अग्नि, सोम और विष्णु देवता हैं वे उपसद रूप हैं।

होता सोम के चरु को लेकर पहले अपनी ओर देखे, फिर सामगों की ओर। कुछ होता लोग पहले इस चरु को सामगों को अर्पण करते हैं। लेकिन ऐसा न करे। क्योंकि जो होता 'वौषट्' कहता है वह सब भक्षों का भक्षण करता है। ऐसा ऐतरेय ऋषि का कथन है। इसलिये "वौषट्" कहने वाले होता को पहले अपनी ओर देख लेना चाहिये। फिर वह उसे सामगों को अर्पण कर दे। (८)

३३—प्रजापति ने अपनी दुहिता से भोग करना चाहा। इसको कुछ 'द्यौ' कहते हैं और कुछ 'उषा' बताते हैं। उसने स्वयं रिश्य (एक हिरन) का रूप रख लिया। और दुहिता रोहित (हिरनी) बन गई। वह उसके पास गया। उसको देवों ने देखा और कहा, "अरे प्रजापति '-अकृत" काम करता है।" उन्होंने पूछा कि क्या कोई ऐसा है जो इस दोष की निवृत्ति कर दे। अपने लोगों में उनको इस काम के योग्य कोई न मिला। उनमें जो घोरतम अंश था उसको उन्होंने इकट्ठा किया। उनके इकट्ठा करने से एक देव पैदा हुआ जिसका नाम "भूतवान" हुआ। जो इसके इस नाम को जानता है वही उत्पन्न होता है। देवों ने उससे कहा, "प्रजापति ने जो यह न करने योग्य काम किया है उस काम को बींध दे।" उसने ऐसा ही किया। फिर उसने कहा, "मैं एक वर माँगता हूं।" उन्होंने कहा, "माँग।" उसने पशुओं का आधिपत्य मांगा। इस लिये उसका नाम पशुमान पड़ा। जो उसके इस नाम को जानता है वह पशु वाला होता है।

उस "भूतवान" ने प्रजापति के दुष्कर्म पर आक्रमण किया और उसको बींध दिया। वह बिंधा हुआ ऊपर उड़ गया। उसको मृग (नक्षत्र) कहते हैं। और जिसने मारा उसको मृग-व्याध। वह जो रोहित हिरनी (प्रजापति की दुहिता) थी वह रोहिणी हुई। यह जो बाण था जिसमें तीन फल (त्रि

काण्ड) थे वह आकाश में चमकने वाला तीन फल वाला बाण हो गया। प्रजापति का जो वीर्य बहा वह एक सरोवर बन गया। देवों ने कहा, "प्रजापति का यह वीर्य दूषित न हो ("मादुषत्")। देवों ने 'मादुषत्' जो कहा तो "मादुषम्" हो गया। यह "मादुष" का "मादुषत्व" है। यह जो मादुषम् था यही मानुषम् हुआ। "मानुष" इसलिये कहते हैं कि वह दोष के योग्य नहीं है अर्थात् उसमें दोष नहीं आने चाहिये। "मादुष" परोक्ष शब्द है। देव लोग परोक्षप्रिय होते हैं। (९)

३४—देवों ने इस वीर्य को अग्नि से घेर दिया। मरुतों ने उसे हिलाया। परन्तु अग्नि ने उसको चलाया नहीं। उन्होंने उसको वैश्वानर अग्नि से घेर दिया। मरुतों ने उसे हिलाया, वैश्वानर अग्नि ने उसे चलाया। प्रजापति के वीर्य से जो पहली चिनगारी उठी उसका आदित्य बना। जो दूसरी उठी उसका भृगु बना। वरुण ने भृगु को लड़का मान लिया। इसीलिये भृगु को वारुणि कहते हैं। तीसरी जो चिनगारी उठी उसके आदित्य हो गये। जो अंगारे थे उनका आङ्गिरस हुआ। जो अंगारे पहले न शांत होकर फिर उद्दीप्त हो गये। वे बृहस्पति हो गये। जो काली-काली अधजली राख रह गई वह काले पशु बन गई। जो भूमि का भाग लाल हो गया था उसके लाल पशु बन गये। जो भस्म रह गई उसका एक ऐसा व्यक्ति बना जो इधर उधर फिरा और बारहसिंघा, भैंसा, हिरन, ऊँट, गधा और जंगली जानवर बन गये।

भूतवान ने इन पशुओं से कहा. "यह मेरा है। यह जो इस जगह छूटा हुआ है मेरा है।" उन्होंने इस रुद्र सम्बन्धी ऋचा को पढ़ कर उससे उसका भाग छुड़ा लिया :—

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः। अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः। (ऋ० २।३३।१)

"हे मरुतों के पिता, ऐसा न हो कि हम सूर्य्य के दर्शन न कर सकें। हे वीर रुद्र, ऐसा कर कि हम प्रजाओं से युक्त हो जायँ अर्थात् हमारे सन्तान उत्पन्न हों।"

"अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत" के स्थान में "त्वं नो वीरो अर्वति क्षमेथा" पढ़ना चाहिये। यदि "अभि" न कहेगा तो यह देवता प्रजा के विरुद्ध (अभि) न होगा। "रुद्र" के स्थान में 'रुद्रिय' कहना चाहिये जिससे इस नाम का भयानकपन न रहे। यदि इसको हानिकारक समझे तो केवल नीचे का मन्त्र पढ़ दे :—

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यों नारिभ्यो गवे ॥

(ऋ० १।४३।६)

यह मंत्र 'शं' से आरम्भ होता है और कल्याणकारक है। 'नृभ्यो' का अर्थ है "पुरुषों के लिये" "नारिभ्यो" से स्त्रियों से तात्पर्य है। यह सब के कल्याण के लिये हैं।

यह रुद्र का मंत्र है परन्तु अनिरुक्त है अर्थात् इसमें रुद्र का नाम नहीं आया। इसलिये यह सौ वर्ष की आयु का दाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है।

यह मंत्र गायत्री छन्द में है। गायत्री ब्राह्मण है। इस प्रकार वह ब्राह्मण द्वारा रुद्र की उपासना करता है (जिससे रुद्र का वीभत्सपन दूर हो जाय)। (१०)

३५—अग्नि-मारुत शस्त्र को वैश्वानरीय सूक्त से आरम्भ करता है। यह जो वीर्य बहा वह वैश्वानर है। इसलिये होता अग्नि-मारुत शस्त्र को वैश्वानरीय सूक्त से आरम्भ करता है। पहली ऋचा को बिना ठहरे हुये पढ़े। जो अग्नि-मारुत शस्त्र को पढ़ता है वह आग की भयानक लपटों को शांत कर देता है। सांस साध कर अग्नि को पार करे। कहीं कुछ शब्द

बोलने में भूल न हो जाय इससे उसको चाहिये कि किसी दूसरे आदमी को शोधने के लिये नियत कर दे। मानो वह इस संशोधक को पुल के तौर पर मान कर अग्नि को पार करता है। इसमें कोई भूल होनी न चाहिये इसलिए जब होता मंत्र बोले तो कोई उसकी अशुद्धि को शुद्ध करने वाला होना चाहिये। जो वीर्य बहा वह मरुत है। उसको हिला कर इन्होंने बहाया। इसलिये वह मरुतों का सूक्त पढ़ता है।

बीच में योनि (स्तोत्रिय) और अनुरूप प्रगाथ का पाठ करे।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे। आ नोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः। सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः॥

(ऋ० १।१६८।१-२)

यह योनि हुई।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्। उद् वा सिञ्चध्वमुप पृणध्वमादिद्वो देव ओहते॥

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत। दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे॥ (ऋ० ७।१६।११-१२)

यह अनुरूप हुआ।

बीच में योनि कहने का कारण यह है कि स्त्रियों की योनि बीच में होती है। (वैश्वानरीय और अग्नि-मारुतीय) दो सूक्तों को पढ़ने के बाद योनि इसलिये पढ़ी जाती है कि उसमें पुरुष इन्द्रिय को स्थापित करता है, जिससे प्रजा उत्पन्न हो। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशुओं वाला होता है। (११).

३६—जातवेद के सूक्त को पढ़ता है। जब प्रजापति ने

सृष्टि बनाई तो वे सब मुँह फेर कर चले गये और पीछे न लौटे। तब उसने उनको चारों ओर आग से घेर दिया। तब उन्होंने अग्नि की ओर मुख किया। जब उन्होंने अग्नि की ओर मुख किया तो प्रजापति ने कहा, "इन उत्पन्न हुये (जात) को मैंने इस अग्नि के द्वारा पाया (अविदम्)।" इससे जातवेद सूक्त हुआ। इसीलिये अग्नि को जातवेद कहते हैं।

अग्नि से घिरे हुये प्राणी चल न सकते थे। वे अंगारों के बीच में खड़े थे। प्रजापति ने उन पर जल छिड़का। इसलिये जातवेद सूक्त को पढ़ने के बाद जल के सूक्त को पढ़ता है।

"आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता" इति (ऋ० १०।६)

यह इसलिये पढ़ना चाहिये मानो अग्नि को शान्त कर रहा है। प्रजापति ने जल छिड़कने के बाद कहा कि यह प्राणी मेरे निज के हैं। उसने उनमें अहिर्बुध्न्य द्वारा परोक्ष तेज धारण करा दिया। यह अहिर्बुध्न्य गार्हपत्य अग्नि है। अहिर्बुध्न्य का मंत्र पढ़कर वह परोक्ष तेज धारण कराता है। इसीलिये कहते हैं कि जो आहुति देता है वह आहुति न देने वाले से अधिक तेज वाला है। (१२)

३७—गृहपति अग्नि के लिये (अहिर्बुध्न्य मंत्र पढ़ कर) देव पत्नियों के लिये मंत्र पढ़ता है। क्योंकि यजमान की पत्नी गार्हपत्य अग्नि के पीछे बैठती है।

कुछ लोग कहते हैं कि पहले राका का मंत्र पढ़ना चाहिये क्योंकि सोमपान का पहला अधिकार बहन का है। परन्तु यह नहीं चाहिये। पहले देवपत्नियों के लिये मंत्र पढ़ना चाहिये। ऐसा करने से गार्हपत्य अग्नि पत्नियों में वीर्य्य धारण कराता है। गार्हपत्य अग्नि के द्वारा होता ने पत्नियों को उत्पत्ति के अर्थ वीर्य से प्रत्यक्षरूप से सम्पन्न कर दिया। जो इस रहस्य को समझता है वह पशुओं और सन्तान से युक्त होता है। बहिन

उसी पेट से जन्मती है और स्त्री दूसरे पेट से, इसलिये स्त्री को पहले भोजन देना चाहिये।

अब वह राका का मंत्र पढ़ता है। राका ही पुरुष की इन्द्रिय की सीवन को सिया करती है। जो इस रहस्य को समझता है उसके पुत्र (पुमान् सन्तान) उत्पन्न होते हैं।

अब पावीरवी मंत्र को पढ़ता है। वाणी ही सरस्वती पावीरवी है। इसको पढ़कर वह यजमान में वाणी धारण कराता है। इस पर प्रश्न होता है कि पहले यम का मंत्र पढ़े या पितरों का। पहले यम का पढ़ाना चाहिये :—

इमं यम प्रस्तर मा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व। (ऋ० १०।१४।४)

राजा को पहले पीने का अधिकार है। इसलिये यम का मंत्र ही पहले पढ़े।

इसके बाद ही काव्यों का मंत्र पढ़े :—

मातली कव्यैर्यमो अंगिरोभिर्बृहस्पति ऋक्वभिर्वावृधानः। यांश्चदेवा वावृधुर्ये च देवान् त्स्वाहान्ये स्वधयान्येमदन्ति॥ (ऋ० १०।१४।३)

काव्य देवों से छोटे और पितरों से बड़े हैं। इसलिये काव्यों का मंत्र पढ़ने के बाद पितरों के तीन मंत्र पढ़ता है :—

(१) उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य इयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु। (ऋ० १०।१५।१)

(२) आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः।

(ऋ० १०।१५।३)

(३) इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु।

(ऋ० १०।१५।२)

अवर, पर, मध्यम इन सोम्य पितरों को बुलाकर वह सब पितरों को प्रसन्न करता है, किसी को छोड़ता नहीं।

दूसरे मंत्र में 'बर्हिषद्' से तात्पर्य यह है कि उनका प्रिय धाम है। इस को पढ़ कर वह प्रिय धाम के द्वारा उनको प्रसन्न करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रिय धाम के द्वारा फूलता फलता है।

"पितरों के नमस्कार" वाला मंत्र अन्त में पढ़ता है। इस लिये अन्त में पितरों को नमस्कार होता है "पितृभ्यो नमः"। यहां प्रश्न होता है कि इसके पहले आहाव अर्थात् 'शोंसावोम्' कहना चाहिये या मंत्र को बिना आहाव के पढ़ना चाहिये? 'आहाव' के साथ पढ़ना चाहिये। पितृयज्ञ में जो बात अधूरी रह गई है उसे पूरा करना है। 'आहाव' पढ़ने से अधूरी क्रिया पूरी हो जाती है। इसलिये 'आहाव' पढ़ना आवश्यक है। (१३)

३८—अब इन्द्र के अनुपान के मंत्रों को पढ़ता है:—

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्। उतोन्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद। पुरूणि यश्च्यौला शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३हन् ॥२॥

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः। अयं षलुर्वीर-मिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः। अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥४॥ (६।४७।१-४)

इन्हीं से इन्द्र ने तीसरे सवन के बाद सोम का अनुपान किया था। इसलिये यह अनुपानीय मंत्र कहलाते हैं। जब होता इन मंत्रों को पढ़ता है तो मानो देवता उस समय अनुपान करके प्रसन्न होते हैं। जब होता 'आहाव' कहता है तो अध्वर्यु 'मद्' धातु से निकला हुआ शब्द बोलता है।

अब विष्णु और वरुण की ऋचा को पढ़ता है :—

ययो रोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा। शविष्ठया पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूत्यै ॥*

"वे दो जिन्होंने अन्तरिक्ष बनाया, जो बहुत बलवान और पराक्रमशील हैं, जो बिना किसी रोक टोक के राज करते हैं ऐसे विष्णु और वरुण पहले बुलावे पर आवें।"

विष्णु यज्ञ के दोषों को दूर करता है और वरुण ठीक-ठीक यज्ञ के फल पर आधिपत्य रखता है। यह दोनों को शान्त करने के लिये है।

अब वह विष्णु की ऋचा बोलता है :—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ (ऋ० १।१५४।१)

विष्णु यज्ञ में मति के तुल्य है। जैसे किसान कृषि की भूल चूक को ठीक करता है, या जैसे राजा न्याय दरबार की भूल चूक को ठीक करता है, ऐसे ही होता इस मंत्र को पढ़ कर यज्ञ की भूल चूक को ठीक करता है।

अब वह प्रजापति के इस मन्त्र को पढ़ता है :—

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥

(ऋ० १०।५३।६)

इसको पढ़ कर होता यजमान के लिये सन्तान को तानता है। 'ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धियाकृतान्' यहाँ प्रकाशयुक्त मार्गों से तात्पर्य "देवयानों" का है। इन्हीं को वह यजमान के लिये ठीक करता है।

---

* पता नहीं कि यह मंत्र कहाँ का है।

"अनुल्बणं वयत" इत्यादि "अर्थात् उपासकों के लिये तानो। मनु हो और दिव्य सन्तान (दैव्य जन) उत्पन्न करो।" ऐसा कह कर वह मानवी सन्तान से उसे सम्पन्न करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सन्तान और पशुओं से सम्पन्न होता है।

इस नीचे के मंत्र से समाप्त करता है :—

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणी धृदनर्वा। त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे॥ (ऋ० ४।१७।२०)

यह पृथ्वी ही "इन्द्र मघवा विरप्शी" (बहुत सी कारीगरी वाला मजबूत इन्द्र) है। वह 'सत्या' है। वही "चर्षणी धृत्" (मनुष्यों को रखने वाली), अनर्वा (बेखटके) है। वही राजा है। "श्रवो माहिनं यज्जरित्रे" में 'माहिनं' का अर्थ है पृथ्वी। 'श्रवः' है यज्ञ और 'जरित्र' है यजमान। इससे वह यजमान के लिये आशीर्वाद चाहता है। समाप्ति के समय पृथ्वी को छुये जिस पर यज्ञ करता है। इस पृथ्वी पर तो यज्ञ स्थापित होता है।

अग्नि-मारुतीय शस्त्र को पढ़ कर याज्या पढ़ता है :—

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः। पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः॥

(ऋ० ५।६०।८)

इस प्रकार वह सब देवतों को भाग दे दे कर प्रसन्न करता है। (१४)

ऐतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

———

चौथा अध्याय

३९—देव विजय पाने के प्रयोजन से असुरों से लड़ने गये। अग्नि ने साथ देना न चाहा। देवों ने उससे कहा, "तू भी आ। तू हममें से एक है।" अग्नि बोला, "बिना स्तुति कराये मैं नहीं जाऊँगा। मेरी स्तुति करो।" उन्होंने कहा "अच्छा।" उन्होंने उठ कर उसके सामने खड़े होकर उसकी स्तुति की। स्तुति किया जाकर वह उनके साथ चल दिया। और तीन श्रेणी बना कर उसने असुरों पर तीन पंक्तियों में विजय के लिये आक्रमण किया।

तीन श्रेणियां तीन छन्द हैं (गायत्री, त्रिष्टुभ् और जगती)। तीन पंक्तियाँ हैं तीन सवन (प्रातःसवन, मध्य सवन और तृतीय सवन)। इससे असुरों को आशा से अधिक पराजय हुई। देवों ने असुरों को हरा दिया। जो इस रहस्य को समझता है उसका पापी शत्रु स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

अग्निष्टोम गायत्री ही है। गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं और अग्निष्टोम में चौबीस स्तोत्र* और शस्त्र हैं।

*सामगों के १२ स्तोत्र और होताओं के १२ शस्त्र। एक-एक स्तोत्र के लिये एक-एक शस्त्र। १२ शस्त्र यह हैं:—प्रातः सवन के पाँच, अर्थात् आज्य, प्रउग, मैत्रावरुण शस्त्र, ब्राह्मणाच्छांसि, और अच्छावाक्। दोपहर के सवन के पाँच अर्थात् मरुत्वतीय, निष्केवल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छांसि, अच्छावाक्। सायं सवन के दो वैश्वदेव और अग्नि-मारुत शस्त्र।

कहावत है कि अच्छा सधा हुआ (सुहित) घोड़ा सवार को आराम पहुँचाता है (सुवा)। यही हाल गायत्री का है। गायत्री कहीं ठहरती नहीं है, ऊपर चली ही जाती है और यजमान को स्वर्ग में पहुँचा देती है। अग्निष्टोम भी वैसा ही है। वह भी बीच में नहीं ठहरता। ऊपर चला ही जाता है और यजमान को स्वर्ग में पहुँचा देता है।

अग्निष्टोम संवत्सर है। संवत्सर में २४ पक्ष होते हैं और अग्निष्टोम में २४ स्तोत्र और शस्त्र होते हैं। जैसे सभी जल सागर को जाते हैं, इसी प्रकार सभी यज्ञ अग्निष्टोम में मिल जाते हैं। (१)

४०—अगर दीक्षणीय इष्टि पूरी-पूरी हो गई तो और जो कोई इष्टियां होती हैं सब अग्निष्टोम में आ जाती हैं। जब वह इला कहता है तो इला में सभी पाकयज्ञ आ जाते हैं। वे सब अग्निष्टोम में जाकर मिल जाते हैं।

सायं प्रातः अग्निहोत्र करता है। सायं प्रातः व्रत करता है। स्वाहा कह कर अग्निहोत्र करता है। स्वाहा कह कर व्रत करता है। स्वाहा युक्त अग्निहोत्र अग्निष्टोम में मिल जाता है।

प्रायणीय इष्टि में १५ सामिधेनियां दी जाती हैं। दर्शपूर्णमास यज्ञ में भी १५ ही दी जाती हैं। इस प्रकार दर्शपूर्णमास प्रायणीय में शामिल हैं। इस प्रकार दर्श पूर्णमास भी अग्निष्टोम में शामिल है।

सोमराजा को खरीदते हैं। सोमराजा औषध है। बीमार को औषध से ही चंगा करते हैं। सोम की खरीद में अन्य सब औषध भी आ जाती हैं। इसलिये सब औषध भी अग्निष्टोम में शामिल हैं।

आतिथ्य इष्टि में अग्नि का मंथन करते हैं। चातुर्मास्य

इष्टि में भी। चातुर्मास्य इष्टि आतिथ्य इष्टि के अन्तर्गत होकर अग्निष्टोम में मिल गई।

प्रवर्ग्य में दूध की आहुति देते हैं। दाक्षायन में भी। इस प्रकार दाक्षायन भी अग्निष्टोम में शामिल है। उपवसथ अर्थात् सोमयाग से एक दिन पूर्व पशु-बंधन होता है। इस प्रकार जो-जो पशुबंध हैं वे सब अग्निष्टोम में आजाते हैं।

इलादध एक क्रतु होता है। उसे दही से करते हैं। (अग्निष्टोम के) दधिघर्म कृत्य में भी दही का ही प्रयोग होता है। इसलिये इलादधि भी अग्निष्टोम में शामिल है। (२)

४१—पहला भाग तो कह दिया गया। अब पिछला भाग लीजिये। इस कृत्य के बाद उक्थ्य के १५ स्तोत्र और १५ शस्त्र आते हैं। अगर वह साथ-साथ लिये जांय, तो महीनों के रूप में संवत्सर हो जाते हैं। (महीने में ३० दिन हुये)।

अग्नि वैश्वानर संवत्सर है। अग्निष्टोम अग्नि है। संवत्सर के अनुगामी होने से उक्थ्य अग्निष्टोम में शामिल है।

उक्थ्य के शामिल होते ही वाजपेय भी शामिल हो जाता है। क्योंकि उक्थ्य से यह (केवल दो स्तोत्र ही) अधिक है।

अतिरात्र के बारह सोम के प्याले पंद्रह मंत्रों से सम्बद्ध हैं। दो-दो करके तीस हो जाते हैं।

षोडशी साम में २१ भाग हैं। संधि में ९। इस प्रकार तीस हो गये। साल भर तक हर मास में ३० रातें होती हैं। अग्नि वैश्वानर संवत्सर है और अग्नि ही अग्निष्टोम है।

अतिरात्र संवत्सर में शामिल हैं इसलिये अग्निष्टोम में शामिल हैं।

जिस प्रकार अतिरात्र अग्निष्टोम में शामिल है उसी तरह अप्तोर्यामा भी। क्योंकि अप्तोर्यामा भी अतिरात्र ही हो जाता है।

इस प्रकार अग्निष्टोम के पहले और बाद को जितने कृत्य हैं वे सब अग्निष्टोम में शामिल हैं ॥

अग्निष्टोम के सब स्तोत्र १९० होते हैं। ९० बराबर हैं दश त्रिवृत के (९×१०) १० में ९ से एक अधिक है। शेष ९ यानी त्रिवृत हैं। २१ बार ९ लेकर १८९ हुये। एक हुआ सूर्य्य जो तपता है। यह विषुवत् है।

दश त्रिवृत्त स्तोम इसके पहले हैं और दश पीछे। एक बीच में है जो इन के ऊपर घूमता और तपता है अर्थात् सूर्य। एक स्तोत्रिय जो अधिक है। इसके ऊपर ढकने के समान है। यह यजमान है। यह दिव्य छत्र है। जो किसी आक्रमण का निवारण कर सकता है।

जो इस रहस्य को समझता है उसे दिव्य छत्र की प्राप्ति होती है। वह किसी आक्रमण का सहन कर सकता है। और उसको सायुज्य, सारूप्य और सालोक्य प्राप्त हो जाता है। (३)

४९—एक बार देवते असुरों से हार गये और ऊपर की ओर स्वर्ग लोक चले। अग्नि ने नीचे भूमि से स्वर्ग के ऊपर के हिस्से को छुआ और वहाँ पहुँचकर स्वर्ग लोक का द्वार बन्द कर दिया। अग्नि स्वर्ग लोग का अधिपति है। पहले वसु लोग उसके पास गये और कहा, "अपनी लपटों में होकर हमको आकाश अर्थात् स्थान दे कि हम ऊपर चले जा सकें"। उसने कहा, "बिना स्तुति किये मैं तुमको जाने न दूंगा। तुम मेरी स्तुति करो"। वह मान गये और नौ ऋचाओं (त्रिवृत स्तोम) से उसकी स्तुति की। जब उन्होंने ऐसा किया तो उसने उनको स्वर्ग में जाने दिया।

अब रुद्र लोग आये और कहा कि अपनी लपटों में होकर हमको जगह दे कि हम स्वर्ग को जासकें। उसने कहा कि बिना स्तुति के मैं जाने न दूंगा। तुम मेरी स्तुति करो। वे मान गये

और १५ ऋचाओं से स्तुति की। उसने उनको जाने दिया और वह यथेष्ट लोक को पहुँच गये।

अब आदित्य लोग पहुँचे और कहा कि अपनी लपटों में होकर हमको जगह दे कि हम स्वर्ग को जा सकें। उसने कहा कि बिना स्तुति कराये मैं जाने न दूंगा। तुम मेरी स्तुति करो। उन्होंने मान लिया और १७ ऋचाओं से स्तुति की। तब उसने उनको जाने दिया और वे यथेष्ट लोक में पहुँच गये।

अब विश्वेदेव आये और कहा कि अपनी लपटों में होकर हमको जगह दे कि हम स्वर्ग को जा सकें। उसने कहा कि मैं बिना स्तुति कराये तुमको जाने न दूंगा; तुम मेरी स्तुति करो। उन्होंने स्वीकार कर लिया और २१ स्तोमों से स्तुति की। और स्तुति करने के पश्चात् वह यथेष्ट लोक में पहुँच गये। इस प्रकार एक एक करके देवते गये और एक एक स्तोम से स्तुति कर करके यथेष्ट लोक को प्राप्त हो गये।

जो यजमान चार स्तोमों से स्तुति करता है और जो ऋत्विज (अग्निष्टोम को) जानता है वह अग्नि को पार करके चला जाता है।

जो इस रहस्य को समझता है अग्नि उसको जगह दे देता है और वह स्वर्ग लोक को प्राप्त हो सकता है। (४)

४३—अग्निष्टोम अग्नि ही है। देवों ने अग्नि की स्तोम से स्तुति की इसलिये अग्निष्टोम नाम पड़ा। अग्नि+स्तोम का परोक्ष रूप अग्निष्टोम हो गया। क्योंकि देव परोक्ष-प्रिय होते हैं।

चार प्रकार के देवों ने चार स्तोमों से स्तुति की। इसलिये इसको "चतुःष्टोम" कहते हैं। यह परोक्ष रूप है। देव परोक्ष-प्रिय होते हैं।

अग्नि की उस समय स्तुति की गई जब वह ऊपर को ज्योति के रूप में जा रहा था। इसलिये इसको "ज्योतिःस्तोम"

या ज्योतिष्टोम कहते हैं। यह परोक्ष रूप है। देव परोक्षप्रिय होते हैं।

यह जो अग्निष्टोम है इस का न पूर्व है न पर (न आदि है, न अन्त)। यह जो अग्निष्टोम है वह रथ के अनन्त चक्र के समान है। प्रायणीय और उदयनीय उसके दो पहियों के समान हैं।

इसके विषय में एक गाथा है कि:—अग्निष्टोम का जो आदि है वह अन्त है और जो अन्त है वह आदि है। जैसे शाकल नामी सर्प वृत्ताकार में चलता है। यह नहीं मालूम होता कि आदि कहाँ है और अन्त कहाँ है। क्योंकि इसका प्रायणीय अर्थात् आरंभ ही अन्त है।

इस पर कुछ शंका करते हैं कि प्रायण यानी आरंभ त्रिवृत अर्थात् ९ मंत्रों से होता है और अन्त २१ स्तोमों से। फिर एक से कैसे हुये? इसका उत्तर यह है कि इनमें यह समानता है कि २१ स्तोम भी त्रिवृत हैं क्योंकि इनमें तीन तीन ऋचायें होती हैं और तृचों के लक्षण पाये जाते हैं। (५)

४४—अग्निष्टोम तपने वाला अर्थात् सूर्य है। सूर्य भी दिन में तपता है और अग्निष्टोम भी दिन में ही समाप्त हो जाना चाहिये।

अग्निष्टोम साह्न (एक दिन में समाप्त हो जाने वाला या एकाह्निक) है इसलिये इसे जल्दी से नहीं करना चाहिये, न पहले सवन में, न मध्य सवन में और न तीसरे सवन में। नहीं तो यजमान शीघ्र मर जायगा।

अगर प्रातः और दोपहर के सवनों को जल्दी से नहीं करते तो पूर्व की ओर ग्राम फूलते फलते हैं और अगर सायंकाल का सवन जल्दी से कर देते हैं तो पश्चिम का गाँव जंगल हो जाता है और यजमान मर जाता है इसलिये प्रातः, दोपहर और

सायंकाल के सवनों को करने में जल्दी नहीं करनी चाहिये। तो यजमान शीघ्र न मरेगा।

शस्त्रों के पढ़ने में सूर्य की चाल का अनुकरण करे। प्रातःकाल के समय यह शनैः-शनैः तपता है। इसलिये प्रातःकाल के समय शस्त्रों को धीरे धीरे पढ़े। दोपहर को तेज होता है इसलिये दोपहर के सवन में तेज पढ़ना चाहिये। दोपहर के बाद मुँह के सामने बहुत तेज तपता है। इसलिये सायंकाल के सवन में बहुत तेजी से पढ़ना चाहिये। उस समय ऐसी तरह पढ़ना चाहिये मानो वाणी पर पूरा प्रभुत्व है। क्योंकि वाणी ही शस्त्र है। तृतीय सवन में जिस तेजी से आरंभ किया था अगर उसी तेजी से बराबर पढ़ता जाय तो बहुत ही अच्छा होता है।

सूर्य न कभी अस्त होता है, न उदय होता है। जो इसको अस्त होता हुआ जानता है वह केवल दिन का अन्त करके फिर अपने को लौटा देता है। रात्रि इधर कर देता है और दिन उधर। और जो यह प्रातःकाल को उदय होता हुआ मानते हैं यह रात का अन्त करके अपने को लौटा देता है। दिन इधर करता है और रात उधर। सूर्य कभी अस्त नहीं होता।

जो इस रहस्य को समझता है उस को सूर्य से सायुज्यता, सारूप्यता और सालोक्यता प्राप्त होती है। उसका कभी अस्त नहीं होता। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पाँचवाँ अध्याय

४५—एक बार यज्ञ देवों को छोड़कर अन्नादि में चला गया। देवों ने कहा "यज्ञ हमको छोड़कर अन्नादि में चला गया है। हम चाहते हैं कि यज्ञ को भी ले आवें और अन्नादि को भी। उन्होंने विचारा कि कैसे लावें। तो उन्होंने कहा, "ब्राह्मण और छन्दों के द्वारा।" उन्होंने एक ब्रह्मण को छन्दों से दीक्षित किया। उसमें दीक्षणीय इष्टि से लेकर "पत्नीः समयाज" तक पूरा पूरा कृत्य किया। चूंकि देवों ने दीक्षणीय इष्टि से लेकर पत्नी-समयाज तक सब कृत्य किया इसीलिये मनुष्य भी उन्हीं का अनुकरण करते हैं। उन्होंने प्रायणीय इष्टि के द्वारा यज्ञ का सामीप्य प्राप्त किया। उन्होंने इष्टि को जल्दी जल्दी किया। और उसको शंयुवाक् से समाप्त किया। इसलिये प्रायणीय इष्टि शंयुवाक् से समाप्त हुआ करती है। क्योंकि मनुष्यों ने इस बात में देवों का अनुकरण किया।

देवों ने आतिथ्य-इष्टि के द्वारा यज्ञ का सामीप्य प्राप्त किया। उन्होंने जल्दी जल्दी इष्टि को इला से समाप्त कर दिया। इसलिये आतिथ्य इष्टि भी इला से समाप्त होती है क्योंकि मनुष्यों ने इस में भी अनुकरण किया।

देवों ने उपसदों के कृत्य द्वारा यज्ञ की समीपता प्राप्त की। उन्होंने इसको जल्दी जल्दी किया और केवल तीन सामिधेनियों और देवतों के याज्य पढ़कर उसको समाप्त कर दिया। इसीलिये उपसदों में केवल तीन सामिधेनियां और तीन देवतों के याज्य पढ़े जाते हैं। क्योंकि मनुष्यों ने भी देवों का अनुकरण किया।

देवों ने उपवसथ किया। उपवसथ के दिन ही उन्होंने यज्ञ को प्राप्त किया। यज्ञ को करने के बाद उन्होंने सभी कृत्यों को पत्नी समयाज सहित किया। इसीलिये सोम याग के एक दिन पहले मनुष्य भी उपवसथ करते हैं और पत्नी समयाज सहित सभी कृत्य करते हैं।

इसलिये उपवसथ पूर्व के सभी कृत्यों में मंत्रों को बहुत धीरे धीरे पढ़ना चाहिये। क्योंकि देवों ने यज्ञ को पा लेने के पहले सब कृत्यों का इस प्रकार किया मानों वह उसे ढूंढ रहे हैं।

इसलिये उपवसथ के दिन मंत्रों को जैसे चाहे पढ़े क्योंकि उस दिन तो यज्ञ मिल चुका था।

यज्ञ को प्राप्त करके देवों ने उससे कहा, "ठहर हमारे भोजन के लिये।" उसने कहा, "नहीं। मैं तुम्हारे लिये क्यों ठहरूं?" उसने उनकी ओर देखा। उन्होंने कहा, "ब्राह्मण और छन्दों से संयुक्त होकर तू भोजन के लिये ठहर।" वह मान गया!

इसलिये यज्ञ ब्राह्मण और छन्दों से युक्त होकर हवि को देवों तक ले जाता है। (१)

४६—यज्ञ में तीन दोष हो जाया करते हैं। पहला 'जग्धं' (उगला हुआ खा लेना)। दूसरा गीर्ण (निगल जाना)। तीसरा वांतं (क़ै या वमन करना)।

अगर कोई ऋत्विज्, यह सोचकर अपने को स्वयं ही अर्पण करे कि यजमान मुझे कुछ देगा या यजमान मुझसे यह कृत्य करायेगा। तो ऐसे पुरुष को नियुक्त करना उगले हुये को खाने

के तुल्य है। क्योंकि ऐसी नियुक्ति से यजमान का भला नहीं होता।

अगर कोई ऋत्विज् को डर के मारे नियुक्त करता है कि (अगर मैं इसे न नियुक्त करूंगा तो) यह मुझे मार डालेगा या मेरे यज्ञ में विघ्न डालेगा तो यह यज्ञ को निगल जाने के समान है। क्योंकि इससे यजमान को लाभ नहीं होता।

वमन वह कि किसी ऐसे को ऋत्विज् वर लिया जिसकी कीर्ति ठीक नहीं है। जैसे वमन से लोग घृणा करते हैं ऐसे ही ऐसे मनुष्य से देव घृणा करते हैं। यह ऐसा ही घृणित कार्य है जैसा वमन। क्योंकि ऐसे के काम से यजमान का भला नहीं होता।

इसलिये यजमान को चाहिये कि इन तीनों में से किसी को ऋत्विज् न बनावे। यदि भूल से इस प्रकार हो जाय तो इस का प्रायश्चित्त वामदेव्य गान है। क्योंकि यह वामदेव्य यजमान लोक, अमृतलोक और स्वर्गलोक है।

इस साम में तीन अक्षर कम हैं। इसको पढ़ने के समय 'पुरुष' शब्द के जो आत्मा का पर्याय है, तीन टुकड़े करदे और हर एक को मंत्र के हर पाद के पीछे लगा दे। इस प्रकार वह अपने को यजमान लोक, अमृत लोक, और स्वर्गलोक में स्थापित कर लेता है। इस प्रकार यज्ञ के करने में जो भूल चूक हो जाती है उसकी निवृत्ति हो जाती है।

ऋषि (ऐतरेय) का कहना है कि यदि ऋत्विज् समृद्ध (ठीक ठीक) भी हो तो भी वामदेव्य गान* करना चाहिये। (२)

---

*वामदेव्य गान के तीन मन्त्र हैं:—

(१) कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥

४७—देवों के लिये हव्य ढोते ढोते छन्द थक गये और यज्ञ के पिछले भाग में ठहर गये जैसे घोड़ा या खच्चर बोझ लेजाने के बाद थक कर ठहर जाता है।

(इनको ताज़ा करने के लिये) मित्र और वरुण के पशु के लिये पुरोडाश देने के पश्चात् देविका हवियों को दे।

धाता के लिये १२ कपालों का पुरोडाश। धाता वषट्कार है। अनुमति के लिये चरु। क्योंकि अनुमति गायत्री है। राका के लिये चरु। क्योंकि राका त्रिष्टुभ् है। सिनीवाली के लिये चरु। क्योंकि सिनीवाली जगती है। कुहू के लिये चरु क्योंकि कुहू अनुष्टुभ् है। यह सब छन्द हैं। क्योंकि अन्य छन्द भी गायत्री, त्रिष्टुभ्, जगती और अनुष्टुभ् के ही अनुयायी हैं। यह इस यज्ञ में श्रेष्ठ समझे जाते हैं। जो कोई इस रहस्य को समझ कर इन छन्दों से आहुति देता है मानों वह सभी छन्दों से आहुति देता है।

कहावत है कि कि घोड़े यदि ठीक तौर पर रक्खे जांय तो सवार को आराम मिलता है। यही हाल छन्दों का है। छन्दों को ठीक तौर पर रक्खा जाय तो यजमान को लाभ पहुंचाते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह उस लोक को प्राप्त होता है जिसका उसने कभी ध्यान भी नहीं किया।

---

(२) कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥

(३) अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतम्भवास्यूतये॥

(साम० १।३।१-२,-३)

यह गायत्री छन्द में हैं। इनमें से तीसरे मंत्र में २१ ही अक्षर हैं। तीन कम हैं। इसलिये पहले पद के अन्त में 'पु', दूसरे के 'रु' और तीसरे के 'ष' लगाकर छन्द पूरा कर दिया जाता है।

इन (देविका) आहुतियों के विषय में कुछ लोग कहते हैं कि इन सब देविकों की आहुतियों के पहले पहले एक एक घी की आहुति धाता को देवे। ऐसा करने से वह हर देविका का धाता से मैथुन करा देगा। इस पर कहते हैं कि ऐसा करना आलस्य (अनुचित) है कि एक ही दिन में ऋचाओं के एक ही जोड़े (पुरानुवाक्य और याज्य) पढ़े जायँ। कई स्त्रियाँ भी तो एक ही पति से मैथुन करती हैं। जब (चारों) देविकाओं से पहले होता धाता के लिये याज्य मंत्र पढ़ता है तो मानों धाता सभी देविकाओं के साथ मैथुन कर लेता है।

देविकाओं की आहुति के विषय में इतना कथन हुआ। (२)

४८—अब देवियों की आहुतियों के विषय में।

'सूर्य' के लिये एक कपाल का पुरोडाश रक्खे। जो सूर्या है वह धाता है। और वही वषट्कार है।

'द्यौ' के लिये चरु। द्यौ अनुमति है। वह गायत्री है।

'उषा' के लिये चरु। उषा राका है। वह त्रिष्टुभ् है।

'गौ' के लिये चरु। गौ सिनीवाली है। गौ जगती है।

'पृथिवी' के लिये चरु। पृथिवी कुहू है। पृथिवी अनुष्टुभ् है।

यज्ञ में जो अन्य छन्द प्रयोग किये जाते हैं वह सब गायत्री, त्रिष्टुभ्, जगती और अनुष्टुभ् का अनुसरण करते हैं।

जो इस रहस्य को समझकर इन छन्दों के लिये आहुतियाँ देता है वह सभी छन्दों को आहुतियाँ देता है।

कहावत है कि अच्छा घोड़ा सवार को सुख देता है। यही छन्दों का हाल है। क्योंकि वे यजमान को सुख देते हैं जो इस रहस्य को समझता है वह उस लोक को प्राप्त होता है जिसकी ओर उसका ध्यान भी न रहा हो। इन (देवियों) की आहुतियों के विषय में कुछ लोगों का कहना है कि हर देवी को आहुति

निकाल सके। ऋषियों में से भरद्वाज ने उनको देखा और कहा यह असुर उकथ्यों में छिपे हैं। इसलिये कोई और उनको देख नहीं सकता।" उसने इस मंत्र से अग्नि को बुलाया :—

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरागिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः।

(ऋ० ६।१६।१६)

"इतरा गिरः" (अर्थात् दूसरी वाणियाँ) असुरों की हैं।

इस पर अग्नि उठा और कहने लगा 'यह कृश (दुबला), दीर्घ (लम्बा), पलित (पीला) पुरुष क्या कहता है ? क्योंकि भरद्वाज दुबला, लम्बा और पीला था। उसने कहा "यह असुर उकथ्यों में प्रविष्ट हो गये। इन को कोई नहीं देख सकता।"

अग्नि घोड़ा बनकर उनके पीछे दौड़ा, और उसने उनको पकड़ लिया। इससे साकमश्वंसाम" बन गया। तभी से यह "साकमश्वंसाम" कहलाता है।

इस पर लोग कहते हैं कि 'साकमश्वंसाम' से उकथ्यों को शुरू करे। और जो उकथ्य साकमश्वं से नहीं शुरू होते हैं उनको शुरू होते न समझना चाहिये।

इस पर कुछ लोगों का कहना है कि प्रमंहिष्ठीय से उकथ्यों को शुरू करना चाहिये क्योंकि इन्हीं के द्वारा देवों ने असुरों को उकथ्यों से निकाला था।

ऋषि का कथन है कि चाहे प्रमंहिष्ठीय से शुरू करे या साकमश्वंसाम से। जैसा जी चाहे। (५)

५०—असुर मित्रावरुण के उकथ्या में घुस गये। इन्द्र ने कहा, "कौन मेरा साथ देगा कि हम दोनों इन असुरों को वहाँ से निकाल दें।" वरुण ने कहा, "मैं"। इसलिये तृतीय सवन में इन्द्र-वरुण के लिये मित्रावरुण का उकथ्य पढ़ा जाता है।

असुर यहाँ से निकल कर ब्राह्मणाच्छंसी में घुस गया। इन्द्र ने कहा, "मैं"। इसलिये तीसरे सवन में इन्द्र-बृहस्पति के

लिये ब्राह्मणाच्छंसी उक्थ्य पढ़ा जाता है। इन्द्र और बृहस्पति ने असुरों को उसमें से निकाल दिया।

असुर यहाँ से निकल कर अच्छावाक् में घुस गये। इन्द्र ने कहा, "कौन मेरा साथ देगा कि हम दोनों असुरों को यहाँ से निकाल दें।" विष्णु ने कहा, "मैं"। इसलिये तीसरे सवन में इन्द्र और विष्णु के लिये अच्छावाक् उक्थ्य पढ़ा जाता है। इन्द्र और विष्णु ने उनको वहाँ से निकाला।

इन्द्र के साथ जिन देवों की स्तुति की जाती है वे द्वन्द्व अर्थात् जोड़े हैं। जोड़े में नर और नारी होते हैं। इसी जोड़े से जोड़ा उत्पन्न होता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशुओं से युक्त होता है।

पोत्रीय और नेष्ट्रीय ऋतुयाज चार होते हैं। वे छः ऋचायें होती हैं। यह विराट् है जिसमें दस भाग हैं। इस प्रकार यह यज्ञ को दस भाग वाले विराट् से समाप्त करते हैं। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका समाप्त हुई।

चौथी पत्रिका

पहला अध्याय

१—देवों ने पहले दिन (की सोम-इष्टि) द्वारा इन्द्र के लिये वज्र तैयार किया। दूसरे दिन के द्वारा ठंढा किया। तीसरे दिन के द्वारा इन्द्र को अर्पण किया और चौथे दिन के द्वारा उसने उससे शत्रुओं पर प्रहार किया।

इसलिये होता चौथे दिन षोडशी शस्त्र को पढ़ता है। यह जो षोडशी है वह वज्र है। यह जो चौथे दिन षोडशी का पाठ करता है मानो वज्र का प्रहार करता है अपने शत्रु और अहित-चिन्तक पर और उस पर जिस का मारना ठीक हो।

षोड़शी वज्र हैं। उक्थ्य पशु हैं। उस (षोडशी) को शस्त्रों के ढकने के तौर पर पढता है। ऐसा करने से मानो षोडशी के शस्त्र से पशुओं को घेर लेता है। इसलिये षोडशी रूपी वज्र से जब पशु घेरे जाते हैं तो वे यजमान के पास लौट आते हैं।

इसलिये घोड़ा हो या पुरुष हो या गौ हो या हाथी हो यदि ये जाते हों तो स्वयं ही लौट आते हैं यदि इनको पुकारा जाय।

षोडशी रूपी वज्र को देखकर इस षोडशी वज्र से ही वश में आते हैं। क्योंकि वाणी वज्र है। षोडशी वज्र है।

प्रश्न होता है कि यह षोडशी नाम क्यों पड़ा। स्तोत्र १६ होते है। शस्त्र भी सोलह होते हैं। सोलह अक्षर (अनुष्टुभ्) के बाद ठहरता है और सोलह अक्षर के बाद 'ओ३म्' कहता है। इसमें १६ पदों का निविद रक्खा जाता है। इसीलिये षोडशी नाम पड़ा।

अब दो अक्षर बढ़े (मंत्र के पिछले भाग में १६ के बजाय अठारह अक्षर होते हैं।) क्योंकि षोडशी के अनुष्टुभ् में अठारह अक्षर हैं। यह वाणी के दो स्तन रूप हैं जो इस रहस्य को समझता है उसकी सत्य रक्षा करता है और झूठ उसको हानि नहीं पहुँचाने पाता। (१)

२—तेज और ब्रह्मवर्चस् का इच्छुक षोडशी में गौरिवीत साम का पाठ करे। (गौरिवीत साम–इन्द्र जुषस्व प्रवहाय··· साम वेद, उत्तरार्चिक ३।२२; आश्वलायन श्रौत सूत्र ६।२)। यह गौरिवीत साम तेज भी है और ब्रह्मवर्चस् भी। जो इस रहस्य को समझ कर गौरिवीत साम पढ़ता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि षोडशी में नानद साम पढ़ना चाहिये, (नानद साम—प्रत्यस्मै पिपीषते इत्यादि, सामवेद ४।२।७।१-४) इन्द्र ने वृत्र के लिये वज्र उठाया, और उसे मारा, और उसे घायल किया। घायल होकर वह शोर करने लगा (व्यनदत्)। इसलिये नानद साम हो गया। इसीलिये इसको नानद साम कहते हैं। नानद साम को शत्रु का भय नहीं क्योंकि यह शत्रु का मारने वाला है। जो इस रहस्य को समझ कर षोडशी में नानद साम का पाठ करता है उसका शत्रु मर जाता है और वह शत्रुओं से अभय हो जाता है।

यदि नानद साम पढ़ा जाय तो 'अविहृत पढ़ना चाहिये (अर्थात् एक मंत्र के पद दूसरे मंत्र के पद से नहीं मिलाने

चाहिये) क्योंकि इसको अविहृत ही पढ़ा जाता है। यदि षोडशी शस्त्र में 'गौरिवीत' का पाठ करे तो विहृत पढ़े (अर्थात् एक मंत्र के पद दूसरे मंत्र के पद से मिला देना चाहिये) क्योंकि उसको इसी प्रकार पढ़ा करते हैं।

३—यदि गौरिवीत पढ़ा जाय तो होता छन्द के पदों को मिला जुला देता है (व्यतिषजति)। गायत्री और पंक्ति को मिला देता है "आत्वा वहन्दु" (ऋ० १।१६।१-३) और उप-सुश्रृणिहि (१।८२।१,३,४) ।(पहला गायत्री है और दूसरा पंक्ति)। पुरुष गायत्री होता है और पशु पंक्ति। इस प्रकार वह पुरुष को पशुओं से मिलाता है और उनको पशुओं में स्थापित करता है।

गायत्री और पंक्ति मिल कर दो अनुष्टुभ् होते हैं। इस प्रकार यजमान अनुष्टुभ् रूप वाणी से या वज्र से अलग नहीं होता।

उष्णिक् और बृहती को मिला देता है जैसे "यदिन्द्र पृतनाज्ये" "अयन्तेते अस्तु हर्यत।" (ऋ० ४।१२।२५-२७ और ३।४४।१-३)। पुरुष उष्णिक् है और पशु बृहती। इस प्रकार वह पुरुष को पशुओं से मिला देता है और पशुओं में उसकी स्थापना कर देता है।

उष्णिक् और बृहती मिल कर दो अनुष्टुभ् होते हैं। इस प्रकार वह अनुष्टुभ् रूपी वाणी से और वज्र से अलग नहीं होता।

वह द्विपद को त्रिष्टुभ् से मिला देता है। जैसे "धूर्ष्वस्मै" और "ब्रह्मन् वीर" (ऋ० ७।३४।४ तथा ७।२९।२) पुरुष द्विपद है और वीर्य त्रिष्टुभ्। इस प्रकार पुरुष को वीर्य से मिला देता है; और वीर्यवान् कर देता है। यही कारण है कि मनुष्य वीर्य-वान् होकर सब पशुओं से अधिक बल वाला हो जाता है।

बीस अक्षरों का द्विपद और ४४ का त्रिष्टुभ् मिल कर ६४ अक्षर के दो अनुष्टुभ् होते हैं। इस प्रकार यजमान व अनुष्टुभ् रूपी वाणी से और वज्र से अलग नहीं होता।

वह द्विपद और जगती को मिला देता है जैसे एष ब्रह्मा (आश्व० श्रौतसूत्र ६।२) और प्रतेमहे (ऋ० १०।९६।१-३)। पुरुष द्विपद हैं और पशु जगती हैं, इस प्रकार वह पुरुष को पशुओं से मिला देता है और पशुओं में उसकी स्थापना कर देता है। इसलिये पुरुष पशुओं में प्रतिष्ठित होकर उनसे दुग्धादि भोजन प्राप्त करता है। और उन पर शासन करता है क्योंकि यह उसके वश में होते हैं। सोलह अक्षरों के द्विपद और अड़तालीस अक्षरों की जगती मिलकर चौंसठ अक्षरों के दो अनुष्टुभ् हो जाते हैं। इस प्रकार यजमान वाणी रूपी• अनुष्टुभ् और वज्र से अलग नहीं होता।

वह अब नीचे के मंत्र बोलता है जिनमें उन नियत छन्दों से अधिक अक्षर हैं :—(अति छन्द)

(१) त्रिकद्रुकेषु महिषोयवाशिरं (ऋ० २।२२।१-३)

(२) प्रोष्वस्मै पुरोरथम्। (ऋ० १०।१३३।१-३)

छन्दों में से जो रस बहा वह अतिच्छन्दों में चला गया। इसीलिये इनको "अतिच्छन्द" कहते हैं।

षोडशी शस्त्र सब छन्दों से बना है, इसलिये अतिच्छन्दों का पाठ किया जाता है।

इस प्रकार होता यजमान को सब छन्दों से युक्त कर देता है।

जो इस रहस्य को समझता है वह सब छन्दों के षोडशी द्वारा फूलता फलता है। (३)

४—महानाम्नी मंत्रों से कुछ टुकड़े लेकर उपसर्ग* अर्थात् आधिक्य करता है :—

पहली महानाम्नी यह (भूलोक) है, दूसरी अंतरिक्ष लोक, तीसरी वह (स्वर्ग लोक)। इस प्रकार षोडशी में सब लोक आ गये।

महानाम्नियों में से षोडशी में उपसर्ग करने का तात्पर्य यह है कि होता यजमान को सब लोकों में भाग देता है। जो इस रहस्य को समझता है वह षोडशी के सब लोकों से निर्मित होने के कारण फूलता फलता है।

अब वह नीचे के प्रज्ञात अनुष्टुभों का पाठ करता है :—

(१) प्र प्रवस्त्रिष्टुभम्। (ऋ० ८।६६।१)

(२) अर्चत प्रार्चत। (ऋ० ८।६६।८-१०)

(३) यो व्यर्तीफराणयद्। (ऋ० ८।६६।१३-१५)

प्रज्ञात अनुष्टुभों का पाठ ऐसा है जैसे कोई मार्ग से बहक गया हो और लौट-फेर कर ठीक मार्ग पर आ जाय।

जो जो अपने को श्री वाला और संपन्न समझे उसको चाहिये कि होता से अविहृत पाठ कराये जिससे छन्दों को विहृत करने में जो उनकी क्षति होती है उस क्षति का उस पर भी प्रभाव न पड़ सके।

अगर पाप नाश करने का प्रयोजन हो तो विहृत पाठ होना चाहिये।

---

*यह उपसर्ग पाँच हैं (१) प्रेचन (२) प्रचेतय (३) आयाहिपिबमत्स्व (४) क्रतुश्छन्द ऋते बृहत् (५) सुम्न आधेहि नो वसो। यह महानाम्नी मंत्रों से लिये गये हैं। यदि इनको अविहृत बोलना हो तो लगातार बोलते हैं। इन का एक अनुष्टुभ् हो जाता है। यदि विहृत बोलना हो तो अतिच्छन्दों में जोड़ देते हैं।

क्योंकि मनुष्य पाप से मिला है, षोडशी का विहृत पाठ करने से यजमान पाप से छूट जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह इस पाप से छूट जाता है।

नीचे के मंत्र से समाप्त करता है :—

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपम्। (ऋ० ८।६९।७)

'ब्रध्नस्य विष्टप' स्वर्ग है। इस प्रकार वह यजमान को स्वर्ग लोक में पहुँचाता है।

वह नीचे के याज्य मंत्र को बोलता है :—

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते। ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषम् जठर आ वृषस्व॥ (ऋ० १०।९६।१३)

इस याज्य मंत्र को पढ़ने से षोडशी में सभी सवन सम्मिलित हो जाते हैं। "अपाः" (तूने पिया है) से प्रातः सवन का तात्पर्य है। इस प्रकार षोडशी में प्रातः सवन आ गया। "अथो इद सवनं केवलं ते" (अब यह सवन केवल तेरा ही है) इससे दोपहर का सवन आ गया। इससे षोडशी में दोपहर का सवन सम्मिलित हो गया। "ममद्धि सोमं" (सोम को पी या सोम से आनन्द उठा) इससे सायंकाल का सवन आ गया। इससे षोडशी में तीसरा सवन सम्मिलित आ गया। "वृषन्" (बलवान) षोडशी का रूप है।

इस याज्य मंत्र को पढ़ने से षोडशी सब सवनों से बन जाती है। इस प्रकार यह सब सवनों की हो जाती है। जो इस रहस्य को समझता है वह सब सवनों से बनी हुई षोडशी के द्वारा फूलता फलता है।

याज्य मंत्र पढ़ने में हर ११ अक्षर के पद में महानाम्नियों में से पांच अक्षर का एक उपसर्ग* जोड़ देते हैं। इस प्रकार

---

*यह उपसर्ग ये हैं:—(१) एवाह्येव (२) एवहीन्द्र (३) एवाहि शक्रो (४) वशोहि शक्र।

षोडशी को सब छन्दों से युक्त कर देता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सब छन्दों से युक्त षोडशी द्वारा फूलता फलता है। (४)

५—दिन का देवों ने आश्रय लिया और रात का असुरों ने। वे दोनों बराबर शक्ति के थे और कोई किसी से न दबता था। इन्द्र ने कहा "मेरे साथ रात में कौन घुसेगा कि असुरों को यहाँ से निकाल दें।" लेकिन उसे देवों में कोई न मिला जो उसकी बात मानता। क्योंकि वे डरते थे कि रात का अंधकार मृत्यु है। यही कारण है कि आजकल भी लोग रात के समय निकट स्थान में जाते हुये भी डरा करते हैं। क्योंकि रात अंधेरी होती है और अंधेरी मृत्यु के समान है। छन्द उसके साथ चले। चूंकि छन्द रात के देवता हैं। न निविद पढ़ा जाता है न पुरोरुक, न धाय्य। न इन्द्र और छंदों के सिवाय कोई देवता हैं। उन्होंने पर्य्यायों (सोम पात्र को बार बार देने को पर्य्याय कहते हैं) द्वारा घूम घूम कर असुरों को निकाला। चूंकि पर्य्यायों द्वारा उनको निकाला इस लिये उनको पर्य्याय कहते हैं।

पहले पर्य्याय में उन्होंने असुरों को रात के पहले भाग से निकाला। दूसरे पर्य्याय में बीच की रात से। और अन्त के पर्य्याय में पिछले पहर से।

छंदों ने कहा, "केवल हमीं रात में (अपिशर्वर्या) तेरा साथ देते हैं।" इस लिए (ऋषि ऐतरेय ने) छंदों का 'अपिशर्वराणि' नाम रख दिया। क्योंकि वे इन्द्र को जो मृत्यु रूपी

यह हर पद में इस प्रकार जोड़े जाते हैं :—

(१) एवाह्येवापाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्। (२) एवहीन्द्रापो इदं सवनं केवलं ते। (३) एवाहि शक्रो ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र (४) वशो हि शक्र सत्रा वृषञ् जठर आ वृषस्व ॥

रात के अंधकार से डरता था वहाँ से निकाल लाये। इसीलिये इनको अपिशर्वराणि कहते हैं। (५)

६—होता (अतिरात्र के जापक) नीचे के अनुष्टुभ् छन्द के मंत्र से आरंभ करता है:—

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्रगायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ (ऋ० ८।९२।१)

इसमें 'अन्धस' (अंधेरा) शब्द पड़ा है। अनुष्टुभ् रात का है। रात्रि आनुष्टुभी होती है।

इन पर्यायों के याज्यों* में 'अन्ध', (अंधेरा) 'पा' (पीना) और 'मद' (आनन्द करना) यह तीन शब्द अवश्य होते हैं।

---

*यह याज्य मंत्र यह हैं:—

(१) अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि॥
(ऋ० २।१४।१)

(२) अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै।
(ऋ० ६।४४।१४)

(३) अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः।
(ऋ० १०।१०४।२)

(४) इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाऽवस्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याऽथा यज्ञाय गृणते वयो धाः॥
(ऋ० ६।४०।१)

(५) अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः।
(ऋ० २।१९।१)

इससे याज्यों में रूप समृद्धता आ जाती है। जो रूप समृद्धता है वही यज्ञ में फलीभूत होती है।

पहले पर्य्याय में पहले पद को बोलते हैं। इससे वे असुरों के जो घोड़े और गायें हैं उनको ले लेते हैं। बीच के पर्य्याय में बीच के पद को दो बार बोलते हैं। और ऐसा करके वह असुरों की गाड़ियों और रथों को छीन लेते हैं।

अन्तिम पर्य्याय में अन्त के पद को दो बार बोलते हैं। ऐसा करके वे असुरों से उनके शरीरों पर जो वस्त्र, या सोना या रत्न होते हैं उनको छीन लेते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने शत्रु को सब लोकों से निकाल देता है और उनसे सब कुछ छीन लेता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि पवमान स्तोत्र दिन के ही हैं, रात के नहीं, फिर इनका रात में क्यों पाठ होता है। दोनों के एक से ही भाग कैसे होते हैं?

इसका उत्तर यह है कि नीचे के मंत्रों से जो शस्त्र भी हैं और स्तोत्र भी :—

इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः॥
(ऋ० ८।९२।१९)

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन् ररिमा ते॥
(ऋ० ८।२।१)

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वस्य गिर्वणः॥
(ऋ० ३।५१।१०)

इस प्रकार रात भी पवमानवती हो जाती है। इस प्रकार दिन और रात दोनों पवमान युक्त हो जाते हैं। और उनके एक से भाग होते हैं।

अब प्रश्न होता है कि जब १५ स्तोत्र दिन के लिये ही हैं

रात के लिये नहीं तो दोनों के लिए १५ स्तोत्र कैसे हो गये ? और दोनों के समभाग कैसे हुये ?

इसका उत्तर यह है 'अपिशर्वराणि' में १२ स्तोत्र होते हैं। इसके अतिरिक्त रथंतर स्वर में सन्धि स्तोत्र-पढ़ा जाता है जो तीन देवों के प्रति है। इस प्रकार रात के १५ स्तोत्र हो जाते हैं। इस प्रकार रात दिन के १५ स्तोत्र हो जाते हैं और वे सम-भाग भी हो जाते हैं।

स्तोत्र परिमित हैं परन्तु पाठ (अनुशंसन) अपरिमित है। मानो भूतकाल परिमित है, भविष्य अपरिमित है। भविष्य के लिये ही अन्य मंत्र पढ़ता है। स्तोत्र से जो बढ़ा वह प्रजा है, जो अपने से बढ़ा वह पशु। इसमें अधिक मंत्रों के जाप से होता को उस सबकी प्राप्ति हो जाती है जो अपने से अधिक है (अर्थात् प्रजा, पशु, धन आदि)। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पंचिका का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

७—प्रजापति ने अपनी लड़की सूर्या सावित्री को सोम राजा को ब्याह दिया। सब देव मेहमान होकर आये। प्रजापति ने उनके लिये वहतु के रूप में (महमानों को जो चीज़ें अर्पण की जाती हैं उनको 'वहतु' कहते हैं) हज़ार मंत्रों का शस्त्र बनाया जिसे अश्वि-शस्त्र कहते हैं। जो एक हज़ार से कम रहे वह अश्विनों का नहीं है। इसलिये होता को चाहिये कि एक हज़ार मंत्र बोले या अधिक। घी को खाकर बोले। जैसे लोक में गाड़ी या रथ के पहियों में तेल लगाने से अच्छे चलते हैं इसी प्रकार (घी खाने से) वाणी भी अच्छी चलती है। शकुनि या बाज़ की तरह बैठकर आहाय पढ़े।

देव आपस में यह निश्चय न कर सके कि यह हज़ार मंत्र किस के हों। हर एक ने कहा, "मेरे हों," "मेरे हों।" जब एक मत न हो सके तो यह ठहरा कि एक दौड़ दौड़ें। जो जीते उसी के यह मंत्र हों। उन्होंने सूर्य्य को जो अग्नि के भी ऊपर है गृहपति और काष्ठ (सीमा) नियत किया*। इसीलिये अश्विन शस्त्र का आरंभ इस अग्नि की ऋचा से होता है :—

---

*अर्थात् वह गार्हपत्य अग्नि से चलकर सूर्य्य तक दौड़े।

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः, देवना-मुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ (ऋ० ६।१५.१३)

कुछ लोगों का कहना है कि इस मंत्र से अश्विन-शस्त्र का आरंभ करना चाहिये :—

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित् सखायम्। अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य। (ऋ० १०।७।३)

उनका कहना है कि "दिवि शुक्रं यजतं सूर्य्यस्य" (मंत्र का चौथा पाद) इन शब्दों से द्वारा वह यथेष्ट स्थान को पहुँच जायगा।

परन्तु यह बात माननीय नहीं है। उन लोगों से कहा कि अगर मंत्र में 'अग्नि' शब्द बार बार आयेगा तो होता आग में गिर पड़ेगा। ऐसा ही हुआ करता है। इसलिये "अग्नि होता गृहपतिः" इससे आरंभ करना चाहिये। इसमें 'गृहपति' और जनिमा (सन्तान) शब्द हैं। इससे उसको पूर्ण आयु प्राप्त हो सकती है। जो इस रहस्य को समझता है उसकी आयु पूर्ण होती है। (१)

८—यह जो देवते दौड़ रहे थे उनमें से चलने के बाद अग्नि अपने मुख या लपटों द्वारा आगे था। अश्विन पीछे थे। और वे उससे बोले "हम दोनों जीत जायं"। अग्नि मान गया कि अश्विन शस्त्र में हम को भी भाग मिले। उन्होंने स्वीकार कर लिया और अश्विन-शस्त्र में अग्नि को स्थान दे दिया। इसीलिये अश्विन-शस्त्र में अग्नि के लिये कई मंत्र हैं।

अश्विन उषा के पीछे थे। वे उससे बोले, "तू हट जा। हम जीत जायँ" वह इस शर्त पर मान गई कि उसका भी भाग लगे। उन्होंने स्वीकार कर लिया और उसके लिये अश्विन-शस्त्र में जगह कर दी। इसीलिये अश्विन-शस्त्र में उषा के लिये कई मंत्र हैं।

अश्विन इन्द्र के पीछे चले और कहा, "मघवन्! हम इस दौड़ में जीतना चाहते हैं।" उनका यह साहस न हुआ कि इन्द्र से कहते "हट जाओ"। इन्द्र ने इस शर्त पर मान लिया कि मुझे भी भाग दो। उन्होंने स्वीकार कर लिया और अश्विन-शस्त्र में इन्द्र को स्थान दिया। इसीलिये अश्विन-शस्त्र में कई मंत्र इन्द्र के हैं।

इस प्रकार अश्विन जीत गये और उनको इनाम मिल गया। चूँकि अश्विन जीत गये और उनको इनाम मिला इसलिये इस शस्त्र को अश्विन-शस्त्र कहते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसकी कामना पूरी हो जाती है।

कुछ लोग पूछते हैं कि जब इस शस्त्र में अग्नि, उषा और इन्द्र के मंत्र हैं तो इसको अश्विन-शस्त्र क्यों कहते हैं। इसका उत्तर यह है कि अश्विन जीत गये। उनको इनाम मिल गया। जो इस रहस्य को समझता है उसकी कामना पूरी हो जाती है। (२)

९—अग्नि ने दौड़ में अपने रथ में खच्चर (अश्वतरी) जोड़े। दौड़ में अग्नि ने खच्चरियों की योनियाँ जला दीं। इस-लिये उनके सन्तान नहीं होती।

उषा लाल गायों के रथ में दौड़ी। इसीलिये उषाकाल में लाल रंग चमकता है। यह उषा का रूप है।

इंद्र ने घोड़े के रथों में दौड़ की। इसलिये क्षत्रियों का रूप यह है कि बहुत कोलाहल हो। यही इंद्र का रूप है।

अश्विनों ने गधों के रथ में दौड़ की और जीत गये। और इनाम पा गये। (चूँकि बहुत दौड़ने से थक गये। इसलिये गधों की तेजी जाती रही। और दूध मारा गया और रथ के वाहनों में सबसे कम हो गये। लेकिन अश्विनों ने गधे के वीर्य को शक्ति रहित नहीं किया। इसलिये वाजी अर्थात् गधे में दो

प्रकार का बीर्य होता है (द्विरेता) (एक घोड़ी में खच्चर उत्पन्न करने के लिए। दूसरा गधी में गधा उत्पन्न करने के लिये)।

कुछ लोग कहते हैं कि "जैसे अग्नि, उषा और अश्विन के लिये होता मंत्र पढ़ता है उसी प्रकार सूर्य्या के लिये भी सात छंदों में मंत्र पढ़ने चाहियें। देवों के सात लोक हैं। वह सब लोकों में फूले फलेगा।"

ऐसा माननीय नहीं है। तीन ही छंदों में पढ़ना चाहिये। तीन ही लोक हैं जो त्रिवृत हैं। इन लोकों के जीतने के लिये।

कुछ लोग कहते हैं कि—

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥"

(ऋ० १।५०।१)

से आरम्भ करे। यह भी माननीय नहीं है। मानो दौड़ने में उद्दिष्ट सीमा को ही भूल जाय। उसको इस मंत्र से आरम्भ करना चाहियेः—

सूर्यो न दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥

(ऋ १०।१५८।१)

मानो इससे वह उद्दिष्ट सीमा को पहुँच गया।

अब दूसरा मंत्र "उदुत्यं" (१।५०।१) बोले।

"चित्रदेवानामुदगादनीकं" (१।११५) यह सूक्त त्रिष्टुभ् है। यह सूर्य्य "देवों में चित्र" है। इस लिये यह बोला जाता है।

"नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे" (ऋ० १०।३७।१)

यह जगती सूक्त है। इसमें एक आशीर्वाद का पद है। इससे होता अपने लिये और यजमान के लिये आशीर्वाद कहता है। (३)

१०—इस सम्बन्ध में कहते हैं कि सूर्य्य को न छोड़ जाय। बृहती को न छोड़ जाय। सूर्य्य को छोड़ जायगा तो ब्रह्मवर्चस्

को छोड़ जायगा और बृहती को छोड़ जायगा तो प्राणों को छोड़ जायगा।

इन्द्र के इन प्रगाथों को पढ़ता है :—

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ (ऋ० ७।३२।२६)

"हे इन्द्र, हमारे यज्ञ को पूरा कर जैसे पिता पुत्र की मदद करता है। हे पुरुहूत (सब इसी को बुलाते हैं इस लिये इसको पुरुहूत कहा) हमको इसमें शिक्षा दे, जिससे हम ज्योति को प्राप्त होवें"।

यह जो ज्योति है उससे सूर्य्य का तात्पर्य है। इस मंत्र को पढ़कर वह सूर्य्य को भूलता नहीं।

बार्हत प्रगाथ को पढ़कर वह बृहती को भूलने नहीं पाता। नीचे के मंत्र से राथंतरी योनि की स्तुति करता है :—

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥

(ऋ० ७।३२।२२ तथा सामवेद उत्त० १।१।११)

राथंतर स्वर से अश्विन शस्त्र का सन्धि स्तोत्र पढ़ा जाता है। यह रथंतर योनि के लिये।

ऊपर के मंत्र में "ईशानमस्यजगतः स्वर्दृशम्" शब्द हैं। 'स्वर्दृक्' से सूर्य का तात्पर्य है (स्वर्ग का देखने वाला)। इसके पाठ से वह सूर्य को नहीं भूलता। यह जो बार्हत प्रगाथ है उससे बृहती को नहीं भूलता।

नीचे का मंत्र और वरुण का प्रगाथ पढ़ता है:—

बह्वः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः। त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥ (ऋ०७।६६।१०)

दिन मित्र है और रात वरुण। जो अतिरात्र करता है वह

दिन और रात से शुरू करता है। मैत्रावरुण प्रगाथ को पढ़कर होता यजमान को दिन और रात में स्थापित कर देता है।

"सूरचक्षसः" शब्द से सूर्य को नहीं भूलता। यह जो बार्हत प्रगाथ है उससे बृहती को नहीं भूलने पाता।

द्यौ और पृथिवी के यह दो मंत्र पढ़ता है :—

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ (ऋ० १।२२।३)

ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत् कवी। सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥

(ऋ० १।१६०।१)

द्यौ और पृथिवी दो स्थान हैं। पृथ्वी यहां और द्यौ वहाँ। द्यावापृथिवी के इन दो मंत्रों को बोलकर वह यजमान को द्यौ और पृथिवी में स्थापित कर देता है।

ऊपर जो "देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः" शब्द आये हैं (अर्थात् देव और शुचि-सूर्य दो देवियों को पार करता है) उन से वह सूर्य को नहीं भूलता। इनमें से एक गायत्री है और दूसरा जगती। इन दोनों के मिलने से दो बृहती होते हैं। इस प्रकार वह बृहती को नहीं भूलने पाता।

द्विपदों की स्तुति करता है :—

विश्वस्य देवीमृचयस्य जन्मनो न यारोषाति नग्रभत्

"यह जो उत्पन्न हुआ या चलता फिरता जगत है उस सब की शासक देवी न हम पर क्रोध करे, न नाश करने के लिये हमारे पास आवे" (यह मंत्र संहिता में नहीं है)।

लोग इस अश्विन-शस्त्र को चितैध (चिता का ईंधन कहते हैं। क्योंकि जब होता इस शस्त्र को समाप्त करने को होता है तो निर्ऋति अपना पाश लिये छिपी रहती है कि होता को गर्दन में डाल कर उसका नाश कर दे। बृहस्पति ने उसको बचाने के

लिये इस द्विपदा स्तुति का दर्शन किया । यह जो शब्द आये हैं "न यारोपातिनग्रभत्" (न क्रोध कर, न नाश के लिये देख) इन शब्दों को कहकर निर्ऋति से पाश छीन लिये और नीचे रख दिये। इसी प्रकार जब होता द्विपदों की स्तुति के मंत्र पढ़ता है तो निर्ऋति के हाथों से पाश छुड़ा लेता है और उनको नीचे रख देता है। और सुरक्षित निकल आता है। पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिये। जो इस रहस्य को समझता है वह पूर्ण आयु प्राप्त कर लेता है।

मंत्र में जो यह शब्द हैं "मृचयस्य जन्मनः" इनके पाठ से वह सूर्य्य को नहीं भूलता क्योंकि सूर्य्य चलता सा है (मर्चयति)।

द्विपद मंत्र का छन्द मनुष्य का छन्द है (क्योंकि इसके भी दो पाद होते हैं और मनुष्य के भी दो पद)। इसलिये इसके अन्तर्गत सभी छन्द आ जाते हैं। इस प्रकार होता बृहती को भूलने नहीं पाता । (४)

११—ब्रह्मणस्पति के मंत्र से समाप्त करता है। ब्रह्म बृहस्पति है। वह ब्रह्म में उसको स्थापित करता है। जो पुत्र और पशु की कामना करे वह इस मंत्र से समाप्त करे :—

"एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वय स्याम पतयो रयीणाम्" ॥ (ऋ० ४।५०।६)

क्योंकि इस मंत्र के "बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्" शब्दों के कहने से वह सन्तान, पशु, धन, वीर, वाला हो जाता है। यह जान कर कि इस मंत्र से आरम्भ करना चाहिये। तेज और ब्रह्मवर्चस् की कामना वाला नीचे के मंत्र से आरम्भ करे :—

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज् जनेषु । यद् दीदयच् छवस ऋत प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।

(ऋ० २।२३।१५)

'अति' का अर्थ यह है कि अन्यों की अपेक्षा अधिक ब्रह्म-वर्चस् वाला होता है। "द्युमत्" का अर्थ है ब्रह्मवर्चस् । 'विभाति' का अर्थ है कि ब्रह्मवर्चस् हर जगह चमकता सा है। "यद् दीदयच् छवस ऋत प्रजात" का अर्थ है कि ब्रह्मवर्चस् चमकता है। 'चित्र' का अर्थ है कि ब्रह्मवर्चस् साक्षात् मालूम होता है। जो जो इस रहस्य को समझ कर इस प्रकार समाप्त करता है वह ब्रह्मवर्चसी और ब्रह्मयशसी होता है। इसलिये इस रहस्य को समझने वाले होता को इसी ब्रह्मणस्पति के मंत्र से समाप्त करना चाहिये। ऐसा करने से वह सूर्य्य को नहीं भूलने पाता। तीन बार त्रिष्टुभ में सभी छन्द आ जाते हैं। इस प्रकार वह बृहती को नहीं भूलता। गायत्री और त्रिष्टुभ् से वषट्कार करे। गायत्री ब्रह्म है और त्रिष्टुभ् वीर्य। इस प्रकार ब्रह्म और वीर्य को जोड़ता है। जो इस रहस्य को समझ कर गायत्री और त्रिष्टुभ् से वषट्कार करता है वह ब्रह्मवर्चसी और ब्रह्मयशसी होता है। (त्रिष्टुभ् यह है) :—

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना । नासत्या तिरो अह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्त्रिधा सुदानू ।

(ऋ० ६।५८।७)

गायत्री यह है :—

उभा पिब तमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ।

(ऋ० १।४६।१५)

गायत्री और विराट् से भी वषट्कार हो सकता है :— गायत्री ब्रह्म है और विराट् अन्न । इस प्रकार वह ब्रह्म को अन्न से जोड़ता है। जो इस रहस्य को समझ कर गायत्री और

विराट् से वषट्कार करता है वह ब्रह्मवर्चसी और ब्रह्मयशसी होता है और ब्रह्म-अन्न (शुद्ध अन्न) खाता है।

इसलिये जो इस रहस्य को समझे उसे गायत्री और विराट् से वषट्कार करना चाहिये।

विराट् यह है :—

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे। तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः। (ऋ० ७।६८।२)

गायत्री वही है जो ऊपर दी गई। (५) (ऋ० १।४६।१५)

१२—इस दिन चतुर्विंश कृत्य करते हैं। यह आरंभ है। इससे संवत्सर का आरंभ होता है और स्तोमों और छन्दों का और देवतों का भी। यदि इस दिन आरंभ न हो तो न छन्द का आरंभ समझा जायगा, न देवतों का। इसीलिये इसका नाम आरंभणीय पड़ा। इसको चतुर्विंश इसलिये कहते हैं कि इसमें चौबीस स्तोम पढ़े जाते हैं। या चौबीस पाख (आधे महीनें) होते हैं। इनसे पाखों वाला साल आरंभ होता है।

उक्थ्य भी उसी दिन होता है। उक्थ्य पशु हैं। पशुओं की प्राप्ति के लिये यह किया जाता है। इस उक्थ्य में १५ स्तोत्र होते हैं और १५ शस्त्र। (मिल कर तीस हुये। तीस दिन का) महीना होता है। इनसे महीनों वाला साल शुरू होता है। (इस उक्थ्य में) तीन सौ साठ स्तोत्रिय मंत्र होते हैं। साल में इतने ही दिन होते हैं। इस प्रकार वह दिनों वाले साल का आरंभ करते हैं।

कहते हैं कि उस दिन अग्निष्टोम होना चाहिये। अग्निष्टोम संवत्सर है। अग्निष्टोम के सिवाय और किसी ने इस दिन की पवित्रता को या उसके भिन्न भिन्न कृत्यों की पवित्रता को क़ायम नहीं रक्खा।

अगर इस दिन अग्निष्टोम करें तो तीनों पवमान (प्रातः सवन, मध्य सवन और शाम के सवन के) अष्टाचत्वारिंश स्तोम में होने चाहियें। (अर्थात् स्तोत्रिय तृच को बार बार पढ़ कर ४८ कर लेना चाहिये) और अन्य (नौ) स्तोत्र चतुर्विंश स्तोम में। इस प्रकार ३६० स्तोत्रिय हो गये (३ × ४८ = १४४, ९ × २४ = २१६; १४४ + २१६ = ३६०) जितने कि वर्ष में दिन होते हैं। इस प्रकार वह दिनों वाले साल को शुरू करते हैं।

परन्तु उक्थ्य को ही करना चाहिये (अग्निष्टोम को नहीं)। यज्ञ पशु-समृद्ध होता है। अगर सभी स्तोत्र चतुर्विंश स्तोम में होंगे तो प्रत्यक्ष ही यह दिन चौबीस गुना हो जायगा। इसलिये उक्थ्य ही करना चाहिये। (६)

१३—(इस सत्र के) दो मुख्य साम• होते हैं, बृहत् और रथंतर। यह बृहत् और रथंतर यज्ञ की दो नावें हैं जो उसको दूसरी ओर पार कर देती हैं। इन्हीं से यजमान साल को पार कर लेता है। या बृहत् और रथंतर दो पैर हैं। दिन (का कृत्य) सिर है। दो पैरों की कमाई सिर पर रक्खी जाती है।

बृहत् और रथंतर दो पक्ष हैं। दिन का कृत्य सिर है। इन्हीं दो पक्षों से सिर को श्री तक ले जाते हैं।

इन दोनों सामों को एक साथ नहीं छोड़ देना चाहिये। अगर सत्र करने वाले इन दोनों को साथ-साथ छोड़ देंगे तो जैसे नावों की रस्सियाँ कट जाने से वे इस किनारे से उस किनारे तक बहती फिरती हैं, इसी प्रकार यह भी बहते फिरेंगे।

अगर वह रथंतर को छोड़ दें तो बृहत् के द्वारा दोनों ठहरे रहेंगे। और यदि बृहत् को छोड़ दें तो रथंतर के द्वारा दोनों ठहरे रहेंगे। जो वैरूप हैं वह रथंतर है और जो बृहत् है वह वैराज है। जो शाक्वर है वह रथंतर है; जो रैवत है वह बृहत् है।

जो इस रहस्य को समझ कर सत्र का आरंभ करते हैं वे पाखों, महीनों और दिनों वाले साल को प्राप्त करके स्तोमों और छन्दों और देवों को प्राप्त करके तपों को तपते हुये और सोम पान करते हुये साल को बिताते हैं।

जो इस संवत्सर से ऊपर कोई कृत्य करते हैं वह भारी बोझ को रख देते हैं। भारी बोझ पीठ को तोड़ देता है।

वह जो पहले कर्मों को क्रमशः करता हुआ फिर उलटे क्रम से कृत्य करता है वह साल के कल्याणप्रद अन्त को प्राप्त कर लेता है। (७)

१४—यह जो चतुर्विंश है वह महाव्रत है। बृहद् दिव सूक्त से होता वीर्य सींचता है (ऋ० १०।१२०, तदिदास भुवनेषु-इत्यादि) और महाव्रत दिन के कृत्य से इस वीर्य से सन्तान उत्पन्न कराता है। वीर्य सींचा जाय तो हर साल उपजता है। इसीलिये बृहद्दिव निष्केवल्य शस्त्र का भाग हो जाता है।

जो इस रहस्य को समझ कर पहले क्रमशः कृत्य करता है और फिर दूसरे भाग को उलटे क्रम से करता है, वह बृहद्दिव सूक्त के द्वारा वर्ष के कल्याण-प्रद अन्त को पा लेता है।

जो साल के इस पार और उस पार को जानता है वह संवत्सर के उस पार को सुगमता से पार कर लेता है।

सत्र के शुरू का अतिरात्र एक सिरा है और दूसरा अतिरात्र दूसरा सिरा। जो इस रहस्य को समझता है वह साल के अच्छे अन्त को पा लेता है।

जो साल के अवरोधन और उद्बोधन को जानता है, वह संवत्सर के कल्याण प्रद अन्त को पा लेता है। शुरू का अतिरात्र अवरोधन है और अन्त का अतिरात्र उद्बोधन।

जो इस रहस्य को समझता है वह वर्ष को अच्छी तरह पार कर लेता है। जो संवत्सर के प्राण और उदान को समझता है

वह साल को अच्छी तरह पार कर लेता है। पहला अतिरात्र प्राण है और दूसरा अतिरात्र उदान। जो इस रहस्य को समझता है वह अच्छी तरह साल को समाप्त करता है। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पंचिका का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

१५—वे ज्योतिगौ और आयु-स्तोम करते हैं। यह लोक ज्योति है। अन्तरिक्ष गौ है। वह लोक आयु है। पिछले तीन दिनों में वही स्तोम पढ़े जाते हैं (जो पहले तीन दिनों में)। पहले तीन दिन का क्रम है ज्योतिः, गौ, आयुः। पिछले तीन दिनों का है गौ, आयुः, ज्योतिः। (दोनों भागों के क्रम के हिसाब से) ज्योति यह लोक भी है और वह लोक भी। (अर्थात् पहले तीन दिनों में ज्योति पहला है और पिछले तीन दिनों में आखिरी)। इस प्रकार दोनों ज्योतियाँ एक दूसरे के के सामने हैं।

वे षडह (छः दिन के कृत्य) को दोनों ओर से ज्योति से सम्पादन करते हैं। इस प्रकार दोनों लोकों में उनकी प्रतिष्ठा होती है, इसमें भी और उसमें भी। और वे दोनों में विचरते हैं।

यह जो "अभिप्लव षडह" है यह देवों का चक्र है। दो अग्निष्टोम इसकी परिधि हैं। चार बीच के उक्थ्य नाभि हैं। इस चक्र के जोर से जहाँ चाहे जा सकता है। जो इस रहस्य को समझता है वह साल को अच्छी तरह पार कर लेता है।

जो पहल षडह का ठीक ठीक ज्ञान रखता है वह साल का भली भांति पार पा लेता है। इसी तरह जो दूसरे षडह का, तीसरे षडह का, चौथे षडह का और पांचवें षडह का (षडह = षट् + अह = छः दिन। महीने के तीस दिन पाँच षडह में बंटे हुये हैं।) (१)

१६—पहले षडह को करते हैं। छः दिन होते हैं और छः ऋतुयें। इस प्रकार ऋतुओं वाले साल को प्राप्त करते हैं और वर्ष की सभी ऋतुओं में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

दूसरे षडह को करते हैं। अब १२ दिन हुये। १२ मास होते हैं। इस प्रकार महीनों वाले साल को प्राप्त करते हैं और साल के सभी महीनों में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

तीसरे षडह को करते हैं। अब अठारह दिन हुये। यह हुये नौ के दूने। ९ प्राण हैं और नौ स्वर्ग लोक। प्राणों और स्वर्ग लोकों का लाभ करते हैं और प्राणों और स्वर्ग लोकों में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

चौथे षडह को करते हैं। अब २४ दिन हुये। २४ पाख हुये। पाख वाले वर्ष को प्राप्त करते हैं और वर्ष के सब पाखों में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

पाँचवें षडह को करते हैं। तीस दिन हो गये। विराट् में तीस अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है। इस प्रकार यह हर मास में विराट् (अन्न) का लाभ करते हैं।

अन्न की कामना वालों ने सत्र किया। हर महीने विराट् (तीस की संख्या) को प्राप्त करके उन्होंने दोनों लोकों में अन्न प्राप्त कर लिया। इस लोक में भी और उस लोक में भी।(२)

१७—"गवामयन" नामक (गायों का अयण) कृत्य करते हैं। गौ आदित्य हैं। 'गवामयन' करने से 'आदित्य-अयन' हो जाता है।

गायों ने एक बार खुर और सींगों की अभिलाषा से सत्र किया। दस महीनों में उनके खुर और सींग निकल आये। उन्होंने कहा "जिस अभिलाषा से हम दीक्षित हुये वह पूरी होगी, अब उठें"। जब वे उठे, उस समय उनके सींग थे। लेकिन उन्होंने सोचा कि "वर्ष को समाप्त कर दें"। इसलिये फिर सत्र जारी रक्खा। उनकी अश्रद्धा के कारण उनके सींग जाते रहे और वे तूपर (ठुंडे) रह गये। उन्होंने ऊर्ज प्राप्त किया। इसके बाद सब ऋतुओं को समाप्त करके वे उठे। चूँकि उन्होंने ऊर्ज पैदा किया इसलिये गायों को सब प्यार करते हैं और उनको सुन्दर (चारु) बनाते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह सब का प्यारा होता है और सौंदर्य को प्राप्त करता है।

आदित्य और अंगिरा लड़ पड़े कि कौन स्वर्ग लोक में पहले पहुँचे। हर एक ने कहा, "हम पहले पहुँचेंगे। हम पहले पहुँचेंगे"। आदित्य पहले स्वर्गलोक में पहुँच गये। फिर साठ वर्ष पीछे अंगिरा। (गवामयन और आदित्य-अयन में कई बातों में समानता है)। पहले अतिरात्र होता है। फिर चौबीसवें दिन उक्थ्य। सब अभिप्लव षडह इसमें आ जाते हैं। दिनों का क्रम बदल जाता है। यह आदित्यों का अयन है। अतिरात्र पहले। चौबीसवें दिन उक्थ्य। पृष्ठियों के साथ अभिप्लव षडह। दिनों में कुछ अदल बदल। यह है अंगिरसों का अयन।

यह जो अभिप्लव षडह है वह स्वर्ग लोक का सीधा मार्ग है। पृष्ठियों का षडह स्वर्ग लोक का महापथ है। जो अभिप्लव षडह और पृष्ठि-षडह दोनों मार्गों का अवलम्बन करते हैं उनकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। और इनको कोई हानि नहीं पहुँचती। (३)

१८—इक्कीसवीं करते हैं। इक्कीसवीं संवत्सर के बीच की

विषुवत् रेखा है। इस इक्कीसवीं को करके देवों ने सूर्य्य को स्वर्ग में पहुँचा दिया।

यह इक्कीसवीं जिस दिन दिवाकीर्त्य मंत्र (रचा गया) इसके पहले दस दिन होते हैं और पीछे दस दिन। बीच में यह होती है। इस प्रकार इसके दोनों ओर विराट् (दस संख्या वाले) होते हैं। इस प्रकार दोनों ओर विराट् से युक्त होकर यह (एकविंश अर्थात् सूर्य्य) इन लोकों के बीच में विघ्न को प्राप्त नहीं होता।

देवों को डर लगा कि सूर्य कहीं स्वर्गलोक से गिर न जाय। इस लिए उन्होंने तीन लोकों को नीचे (खंभे के रूप में) लगा दिया।

तीन स्तोम ही तीन स्वर्ग लोक हैं।

उनको डर हुआ कि सूर्य्य ऊपर को न चला जाय। इस लिये उन्होंने उसके ऊपर तीन लोक लगा दिये। तीन स्तोम ही तीन स्वर्गलोक हैं।

इस प्रकार (विषुवान् दिन से) पूर्व तीन सत्रह भागों वाले स्तोम होते हैं और पश्चात् तीन सत्रह भागों वाले स्तोम। बीच में इक्कीसवीं होती है। इसके इधर उधर "स्वरसाम" होते हैं। दोनों ओर से यह स्वरसामों से घिरा होता है इसलिये यह (सूर्य्य) इन लोकों के भ्रमण में विघ्न नहीं पाता।

देव डर गये कि आदित्य स्वर्गलोक से गिर न पड़े। इस लिये उन्होंने तीन "परम स्वर्गलोकों" की टेक लगा दी। स्तोम परम स्वर्गलोक हैं।

देव डर गये कि आदित्य कहीं ऊपर से लौट न जावे। इस लिये उन्होंने ऊपर से तीन "परम स्वर्गलोकों" की टेक लगा दी। स्तोम परम स्वर्गलोक हैं।

तीन सत्रह भागों वाले स्तोम पहले होते हैं और तीन सत्रह भागों वाले पीछे। अगर दो दो करके लिये जायँ तो चौंतीस हुये। स्तोमों में चौंतीसवां उत्तम या आख़िरी है।

सूर्य्य इन लोकों के बीच में अधिष्ठाता होकर तपता है। अपने इस पद के कारण वह भूत और भविष्यत् सभी चीजों में अच्छा है और उन सबसे अधिक चमकीला है। इस प्रकार विषुवान् अर्थात् इक्कीसवीं भी सब दिनों में श्रेष्ठ है। जो इस रहस्य को समझता है वह विभूषित होता है और इस लिये सबसे श्रेष्ठ होता है। (४)

१९—अब स्वरसामों का कृत्य किया जाता है। यह लोक स्वरसाम हैं। इनको स्वरसाम इसलिए कहते हैं कि यजमानों ने इनके द्वारा इन लोकों को प्रसन्न किया। (स्पृएवन्)*।

स्वरसाम करके वे (सूर्य्य को) इन लोकों में भाग दिलाते हैं।

देवों को भय हुआ कि यह स्वरसामों के स्तोम सम होने के कारण और (अन्य स्तोमों द्वारा) सुरक्षित न होने के कारण गिर न पड़ें। उनको फिसलने से बचाने के लिए उन्होंने उनको नीचे से स्तोमों से और ऊपर से पृष्ठों से घेर दिया। इसीलिये (स्वर साम से पहले) "अभिजित" दिन में सब स्तोम पढ़े जाते हैं और (स्वरसाम से बाद के दिन) "विश्वजित" दिन में सब पृष्ठ पढ़े जाते हैं। सत्रह स्तोमों को स्तोमों और पृष्ठों से इसलिये घेर देते हैं कि वे ठहरे रहें और गिरने न पावें।

देव डर गये कि सूर्य्य स्वर्गलोक से गिर न पड़े। इसलिए उन्होंने उसको पाँच रस्सियों से कस दिया। दिवाकीर्त्य साम

---

*'स्वरसाम' शब्द को "स्पृ" से कैसे बनाया और क्या अर्थ हुआ यह जान नहीं पड़ता।

रस्सियां हैं। इन्हीं में महादिवाकीर्त्य पृष्ठ है। अन्य साम हैं विकर्ण, ब्रह्म, भास और अग्निष्टोम। दोनों पवमान स्तोत्रों के लिए बृहन् और रथंतर होते हैं।

इस प्रकार उन्होंने सूर्य्य को पाँच रस्सियों से तान कर ठहरा दिया और गिरने न दिया।

सूर्य्य के उदय होने पर प्रातरनुवाक बोले। इस प्रकार यह सब स्तुतियाँ दिवाकीर्त्य (दिन की) हो जाती हैं। जिस सौर्य-पशु का सवन में आलभन किया जाय वह जहाँ तक मिले सफेद होना चाहिये। क्योंकि यह दिन सूर्य्य देवता का है।

इक्कीस सामधेनियां बोले क्योंकि यह इक्कीसवीं है।

५१ वें या ५२ वें शस्त्र मंत्र को पढ़ने पर निविद रक्खे (ऋ० १।३२ इन्द्रस्य नु वीर्याणि आदि—पूरा सूक्त), फिर इतने ही मंत्र और पढ़े (५१ या ५२) इस प्रकार सौ से अधिक हो गये। मनुष्य का पूरा जीवन सौ साल का है। वह शत-वीर्य और शत-इन्द्रिय होता है। इस प्रकार होता यजमान को आयुवान, वीर्यवान और इन्द्रियवान बना देता है। (५)

२०—दूरोहण का जाप करता है। मानो चढ़ता है। स्वर्ग लोग दूरोहकण है (क्योंकि कठिनता से चढ़ा जाता है)। जो इस रहस्य को समझता है वह स्वर्गलोक को चढ़ जाता है।

दूरोहण शब्द का यह अर्थ है कि यह जो तपता है अर्थात् सूर्य्य यह कठिनता से चढ़ पाता है और जो कोई वहाँ जाना चाहे वह भी।

दूरोहण का जाप कर के मानो वह सूर्य्य तक चढ़ जाता है। 'हंस' वाले मंत्र को पढ़ कर चढ़ता है :—

हंसः शुचिषद् वसुरंतरिक्षसद् धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्॥

(ऋ० ४।४०।५)

"हंसः शुचिषद्" (प्रकाश में बैठने वाला हंस) यह सूर्य्य है जो प्रकाश में बैठा हुआ है। "वसुरन्तरिक्ष सद्" वही अन्तरिक्ष में बैठने वाला वसु है। वही "होता वेदिषद्" अर्थात् वेदी में बैठने वाला होता है। वही "अतिथिर्दुरोणसत्" अर्थात् घर में बैठने वाला अतिथि है। वही 'नृषद्' मनुष्यों में बैठने वाला है। "वरसद्" अच्छे स्थान पर बैठने वाला है। अर्थात् जिस स्थान पर बैठ कर यह तपता है वह बहुत अच्छा स्थान है। "ऋतसद्" वह सचाई में बैठा हुआ है। "व्योमसद्" वह आकाश में बैठा हुआ तपता है। वह 'अब्जा' जल से उत्पन्न हुआ है। वह प्रातःकाल जलों में से निकलता है, और शाम को जलों में घुस जाता है। वह 'गोजा' गौओं से उत्पन्न हुआ। और 'ऋतजा' सत्य से उत्पन्न हुआ। 'अद्रिजा' पहाड़ से उत्पन्न हुआ है। 'ऋत' अर्थात् सत्य है।

सूर्य्य यह सब कुछ है। और यह मंत्र सूर्य्य का प्रत्यक्षतम रूप बतलाने वाला है। इसलिये जहाँ कहीं दूरोहण पढ़ा जाय 'हंस' वाले मंत्र के साथ पढ़ा जाय।*

---

* दूरोहण का यह हंस वाला मंत्र सात बार पढ़ना चाहिये। इस प्रकार :—

(१) 'शोंसावोम्' कहने के पश्चात् पहले पद पद कर के।

(२) फिर आधा आधा मंत्र।

(३) फिर तीन तीन पद मिला कर।

(४) फिर पूरा मंत्र लगातार बिना ठहरे हुये।

(५) फिर तीन तीन पद मिला कर।

(७) फिर आधा आधा मंत्र।

(७) फिर पद पद अलग करके। अन्त में ओम् कह कर समाप्त करे।

स्वर्ग की इच्छा वाला तार्क्ष्य मंत्र से आरंभ करे :—

त्यमूषु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानां। अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ (ऋ० १०।१७८।१)

क्योंकि तार्क्ष्य ने मार्ग दिखाया था जब गायत्री सुपर्ण होकर सोम को लाई थी। जैसे कोई खेत जानने वाले को अपना अगुआ बनाले इसी प्रकार तार्क्ष्य मंत्र से ('दूरोहण' को) आरंभ करना है। तार्क्ष्य वह है जो बहता है (पवन) और स्वर्ग लोक को ले जाता है।

ऊपर के मंत्र का अर्थ :—

हम यहां स्वस्ति के लिये बुलावें ("देवजूतं वाजिनं") देवताओं से प्रेरित हुये घोड़े को जो (सहावान) मज़बूत है। (रथानां तरुतारं) रथों में शीघ्र चलने वाला। (अरिष्ट नेमि) जिसकी नेमि अच्छी है, (पृतनाजं) जो लड़ाई में तीव्र है। (तार्क्ष्य) जो तेज़ है।"

यह (पवन) देवजूत वाजी है। यह सहावान है। वह 'रथानां तरुतार' है क्योंकि इन लोकों को शीघ्र ही पार कर जाता है, 'स्वस्तये' से होता अपना कल्याण चाहता है, 'इहा हुवेम' से होता उसका आह्वान करता है।

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम। उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥ (ऋ० १०।१७८।२)

"इन्द्र के लिये जैसे उसी प्रकार 'तार्क्ष्य' के लिये बार-बार आहुति देते हुये हम नाव के समान चीज़ों में चढ़ें। पृथ्वी हमारे लिये विस्तृत हो, बहुत बड़े और गहरे तुम दोनों (आकाश और पृथ्वी) में चलते हुये हम दुःख न उठावें।"

'स्वस्तये' शब्द से कल्याण चाहता है। 'नावमिवारुहेम' से वह तार्क्ष्य में चढ़ता है, स्वर्गलोक की प्राप्ति उसके भोग और वहां की संपत्ति के लिये। मंत्र के अन्तिम पद से तात्पर्य यह

है कि हम आराम से यहाँ से जावें और आराम से लौट आवें।

सद्यश्चिद्यः शवसा पंच कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान। सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम्॥ (ऋ० १०।१७८।३)

जैसे सूर्य ज्योति से जलों को फैलाता है उसी प्रकार से (तार्क्ष्य) अपने बल से पांच लोकों को फौरन पार कर सकता है। इस हजारों और सैकड़ों शक्ति वाले (तार्क्ष्य) की चाल तेज बाण की चाल के समान है। (६)

'सूर्य इव' से प्रत्यक्ष रूप से सूर्य्य का अभिवादन करता है और मंत्र के पिछले भाग से वह यजमान के लिये और अपने लिये कल्याण की प्रार्थना करता है।

२१—आहाव के पश्चात् दूरोहण पढ़ता है। स्वर्गलोक दूरोहण है। वाणी आहाव है। ब्रह्म वाणी है। इस प्रकार ब्रह्मरूपी आहाव के सहारे स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। पहले पद पद करके पढ़ता है। (दूरोहण का पढ़ना चढ़ने का प्रतिनिधि रूप है) इस प्रकार इस लोक की प्राप्ति करता है। आधे-आधे मंत्र से अन्तरिक्ष को प्राप्त करता है। फिर तीन-तीन पदों को मिला कर पढ़ता है। इससे उस लोक को प्राप्त करता है, फिर कुल मंत्र बिना ठहरे पढ़ता है। इस से वह सूर्य्यलोक में जगह पा लेता है।

अब तीन-तीन पद मिला कर उतरता है जैसे वृक्षों की डाली पकड़ कर उतरते हैं। इससे वह उस लोक में प्रतिष्ठा पा लेता है। आधे आधे मंत्र पर ठहर कर वह अन्तरिक्ष में स्थान पा लेता है। और पद-पद पर ठहर कर इस लोक में। इस प्रकार स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा पाकर इस लोक में प्रतिष्ठा पाता है। जो केवल एक यानी स्वर्ग की ही कामना चाहें उनके लिये दूरोहण का पिछला भाग (उतरने का भाग) न पढ़ा जाय। इससे वे

स्वर्ग लोक को जीत लेंगे परन्तु इस लोक में देर तक न ठहर सकेंगे।

त्रिष्टुभ् और जगती मिथुन के लिये मिला दिये जाते हैं, पशु मिथुन हैं, छन्द पशु हैं। पशुओं की प्राप्ति के लिये ऐसा किया जाता है। (७)

२१—जैसे पुरुष होता है वैसे ही विषुवान् सत्र है। इसका पहला आधा दाहिने बाजू के समान है और पिछला आधा बायें बाजू के समान। इसीलिये (विषुवान् के बाद के छः मास के कृत्य को) उत्तर अर्थात् पिछला भाग कहते हैं।

विषुवान् उस सिर के समान है जिसके दोनों बाजू बराबर हों। पुरुष टुकड़ों-टुकड़ों से बना है। इसलिये ही सिर के मध्य में एक जोड़ होता है।

इस पर कहते हैं कि इस दिन विषुवत् का पाठ होना चाहिये। यह विषुवान् उक्थ्यों का उक्थ है। विषुवान् विषवान् (भूमध्य रेखा) के समान है। ऐसा करने से विषुवान् के समान हो जाता है और श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

परन्तु इसको मानना नहीं चाहिये। साल भर तक इसका पाठ होना चाहिये। यह शस्त्र वीर्य है। ऐसा करने से यजमान साल भर तक वीर्यवान रहते हैं।

जो बीज पाँच या छः मास में उग आवें वे यदि समय के पहले ही उग आवें तो उनको कोई भोग नहीं सकता। इसी तरह जो बीज दस मास में या एक साल में उत्पन्न होते हैं उनको भोगते हैं।

इसलिये विषुवान् शस्त्र को साल भर पढ़ना चाहिये। यह संवत्सर ही है। जो इसको पाते हैं वह संवत्सर को प्राप्त करते हैं।

इसके द्वारा साल भर के पाप नष्ट हो जाते हैं।

चौथा अध्याय

२३—प्रजापति ने चाहा कि मैं संतान उत्पन्न करके बहुत हो जाऊँ। उसने तप तपा। उसने तपों को तप कर उसने अपने अंगों और प्राणों में द्वादशाह को देखा। उसने अपने अंगों और प्राणों में से द्वादशाह को निकाला। और उसको बारह गुना कर दिया। उसको उसने ले लिया और उससे यज्ञ किया। तब वह प्रजापति हुआ। प्रजाओं और पशुओं द्वारा उत्पन्न हुआ जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजाओं और पशुओं द्वारा अपने आपको उत्पन्न करता है।

उसने चाहा कि कैसे गायत्री द्वारा सब जगहों में द्वादशाह में समृद्धि को प्राप्त होऊँ। द्वादशाह के पूर्व में गायत्री तेज रूप में थी, मध्य में छन्दरूप में और अन्त में अक्षर रूप में। इस प्रकार द्वादशाह को गायत्री से व्यापक करके उसने समृद्धि प्राप्त की। जो इस रहस्य को समझता है वह सब समृद्धि को प्राप्त होता है।

जो गायत्री को पंखों वाली, आँखों वाली, ज्योति वाली, प्रकाशवाली जानता है, वह पंखों वाली, आँखों वाली, ज्योति

वाली और प्रकाश वाली गायत्री के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है।

यह जो द्वादशाह है वह पक्षिणी, चक्षुष्मती, ज्योतिष्मती और भास्वती गायत्री ही है। इसके दो जो अतिरात्र हैं वे दो पंख हैं। जो दो अग्निष्टोम हैं वे दो आँखें हैं। जो मध्य के आठ उक्थ्य हैं वे आत्मा हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह पक्षवाली, चक्षुवाली, ज्योतिवाली और भास्वती गायत्री द्वारा स्वर्गलोक को जाता है। (१)

२४—द्वादशाह में तीन त्र्यह (त्रि=तीन, अह=दिन) होते हैं (इस प्रकार ९ हुये) और एक दशवाँ और दो अतिरात्र (कुल १२ दिन हो गये)।

द्वादशाह (बारह दिनों) में दीक्षित होकर यज्ञिय (यज्ञ करने योग्य) बनता है। बारह रातों में उपसद करता है। और इससे वह अपने शरीर को शुद्ध कर लेता है।

जो इस रहस्य को समझ लेता है वह द्वादशाह में फिर उत्पन्न होकर और शरीर को शुद्ध करके शुद्ध और पवित्र होकर देवता में मिल जाता है।

द्वादशाह ३६ दिन का होता है। बृहती में ३६ अक्षर होते हैं। द्वादशाह बृहती का अयन (स्थान) है। बृहती से दोनों ने इन (सब) लोकों को पाया। इससे यह लोक जीता, इससे अन्तरिक्ष, इससे द्यौलोक। चार से चार दिशा और दो से इस संसार में प्रतिष्ठा।

जो यह रहस्य समझता है उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस प्रकार आक्षेप होता है कि इसको बृहती क्यों कहते हैं जब अन्य छन्द इससे बड़े हैं और प्रबल भी हैं। इसका उत्तर यह है कि इससे देवों ने सब लोकों को जीता था। दस अक्षर से यह लोक, दस से अन्तरिक्ष, दस से द्यौलोक, चार से चार

दिशा और दो से इस लोक में प्रतिष्ठा। जो इस रहस्य को समझता है वह इस बृहती के द्वारा अपनी सब कामनायें पूरी कर लेता है। (२)

२५—यह जो द्वादशाह है वह प्रजापति यज्ञ है। प्रजापति ने पहले यही द्वादशाह यज्ञ किया था। उसने ऋतुओं और महीनों से कहा, "तुम मुझसे द्वादशाह कराओ।" उन्होंने उसे दीक्षा दी और परिक्रमा कराते हुये ऐसा कर दिया कि वहाँ से जाने न पावे। तब उससे कहा, "पहले हमको दिलवाओ। तब यज्ञ करायेंगे"। उसने उनको अन्न (इषं) और रस (ऊर्ज) दिया। वही रस ऋतुओं और महीनों में निर्धारित है।

उसने दिया तब उन्होंने यज्ञ कराया। इसलिए जो आदमी कुछ दे सकता है वही यज्ञ भी कर सकता है।

उससे लेकर उन्होंने यज्ञ कराया। इसलिये लेकर ही यज्ञ कराना चाहिये। इस प्रकार दोनों समृद्धि को प्राप्त होते हैं, वह भी जो इस रहस्य को समझ कर दूसरों को यज्ञ कराते हैं और वह भी जो अपने लिये यज्ञ कराते हैं।

ऋतुओं और महीनों ने द्वादशाह में दक्षिणा पाकर अपने को आभारी अनुभव किया (अर्थात् हमारे ऊपर बोझ चढ़ गया) उन्होंने प्रजापति से कहा, "द्वादशाह यज्ञ हमको भी कराओ"। वह मान गया। उसने कहा, "दीक्षित हो"।

पूर्वपक्षों (शुक्ल पक्ष) ने पहले दीक्षा ली और उनका पाप छूट गया। इस लिए वे दिन के समान रोशनी में रहते हैं। जिनका पाप छूट जाता है वह मानो रोशनी में ही रहते हैं।

दूसरे पक्षों ने फिर दीक्षा ली। परन्तु वे सब पापों को न छोड़ सके। जिनके पाप नहीं छूटते वे अंधकार में रहते हैं।

इस लिए जो इस रहस्य को समझता है उसे पहले दीक्षा

लेनी चाहिये और पहले पक्ष (शुक्ल पक्ष) में। जो इस रहस्य को समझता है वह पापों से छूट जाता है।

यह प्रजापति ही था जो संवत्सर के रूप में, ऋतुओं और महीनों में व्यापक था। यह ऋतुयें और महीने प्रजापति संवत्सर में ही प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार यह एक दूसरे में प्रतिष्ठित हैं। जो द्वादशाह कराता है वह ऋत्विज् में प्रतिष्ठित होता है। इसीलिये ऋत्विज् लोग कहा करते हैं कि कोई पापी द्वादशाह कराने के योग्य नहीं है और न वह मुझमें प्रतिष्ठित हो सकता है।

द्वादशाह ज्येष्ठ (बड़े) के लिये हैं। जिसने द्वादशाह किया वह देवों में ज्येष्ठ हो गया।

यह द्वादशाह श्रेष्ठ (अगुआ) के लिए हैं। जिसने द्वादशाह किया वह देवों में श्रेष्ठ हो गया।

ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को ही यह यज्ञ करना चाहिये। इससे कल्याण होता है।

कहते हैं कि किसी पापी को द्वादशाह यज्ञ नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा (पापी) मुझमें प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

इन्द्र को देवों ने ज्येष्ठ और श्रेष्ठ नहीं माना। उसने बृहस्पति से कहा, "मुझे द्वादशाह यज्ञ करा दो"। उसने यज्ञ करा दिया तब से देवों ने इन्द्र को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ मान लिया। जो इस रहस्य को समझता है उसको ज्येष्ठ और श्रेष्ठ माना जाता है और उसके सम्बन्धी उसको श्रेष्ठ मान लेते हैं।

पहला त्र्यह (तीन दिन) ऊर्ध्व है (अर्थात् प्रातः सवन से साय सवन तक छन्दों के अक्षर बढ़ते जाते हैं)। बीच का अर्थात् दूसरा त्र्यह (बीच के तीन दिन) तिर्यक् हैं (अर्थात् इनमें छन्दों के घटने बढ़ने का नियम नहीं है), पिछला त्र्यह

(तीन दिन) निचला है (अर्थात् प्रातः से सायं तक छन्दों के अक्षर घटते रहते हैं) ।

पहला त्र्यह ऊर्ध्व है । इस लिये अग्नि ऊपर को जाती है । ऊपर की दिशा अग्नि की है ।

दूसरा त्र्यह तिर्यक् है इसलिये वायु तिर्यक् चलता है और पानी तिर्यक् बहता है । यह उसकी दिशा है ।

पिछला त्र्यह निचला है । इसलिए सूर्य नीचे को तपता है । मेंह नीचे को बरसता है और नक्षत्र रोशनी नीचे को फेंकते हैं, यह उसकी दिशा है ।

यह तीनों लोक मिले जुले हैं । यह तीन त्र्यह भी मिले जुले हैं । जो इस रहस्य को समझता है उसके लिये यह तीनों लोक समृद्धि प्रदान करते हैं । (३)

२६—दीक्षा देवों से चली गई । उन्होंने इसे वसन्त के दो महीनों में घेर दिया । वे उसे इन दो वसन्त के महीनों से निकाल न सके । तब उन्होंने उसे ग्रीष्म, बरसात, शरद, हेमन्त के दो दो महीनों में घेरा । वे उसको हेमन्त के दो महीनों में से न निकाल सके । तब उन्होंने उसे दो शिशिर के महीनों में घेर लिया । उन्होंने उसको इन महीनों से निकाल लिया । जो इस रहस्य को समझता है वह सब इच्छाओं की पूर्ति कर लेता है और उसका शत्रु उसको पा नहीं सकता ।

इसलिए जो क्षत्रिय दीक्षा ले, वह इन दो शिशिर के महीनों में ले । इस प्रकार उसे उस समय दीक्षा मिलती है जब दीक्षा साक्षात् होती है । और वह दीक्षा को प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण कर लेता है ।

इन शिशिर के महीनों में दीक्षा क्यों ले ? इसका कारण यह कि इन दो महीनों में गाँव के और जंगल के सभी पशु बहुत दुबले हो जाते हैं और उनकी हड्डियां निकल आती हैं

और उनका दीक्षा का सा रूप हो जाता है। (अर्थात् यजमान को दीक्षा में उपवास करके दुबला हो जाना चाहिये)।

दीक्षा से पहले वह प्रजापति के लिये पशु का आलभन करता है, इसके लिए १७ सामधेनियों का पाठ करना चाहिये। क्योंकि प्रजापति १७ भागों वाला है। यह प्रजापति तक पहुँचने के लिए है। इसके आप्रि मन्त्र जामदग्नि के मंत्र हैं।

इस पर प्रश्न उठता है कि अन्य पशुयागों में तो वही आप्रिमंत्र पढ़े जाते हैं जो उन उन यजमानों के गोत्र वाले ऋषियों के हों। फिर इस प्रजापति यज्ञ में सब लोग जमदग्नि के ही मंत्र क्यों पढ़ते हैं। इसका उत्तर यह है कि जमदग्नि के मंत्र सर्वरूप और सर्वसमृद्ध हैं। और यह पशु भी सर्वरूप और सर्व समृद्ध है। जमदग्नि के मन्त्र इस लिए पढ़े जाते हैं कि सर्वरूपता और सर्व-समृद्धता प्राप्त हो जाय।

इस पशु का पुरोडाश वायु का है। इस पर प्रश्न उठाते हैं कि जब पशु दूसरे देवता (अर्थात् प्रजापति) का है तो पुरोडाश वायु का क्यों देते हैं ?

इसका उत्तर यह है कि यज्ञ प्रजापति है। यज्ञ को बिना भूल के समाप्त करने के लिए (वायु का पुरोडाश होता है)। यद्यपि वायु का पुरोडाश है तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि यह प्रजापति का नहीं है। क्योंकि वायु ही प्रजापति है। मंत्र में ऋषि ने कहा है—

पवमानः प्रजापतिः। (ऋ० ९।५।९)

अर्थात् प्रजापति वह है जो बहता है अर्थात् वायु।

यदि (द्वादशाह) सत्र के रूप में किया जाय तो यजमानों को अपनी सब अग्नियाँ इकट्ठी कर लेनी चाहियें और उनमें यज्ञ करना चाहिये। सबको दीक्षा लेनी चाहिये और सब को

सोम बनाना चाहिये। (सूत्र में सब १६ ऋत्विज् यजमान बन कर एक दूसरे के लिए यज्ञ करते हैं)।

वसन्त में समाप्त करता है। वसन्त रस है। ऐसा करने से वह यज्ञ की समाप्ति रस से करता है। (४)

२७—छन्दों ने एक दूसरे का स्थान लेना चाहा। गायत्री ने त्रिष्टुभ् और जगती का स्थान लेना चाहा। त्रिष्टुभ् ने गायत्री और जगती का। और जगती ने गायत्री और त्रिष्टुभ् का। प्रजापति ने देखा कि यह द्वादशाह व्यूल्हच्छंदस (तितर बितर) हो गया। उसने इसे लिया और इससे यज्ञ किया। इस प्रकार छन्दों की कामनायें पूरी हुई। जो इस रहस्य को समझता है उसकी कामनायें पूरी हो जाती हैं।

छन्दों को उनकी जगह से हटाता है जिससे यज्ञ में कोई त्रुटि न हो। जैसे कोई दूर की यात्रा करने में मंजिल मंजिल पर नये घोड़ों या बैलों को जोतता है जो थके न हों, उसी प्रकार स्वर्ग की यात्रा करने के लिये यह ताजा ताजा छन्दों का प्रयोग करता है जो थक न गये हों। छन्दों की जगह बदलने का यही प्रयोजन है।

यह दोनों लोक पहले मिले थे। फिर अलग हो गये। इससे न वर्षा हुई, न सूरज तपा। पंचजन मेल से न रहे। देवों ने इन लोकों को मिला दिया, इन दोनों ने देवरीति से एक दूसरे के साथ विवाह कर लिया। रथंतर से पृथ्वी स्वर्ग से जुड़ी है और बृहत्-साम से स्वर्ग पृथ्वी से। नौधस साम के द्वारा पृथ्वी स्वर्ग से जुड़ी है। और श्यैत साम द्वारा स्वर्ग पृथ्वी से। धुयें के द्वारा पृथ्वी स्वर्ग से जुड़ी है और वर्षा के द्वारा स्वर्ग पृथ्वी से जुड़ा है।

पृथ्वी ने स्वर्ग में देवयजन अर्थात् देवों के यज्ञ के लिये स्थान बनाया और स्वर्ग ने पृथ्वी में पशु बनाये।

यह जो पृथ्वी ने स्वर्ग में देवयजन बनाया यह चन्द्रमा का काला दाग़ है। इसलिये शुक्ल पक्षों में यज्ञ करते हैं जिससे चन्द्रमा का काला दाग़ प्राप्त हो जाय।

स्वर्ग ने पृथ्वी में चरने के लिये ऊषा (चरागाह) बनाई। तुरः काविषेय ने कहा "हे जनमेजय, पोष क्या और ऊषा क्या?" इसीलिए गव्य अर्थात् गाय के दूध आदि की चिन्ता करने वाले पूछा करते हैं "क्या वहां ऊषा अर्थात् चरने के लिये स्थान है?" क्योंकि ऊषा ही चारा है।

वह लोक इस लोक की ओर झुक गया। इससे द्यौ और पृथिवी हो गये। न अन्तरिक्ष से द्यौ हुआ, न अन्तरिक्ष से पृथ्वी। (५)

२८—पहले बृहत् और रथंतर थे। उनसे वाणी और मन हुये। रथंतर वाणी है और बृहत् मन। बृहत् पहले हुआ इस लिये उसने रथंतर को कम समझा। रथंतर ने अपने में गर्भ धारण किया और वैरूप उत्पन्न किया। रथंतर और वैरूप मिल गये और बृहत् को कम समझने लगे। बृहत् ने अपने में गर्भ धारण किया और उससे वैराज पैदा हुआ। यह दोनों बृहत् और वैराज मिल गये और रथंतर और वैरूप को कम समझने लगे। रथन्तर ने तब अपने में गर्भ स्थापित किया और शक्कर का जन्म हुआ। इन तीनों अर्थात् रथंतर, वैरूप और शक्कर ने बृहत् और वैराज को कम समझा। बृहत् ने तब अपने में गर्भ स्थापित किया और रैवत का जन्म हुआ। हर पक्ष के तीन तीन साम छः पृष्ठ हो गये (अर्थात् रथंतर, वैरूप, शक्कर एक ओर और बृहत्, वैराज और रैवत दूसरी ओर)।

इस पर तीनों छन्द (गायत्री, त्रिष्टुभ् और जगती) इन छः पृष्ठों को न पा सके। गायत्री ने गर्भ धारण किया और

अनुष्टुभ् उत्पन्न हुआ। त्रिष्टुभ् ने गर्भ धारण किया और पंक्ति हुई। जगती ने गर्भ धारण किया और अतिच्छन्दस् हुआ। यह तीन छन्द जब छः हो गये तो वे ६ पृष्ठों को पा सके।

जो इन छन्दों और पृष्ठों की उत्पत्ति के रहस्य को समझ कर इस अवसर पर दीक्षा लेता है उसके लिये और उसके प्रिय जनों के (जनता के) लिये यज्ञ कल्याणकारी होता है। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पाँचवाँ अध्याय

२९—पहले दिन का देवता अग्नि है। स्तोम त्रिवृत् है, साम रथंतर है और छन्द गायत्री है। जो समझता है कि देवता कौन है वह सफल हो जाता है।

'आ' और 'प्र' पहले दिन के रूप (विशेषतायें) हैं। प्रथम दिन की विशेषतायें यह भी हैं :—

'युक्त', 'रथ', 'आशु', 'पिब' यह शब्द अवश्य आयेंगे। मन्त्रों के पहले पाद में देवताओं का स्पष्ट नाम होगा। इस लोक अर्थात् पृथ्वी के विषय में कुछ होगा। रथंतर के समान साम होंगे। गायत्री के लगभग छन्द होगा। और 'कृ' धातु का भविष्यकाल का कोई रूप होगा।

पहले दिन का आज्य सूक्त यह है :—

उपप्रयन्तो अध्वरं (ऋ० १।७४।१)

क्योंकि इस में 'प्र' आया है। 'प्र' पहले दिन का रूप (विशेषता) है।

प्रउग शस्त्र है "वायवायाहि दर्शत" (ऋ० १।२।१-३)

क्योंकि इसमें 'आ' आया है। 'आ' पहले दिन का रूप है।

मरुत्वती शस्त्र का प्रतिपद् या पहला भाग यह है :

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि। तुवि कूर्मिमृतीष हमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥

तुवि शुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते। आ पप्राथ महित्वना ॥

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः। हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥

(ऋ० ८।६८।१-३)

इसका अनुचर या पिछला भाग यह है : –

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन् ररिमा ते ॥

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु ॥

तं ते यव यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ (ऋ० ८।२।१-३)

इनमें 'रथ' और 'पिब' आये हैं। यह पहले दिन का रूप है।

इन्द्र-निहव प्रगाथ यह है :—

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः। आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्। प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ (ऋ० ८।५३।५, ६)

इसके पहले पद में देवता का वर्णन है। यह पहले दिन का रूप है।

ब्राह्मणस्पत्य प्रगाथ यह है :—

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः। तस्मा इडां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ (ऋ० १—४०।३-४)

इसमें 'प्र' आया है। यह पहले दिन का रूप है।

यह धाय्य यह हैः—

अग्निर्नेता, त्वं सोमक्रतुभिः, पिन्वंत्यपः ॥ (ऐतरेय ब्राह्मण ३।१८)

इनके पहले पाद में देवतों का नाम आया है। यह पहले दिन का रूप है।

मरुत्वतीय प्रगाथ यह है:—

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्। अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ (ऋ० ८।८९।३-४)

इसमें 'प्र' आया है। यह पहले दिन का रूप है।

निविद सूक्त यह है:—

आ यात्विन्द्रो वस उप न इह·········इत्यादि। (ऋ० ४।२१)

इसमें 'आ' है, यह पहले दिन का रूप है।

रथंतर पृष्ठ यह है :—

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ (ऋ० ७।३२।२२-२३)

अभित्वा पूर्वपीतय इन्द्रस्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ (ऋ० ८।३।७-८)

यह रथंतर पृष्ठ है, यह पहले दिन का रूप है।

धाय्य यह है :—

"यद् वावानपुरुतमं पुराषाड्"। (ऐतरेय ब्रा० ३।२२)

इसमें 'आ' आया है। यह पहले दिन का रूप है।

साम प्रगाथ यह है :—

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये। अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ (ऋ० ८।३।१-२)

इसमें 'पिब' शब्द आया है। यह पहले दिन का रूप है।

तार्क्ष्य यह है :—

त्यमूषु वाजिनं देवजूतम्।

यह निविद सूक्त के पहले पढ़ा जाता है।

तार्क्ष्य कल्याण के लिये है। जो इस रहस्य को समझता है, उसका मार्ग कल्याणयुक्त हो जाता है और अपने साल को कल्याण से व्यतीत करता है। (१)

३०—(निष्केवल्य शस्त्र का निविद) सूक्त यह है:—

आ न इन्द्रो दूरादान आसात्। इत्यादि (ऋ० ४।२०)

इसमें 'आ' आया है। यह पहले दिन का रूप है।

निष्केवल्य और मरुत्वतीय शस्त्रों के निविद संपात कहलाते हैं। वामदेव ने इन तीनों लोकों को देखकर इन्हीं संपातों द्वारा उनको प्राप्त किया। ('संपतत्'=प्राप्त हुआ, से संपात बन गया)। इसीलिए इनका नाम संपात हो गया।

पहले दिन संपात इसलिए पढ़े जाते हैं कि स्वर्गलोक तक पहुँच जायँ। उसे प्राप्त कर लें और वहां की संगति का लाभ हो।

पहले दिन अर्थात् रथंतर दिन के वैश्वदेव शस्त्र का 'प्रतिपद' अर्थात् शुरू यह है:—

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम्। न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः। तं भागं चित्रमीमहे ॥

(ऋ० ५।८२।१-३)

इसका 'अनुचर' (पिछला भाग) यह है :—

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥

अनागसो अदितये देवस्यसवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥

(ऋ० ५।८२।४-६)

यह रथंतर दिन का है। यही पहले दिन का रूप है।

सविता का निविद् सूक्त है "युंजते मन उत" (ऋ० ५।८१) इसमें 'युज' शब्द पड़ा है। यह पहले दिन का रूप है।

द्यावा पृथिवी का निविद् सूक्त "प्र द्यावा यज्ञैः" (ऋ० १।१५९) है। इसमें 'प्र' शब्द आया है। यह पहले दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद् सूक्त "इहे ह वो मनसा" (ऋ० ३।६०) है। अगर इनमें 'प्र' और 'आ' होता तो 'प्रा' हो जाता। जिसका अर्थ है 'जाना'। और यजमान इस संसार से चल बसता। इसलिए 'इहे ह वो मनसा' सूक्त पढ़ते हैं। इसमें पहले दिन का रूप नहीं आता। (इस सूक्त में) 'इह' का अर्थ है 'यह लोक'। इस प्रकार यजमान इस लोक को भोगता है।

वैश्वदेव का निविद् सूक्त है :—

देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति (ऋ० १०।६६)

इसके पहले पद में 'देवतों' का वर्णन है। यह पहले दिन का रूप है।

जो लोग संवत्सर या द्वादशाह को करते हैं वे बड़ी लम्बी लम्बी यात्रा पर जाते हैं। इस लिये वैश्वदेवों का जो ऊपर दिया हुआ निविद् सूक्त (देवान् हुवे···) पढ़ा जाता है यह यात्रा के लिए। जो इस रहस्य को समझता है उसका कल्याण होता है और वह अपने साल को अच्छी तरह पार कर लेता है। और जो लोग इस रहस्य को समझ कर होता से इस वैश्वदेव निविद को पढ़ाते हैं उनका भी कल्याण होता है।

अग्नि-मारुत शस्त्र का प्रतिपद यह है :—

वैश्वानराय पृथु पाजसे विप इति (ऋ० ३।३)

इसके पहले पद में देवता का उल्लेख है। यह पहले दिन का रूप है।

मरुतों का निविद यह है :—

"प्रत्वक्षसः प्रतवसोविरप्शिन" इति (ऋ० १।८७)

इसमें 'प्र' आया है। यह पहले दिन का रूप है।

जातवेद सूक्त के पहले यह मंत्र पढ़ना है :—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः। (ऋ० १।९९।१)

यह जातवेद मंत्र कल्याण मार्ग के कल्याण के लिये पढ़ा जाता है। इससे यजमान को कल्याण मिलता है। जो इस रहस्य को समझता है उसका साल कल्याण पूर्वक व्यतीत हो जाता है।

जातवेद का निविद सूक्त है :—

प्रतव्यसीं नव्यसीं···इति (ऋ० १।१४३)

इसमें 'प्र' आया है। यह पहले दिन का रूप है।

द्वादशाह के पहले दिन का अग्निमारुत शस्त्र वही है जो अग्निष्टोम का।

जो यज्ञ में समान किया जाता है उसी पर प्रजा जीती है इस लिए अग्निमारुत शस्त्र वही होता है। (२)

३१—दूसरे दिन का देवता इन्द्र है। पंचदश स्तोम है। बृहत् साम है और त्रिष्टुभ् छन्द है। जो यह जानता है कि कौन सा देवता है, कौन सा स्तोम है, कौन सा साम है और कौन सा छन्द है, वह सफल हो जाता है।

दूसरे दिन 'प्र' और 'आ' नहीं आते। दूसरे दिन का रूप है 'स्थ'।

ऊर्ध्व, प्रति, अंतः, वृषण्, वृधन् यह शब्द तथा दूसरे पदों में देवतों का स्पष्ट उल्लेख, अन्तरिक्ष की ओर संकेत, बृहत् साम और त्रिष्टुभ् छन्द और वर्तमानकाल। यह दूसरे दिन के रूप अर्थात् विशेषतायें हैं।

दूसरे दिन का आज्य सूक्त यह है :—

अग्निं दूतं वृणीमहे......(ऋ० १।१२)

इसमें 'वृणीमहे' यह वर्तमानकाल आया है। यह दूसरे दिन का रूप है।

प्रउग शस्त्र यह है :—

वायो ये ते सहस्रिणः (ऋ० २।४१)

इसमें 'अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोमऋतावृधा' (२।४१।४) में 'वृधन्' शब्द आ गया। यह दूसरे दिन का रूप है।

मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद यह है :—

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः। एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम्॥

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः। नाना हवन्त ऊतये॥

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम्। ईशानं चिद् वसूनाम्॥

(ऋ० ८।६८।४-६)

इसका अनुचर यह है :—

इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः। अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च।

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम्। अपस्पृण्वते सुहार्दम्॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते। अभित्सरन्ति धेनुभिः॥

(ऋ० ८।२।४-६)

इनमें 'वृधन्' और 'अन्तः' शब्द आये हैं। यह दूसरे दिन का रूप है।

इन्द्र-निहव प्रगाथ वही रहता है "इन्द्र नेदीय एदिहि"। (ऋ० ८।५३।५-६)

ब्रह्मणस्पति का प्रगाथ यह है "उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते"। इसमें "उत्तिष्ठ" (उत्) शब्द ऊर्ध्व के अर्थ में है। यह दूसरे दिन का रूप है।

धाय्य वही हैं :—

अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वंत्यपः। (ऐतरेय ब्रा० ३।१८)

मरुत्वतीय प्रगाथ यह है :—

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाऽथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद् भानो मरुद्गण ॥ (ऋ० ८।८९।१-२)

इसमें 'ऋतावृधः' शब्द में 'वृधन्' शब्द आ गया। यही दूसरे दिन का रूप है।

मरुत्वतीय शस्त्र का निविद सूक्त यह है :—

इन्द्र सोमं सोमपते.........(ऋ० ३।३२)

इसमें 'आवृषस्व' में वृषन् शब्द आया है। [गवाशिरं...... तृपदा वृषस्वा ३।३२।२] यह दूसरे दिन का रूप है।

बृहत् पृष्ठ यह है :—

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठा स्वर्वतः ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः। गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ (ऋ० ६।४६।१-२)

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये। उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे। आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ (ऋ० ८।६१।७-८)

यह बार्हत दिन का होता है। यह दूसरे दिन का रूप है।

निष्केवल्य शस्त्र की धाय्या वही है—

"यद् वावान" ।

साम प्रगाथ है :—

उभयं शृणवच्च व इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः । उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ (ऋ० ८।६१।१-२)

उभय का अर्थ है जो आज है और जो कल था। यह बृहत् साम का है। यह दूसरे दिन का रूप है।

तार्क्ष्य वही है:—

"त्यमूषु वाजिनं देवजूतम् ॥" (३)

३२—निष्केवल्य शस्त्र का निविद है :—

या त ऊतिरवमा या परमा···(ऋ० ६।२५) इसमें "वृष्ण्यानि" ···शब्द आया है। 'वृषन्' दूसरे दिन का रूप है।

वैश्वदेवशस्त्र का प्रतिपद् यह है :—

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ (ऋ० ५।५०।१)

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥

(ऋ० ३।६२।१०-११)

इसके अनुचर यह हैं :—

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥

(ऋ० ५।८२।७-९)

यह बृहत् दिन या दूसरे दिन के हैं। दूसरा दिन का यही रूप है।

सविता का निविद सूक्त यह है :—

उदुष्य देवः सविता हिरण्यया········· (ऋ० ६।७१)

इसमें उत् शब्द ऊर्ध्व का सार्थक है। यह दूसरे दिन का रूप है।

द्यावापृथिवी का निविद सूक्त यह है :—

"ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशंभुव" (ऋ० १।१६०)

इसमें 'अन्तः' शब्द आया है। यह दूसरे दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद सूक्त यह है :—

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस······ (ऋ० १।१११)

इस सूक्त में :—

"तक्षन् हरी इंद्रवाहा वृषण्वसू···" इस मंत्र में 'वृषन्' शब्द आया है। यह दूसरे दिन का रूप है।

वैश्वदेव निविद सूक्त यह है :—

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्······। (ऋ० १०।६२)

इस सूक्त के "वृषा केतुर्यजतोद्यामशायत" में वृषन् शब्द आया है। यह दूसरे दिन का रूप है।

इस सूक्त का ऋषि शार्यात है। जब अंगिरा लोग स्वर्गलोक में जाने के लिये सत्र कर रहे थे तब षडह के दूसरे दिन का कृत्य करने में भूल चूक कर जाते थे। मनु के पुत्र शार्यात ने 'यज्ञस्य रथं' वाला सूक्त दूसरे दिन पढ़वाया। इससे वह यज्ञ को जान गये और स्वर्गलोक को पहुँच गये। दूसरे दिन होता इस सूक्त को इसलिये पढ़ता है कि यज्ञ का ज्ञान हो जाय और स्वर्गलोक प्राप्त हो जाय।

अग्नि-मारुत शस्त्र का प्रतिपद् यह है :—

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः······(ऋ० ६।८)

इसमें वृषन् शब्द आया है। यह दूसरे दिन का रूप है।

अग्नि मारुत शस्त्र में मरुतों का निविद सूक्त यह है :—

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे······(ऋ० १।६४)

इसमें वृषन् शब्द आया है। यह दूसरे दिन का रूप है।

जातवेद मंत्र वही है :—

जातवेद मे सुनवाम सोमम्।

जातवेद का निविद सूक्त यह है :—

यज्ञेन वर्धत जातवेदसम्……(ऋ० २।२)

इसमें 'वृध' है जो दूसरे दिन का रूप है। (४)

ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पञ्चिका समाप्त हुई।

पाँचवीं पत्रिका

पहला अध्याय

१—(द्वादशाह) के तीसरे दिन का देवता है विश्वेदेवा। स्तोम है सत्रहवां। साम है वैरूप। छन्द जगती। जो यह जानता है कि देवता कौन है, स्तोम कौन है, साम कौन है और छन्द कौन है उसका यज्ञ सफल हो जाता है।

तृतीय दिन का रूप है "समानोदर्क"*। इसके अन्य रूप यह हैं:—अश्व, अंत, पुनरावृत्ति, पुनर्निनृति (अर्थात् अन्त के स्वरों में समानता), रति या रमण करना, पर्यस्ति (ढकना), तीन की संख्या, 'अन्त' का रूप, पिछले पद में देवता का उल्लेख, दूसरे लोक की ओर संकेत, वैरूप साम, जगती छन्द और भूत काल की क्रिया।

तीसरे दिन का आज्य शस्त्र यह है:—

युक्ष्वा हि देव हूतमाँऽअश्वाँऽअग्नेरथीरिव···(ऋ० ८।७५)

तीसरे दिन के कृत्य के द्वारा देव स्वर्ग लोक की ओर चल पड़े। असुर राक्षसों ने रोका। उन्होंने असुरों से कहा, "विरूप

---

*उदर्क का अर्थ है समाप्ति। 'समानोदर्क' का अर्थ है समान समाप्ति वाला। अर्थात् समान वाक्य पर समाप्त होने वाले सूक्त।

अर्थात् कुरूप हो जाओ । कुरूप हो जाओ ।" जब असुर कुरूप होने लगे, देव स्वर्ग को चले गये ।

इससे वैरूप साम उत्पन्न हुआ । इसीलिये इसको वैरूप (कुरूप) कहते हैं । जो पाप के कारण कुरूप हो गया हो, वह इस रहस्य को समझकर पाप से छूट जाता है ।

असुरों ने देवों को फिर सताया । देवों ने घोड़ा बनकर अपनी टापों से उनको मार दिया । इसीलिये घोड़ों का नाम है अश्व, जो इस रहस्य को समझता हैं वह समृद्धि को पाता है (अश्नुते) ।

घोड़ों ने पिछली टांगों से मारा इस लिये घोड़े सब पशुओं में तेज होते हैं । जो इस रहस्य को समझता है उसका पाप छूट जाता है । इसीलिये तीसरे दिन के आज्यशस्त्र में 'अश्व' शब्द आता है । यह तीसरे दिन का रूप है ।

प्र-उग शस्त्र में नीचे के तीन तीन मंत्र हैं :—

(१) वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभिप्रयः ॥
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभिप्रयः । (ऋ० ५।५१।५-७)

(२) वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् । वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥
त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे । ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥
स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः । कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ (ऋ० ८।२६।२४-२५)

(३) इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ।
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ (ऋ० ५।५१।८-८)

(४) आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोम पीतये ॥
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोम पीतये ॥
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोम पीतये ॥ (ऋ० ५।७२।१-३)

(५) अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । तिरश्चिदर्यया परि-वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥
अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती । अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥
अभूदुषा रुशत् पशुराग्निरधाय्यृत्वियः । अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ (ऋ० ५।७५।७-६)

(६) आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्र-हन्तम ॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्र-हन्तम ॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्र-हन्तम ॥ (ऋ० ५।४०। १-३)

(७) सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥
अब्जामुक्थैरहिं गृणीषेबुध्ने नदीनां रजः सु षीदन् ॥
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥
(ऋ० ७।३४।१५-१७)

(८) उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ।
आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ।

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती । वाजे वाजे हव्या भूत् ॥
(ऋ० ६।६१।१०-१२)

यह सब उष्णिक् छन्द में हैं और इनमें समानोदर्क है। यह तीसरे दिन का रूप है।

मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद यह है :—

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये। यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥ (ऋ० ८।६८।७)

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः। नकिः शवांसि ते नशत् ॥
(ऋ० ८।६८।८)

त्वोतासस्त्वा युजाऽप्सु सूर्ये महद्धनम्। जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥
(ऋ० ८।६८।९)

इसका अनुचर यह है :—

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य। स्वे क्षये सुतपाव्न ॥

त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः। समाने अधिमार्मन् ॥

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः। दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ (ऋ० ८।२।७-९)

इनमें 'नृतुः' और 'त्रयः' यह शब्द आये हैं। यह तीसरे दिन का रूप है।

इन्द्र-निहिव प्रगाथ वही है—इन्द्रनेदीय...(ऋ० ८।५३।५-७)

ब्रह्मणस्पति प्रगाथ यह है :—

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्। यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्। इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ॥ (ऋ० १।४०।५-६)

इसमें [illegible] समा[illegible]।

धाय्या वही है :—

अग्निर्नेता (ऋ० ३।२० [illegible]

त्वं सोम क्रतुभिः (१।९१।२)
पिन्वन्त्यपो (ऋ० १।६४।६)

मरुत्वतीय प्रगाथ यह है :—

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्। इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥ (ऋ० ७।३२।१०)

इसमें 'पर्यस्त' है, यह तीसरे दिन का रूप है।

मरुत्वतीय शस्त्र का निविद् सूक्त यह है :—

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता (ऋ० ५।२९)

इसमें 'त्रि' शब्द है। यह तीसरे दिन का रूप है।

तीसरे दिन के वैरूप पृष्ठ यह हैं :—

यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जात मष्ट रोदसी ॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा। अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ् चित्राभिरूतिभिः ॥ (ऋ० ८।७०।५-६)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥

शिक्षेयमिन् महयते दिवे दिवे राय आ कुहचिद्विदे। नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ (ऋ० ७।३२।१८-१९)

यह रथन्तर दिन है। यह तीसरे दिन का रूप है।

धाय्य वही हैं:—यद्वावान इत्यादि। "अभित्वा शूर नोनुम" (ऋ० ७।३२।२२-२३) पढ़कर इस दिन की योनि को फेर देता है। क्योंकि यह दिन क्रम के अनुसार रथन्तर दिन है। और रथंतर साम इसकी योनि है।

साम प्रगाथ यह है :—

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभि प्रघ्नन्ति धृष्णुया । अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ (ऋ० ६।४६ ९-१०)

इसमें त्रि शब्द आया है । यह तीसरे दिन का रूप है ।

तार्क्ष्य वही है अर्थात् त्यमूषु वाजिनं... (ऋ० १०।१७८) (१)

२—निविद् यह है :—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् (ऋ० २।१२)

इसमें समानोदर्क है (अर्थात् इसके अन्त में 'सजनास इन्द्र आता है) । समानोदर्कता तीसरे दिन का रूप है ।

इसमें 'स जन' और 'इन्द्र' शब्द आये हैं । इसके पढ़ने से इन्द्र को इन्द्रिय शक्ति प्राप्त होती है । इसलिये साम गाने वाले लोग कहते हैं कि ऋग्वेदी इन्द्र की इन्द्रिय की प्रशंसा करते हैं ।

इसका ऋषि गृत्समद है । इस सूक्त से गृत्समद ने इन्द्र के प्रिय धाम को पाया । उसने परम लोक जीत लिया । जो इस रहस्य को समझता है वह इन्द्र के परम धाम को पाता है और परम लोक को जीत लेता है ।

वैश्वदेव के प्रतिपद और अनुचर यह हैं :—

तत्सवितुर्वृणीमहे इत्यादि (ऋ० ५।८२।१-३)

और

अद्या नो देव सवितः (ऋ०५।८२।४-५)

यह रथंतर दिन है और यह तीसरे दिन का रूप है ।

सविता का निविद सूक्त यह है :—

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महत्...(ऋ० ४।५३)

इसमें 'महत्' शब्द आया है । अन्त बड़ा है । तृतीय दिन अन्त है । इसलिये यह तीसरे दिन का रूप है ।

द्यावा पृथिवी का निविद सूक्त है :—

"घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा" ।

(ऋ० ६।७०।४)

इसमें तीन शब्द आये हैं "घृत श्रिया", "घृतपृचा", "घृतावृधे।" यहाँ 'घृत' शब्द की पुनरावृत्ति है, और (अन्त में तीन बार 'आ' आया है) इससे 'निनृत' भी है। यह पुनरावृत्ति और निनृति तीसरे दिन के रूप हैं।

ऋभुओं का निविद् सूक्त यह है :—

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्य यो ३ रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः ।"

(ऋ० ४।३६)

इसमें "रथस्त्रिचक्र" में 'त्रि' शब्द आ गया। यह तीसरे दिन का रूप है।

वैश्वदेव का निविद् सूक्त यह है :—

परावतो ये दिधिषंत आप्यम्। (ऋ० १०।६३)

'परावत' में 'अन्त' है। तीसरा दिन अन्त है। तीसरे दिन का रूप है।

यह 'गय' सूक्त है। इससे 'प्लत' के पुत्र 'गय' ने देवों के प्रियधाम को पाया और परम लोक को जीता। जो इस रहस्य को समझता है वह देवों के प्रियधाम को पाता है और परम लोक को प्राप्त होता है।

अग्नि-मारुत शस्त्र का प्रतिपद (आरम्भ) यह है :—

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे (ऋ० ३।२)

धिषणा में 'अन्त' है। तीसरा दिन (त्र्यह) अन्त होता है। यह तीसरे दिन का रूप है।

मरुतों का निविद् सूक्त यह है :—

धारावरामरुतो धृष्णवोजसो (ऋ० २।३४)

इसमें बहुवचन है। बहुवचन अन्त है। तीसरा दिन अन्त है। यह तीसरे दिन का रूप है।

जातवेद मंत्र यही है :—

जातवेदसे सुनवाम (ऋ० १।९९।१)

जातवेद का निविद् सूक्त यह है :—

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा (ऋ० १।३१)

यहाँ हर मंत्र के पहले 'त्वमग्ने' आता है। यह उदर्क है। यह तीसरे दिन का रूप है।

'त्वं त्वं' बार बार कहने से अगले तीन दिनों (चौथा, पाँचवाँ, छठा) से तात्पर्य है।

जो इस रहस्य को समझ कर यह पाठ करते हैं उनके त्र्यह बिना किसी विघ्न के निरन्तर समाप्त हो जाते हैं। (२)

३—तीसरे दिन सब स्तोम खतम हो जाते हैं और सब छन्द। केवल एक चीज बच रहती है अर्थात् 'वाक्'।

वाक् एक अक्षर है। इसमें तीन अक्षर सम्मिलित हैं। एक अक्षर में तीन अक्षर हैं। अगले त्र्यह में तीन दिन होते हैं। यह तीन अक्षर तीन के अगले दिनों को बताते हैं। यह अक्षर तीन यह हैं एक वाक्, एक गौ, एक द्यौ। इसलिये चौथे दिन का देवता 'वाग्' ही है।

चौथे दिन इसी अक्षर का न्यूंख बनाते हैं। इसके स्वर को कुछ घटा बढ़ा कर। यह चौथे दिन को उठाने के लिये। न्यूंख अन्न है। अन्न के लिये गायक लोक इधर-उधर फिरते हैं और अन्न उत्पन्न होता है।

चौथे दिन न्यूंख करके अन्न उत्पन्न करते हैं। क्योंकि यह कृत्य अन्न के लिये ही किया जाता है। इसलिये चौथा दिन जातवद् (उपजाऊ-fertile) होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि चार अक्षर का न्यूंख करना चाहिये क्योंकि पशुओं के चार पैर होते हैं और यह सब पशुओं की वृद्धि के लिये किया जाता है।

कुछ कहते हैं कि तीन अक्षरों से न्यूंख करना चाहिये। तीन लोक हैं और यह तीन लोकों की प्राप्ति के लिये किया जाता है।

कुछ कहते हैं कि एक अक्षर का ही न्यूंख करे। मुद्गल के पुत्र लांगलायन ब्राह्मण ने कहा कि वाग् में एक ही अक्षर है इस लिये जो एक अक्षर से न्यूंख करता है वही ठीक करता है।

कुछ कहते हैं कि दो अक्षरों से न्यूंख करे, प्रतिष्ठा के लिये। मनुष्य के दो पैर हैं और पशु के चार। इस प्रकार वह मनुष्यों को पशुओं में प्रतिष्ठित करता है। इस लिये दो अक्षरों से न्यूंख करे। पहले प्रातरनुवाक में न्यूख होता है। क्योंकि पशु पहले मुँह से खाते हैं। इस प्रकार वह यजमान के मुँह को अन्न की ओर फेर देता है।

आज्य शस्त्र में न्यूंख मध्य में किया जाता है। प्रजा अन्न को बीच में लेती है। बीच में अन्न को यजमान में धारण कराता है। दोपहर के सवन में न्यूंख आरंभ में किया जाता है क्योंकि पशु मुँह से खाना खाते हैं। इस प्रकार वह यजमान के मुँह को अन्न की ओर कर देता है। इस प्रकार दोनों सवनों में अन्न की प्राप्ति के लिये न्यूंख* करता है। (३)

४—चौथे दिन का देवता वाग् है। स्तोम इक्कीसवां है। वैराज साम है। अनुष्टुप् छन्द है। जो यह जानता है कि देवता कौन है, स्तोम कौन है, साम कौन है और छन्द कौन है उसका यज्ञ सफल होता है'। 'आ' और 'प्र' चौथे दिन के रूप हैं। जो-जो पहले दिन के रूप हैं वही चौथे दिन के, जैसे—युक्त, रथ, आशु और पिब। पहले पद में देवता का स्पष्ट निर्देश है, और

*न्यूंख की विधि आश्वलायन श्रौतसूत्र (७।११) में लिखी है।

इस लोक का उल्लेख। चौथे दिन के अन्य रूप यह हैं :—जात, हव, शुक्र, वाक् का रूप, विमद, विरिफित विच्छंद (अर्थात् भिन्न-भिन्न छन्द), जिसमें अक्षर कम या अधिक हों ; वैराज्य और अनुष्टुभ्, और भविष्यकाल की क्रिया।

चौथे दिन का आज्य सूक्त यह है :—

अग्निं न स्ववृक्तिभिः (ऋ० १०।२१)

इसका ऋषि 'विमद' है और सूक्त के हर मंत्र में 'वि वो मदे' आता है। यह चौथे दिन का रूप है। इसमें आठ ऋचा हैं और पंक्ति छन्द है। यज्ञ पांच हिस्से वाला है। पशु भी पांच हिस्से वाले हैं, यह पशुओं की प्राप्ति के लिये किया जाता है।

इन आठ मंत्रों के दस जगती होते हैं, क्योंकि मध्य के त्र्यह (चौथा, पांचवां और छठा दिन) का प्रातः सवन जगती में होता है। यह चौथे दिन का रूप है।

इन आठ मंत्रों के १५ अनुष्टुभ् होते हैं, यह दिन अनुष्टुभ् का है। और अनुष्टुभ् चौथे दिन का रूप है।

इन ८ मंत्रों में २० गायत्री होते हैं। क्योंकि यह फिर आरंभ का दिन है, यह चौथे दिन का रूप है।

इसके साथ न तो स्तुति हैं, न प्रशस्ति। तथापि यह साक्षात् यज्ञ है इस लिये यह चौथे दिन का आज्य होता है।

इस प्रकार वह यज्ञ से यज्ञ को तानते हैं और वाग् को प्राप्त करते हैं। यह काम संतति के लिये किया जाता है। जो इस रहस्य को समझ कर यज्ञ करते हैं वह त्र्यह में निर्विघ्न संतति (सिलसिले) को प्राप्त होते हैं।

अनुष्टुभ् प्रउग यह हैं :—

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु। आ याहि सोम पीतये स्पार्हो देव नियुत्वता। (ऋ० ४।४७।१)

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः । वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये । (ऋ० ४।४८।१)

वायो शत हरीणां युवस्व पोष्याणाम् । उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा । (ऋ० ४।४८।५)

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः । युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती । नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ (ऋ० ४।४७।२-५)

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा । वरुणाय ऋत पेशसे दधीत प्रयसे महे ॥

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते । अध व्रतेव मानुषं स्वर्णधायि दर्शतम् ॥

तां वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ॥ (ऋ० ५।६६।१-३)

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि । वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्राऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीवात्यो न वाजयन्नधायि । इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम । इषं पिन्व मघवद्भयः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

(ऋ० ७।२४।४-६)

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् । इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥

यं वर्धयन्तीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः । तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥

तद्ध उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि। विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ (६।४४।४-६)

अप त्वं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्। दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः। जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः। कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ (ऋ० ६।५१।१३-१५)

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्। शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति। या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ (ऋ० २।४१।१६-१८)

इनमें 'आ', 'प्र' और 'शुक्र' आया है। यह चौथे दिन का रूप है।

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम। इन्द्र यथा चिद्राविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ (८।६८।१०)

यह मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद है। 'ईमहे' से तात्पर्य है कि आज का कृत्य लम्बा हो जाय। यह चौथे दिन का रूप है।

नीचे दिये हुये मंत्र जो पहले दिन पढ़े जाते हैं चौथे दिन भी काम आते हैं :—

इदं वसो सुतमन्धः (ऋ० ८।२।-१२)
इन्द्र नेदीय (ऋ० ८।५३।५-७)
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः (ऋ० १।४०।३)
अग्निर्नेता (ऋ० ३।२०।४)
त्वं सोमक्रतुभिः (ऋ० १।९१।२)

पिन्वन्त्यपो (ऋ० १।६४।६)

प्रव इन्द्राय बृहते (ऋ० ८।८९।३)

यह चौथे दिन का रूप हैं।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्। इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥ (ऋ० २।११।१)

इसमें 'हव' शब्द आया है। यह चौथे दिन का रूप है।

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो......(ऋ० ३।४७) सूक्त में ५ वें मंत्र के अन्तिम पद में 'हुवेम' में 'हुव' शब्द आया है। यह चौथे दिन का रूप है। यह त्रिष्टुभ् छन्द में है।

इस मंत्र के प्रतिष्ठित पदों के द्वारा सवन को कायम रखता है कि यह कहीं गिर न पड़े।

इमं नु मायिनं हुव (ऋ० ८।७६।१) इस मंत्र में 'हुव' आया है। यह चौथे दिन का रूप है।

इनका छन्द गायत्री है। इस त्र्यह के मध्यं सवन का गायत्री ही वाहक है। जिस छन्द में निविद होता है वही छन्द वाहक समझा जाता है। इस लिये निविद गायत्री छन्द में होता है।

नीचे के मंत्र बृहत् दिनों के वैराज पृष्ठ हैं।

पिबासोम......(७।२२।१-२)

श्रुधी हवं......(७।२२।४-५)

चौथा दिन बृहत् दिन है। यह चौथे दिन का रूप है।

धाय्या वही है—यद् वावान......

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्ववर्वतः॥ (ऋ० ६।४६।१)

यह बृहत की योनि है, इसकी ओर लौटाता है। क्रम के अनुसार बृहत् साम दिन है।

साम प्रगाथ वही है :—

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु (८।९९।५)

इसमें "अशस्तिहा जनिता" आया है। इसमें 'जात' आया है। यह चौथे दिन का रूप है।

तार्च्य वही है :—त्वमुषु वाजिनं देवजूतम्। (ऋ० १०।२२ (४)

५—विमद विरिफित वाला नीचे का सूक्त है :—

कुह श्रुत इंद्रः कस्मिन्नद्य......(ऋ० १० । २२)

इसमें ऋषि का नाम भी है और विरिफित भी है। यह चौथे दिन का रूप है।

"युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज" (ऋ० ३।४६)

इस सूक्त मे 'जनुषा' शब्द 'जा' धातु का आया है :—उरु गभीर जनुषाभ्युग्रं (३।४६।४)। यह चौथे दिन का रूप है। छन्द त्रिष्टुभ् है। इसके द्वारा सवन को कायम रखता है कि कहीं गिर न पड़े।

त्यमु वह सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। (ऋ० ८।९२।७)

यह पर्याप्त है। 'विश्वासु', 'गीर्षु', 'आयतं' से मालूम होता है कि दिन का कृत्य बढ़ना है। यह चौथे दिन का रूप है। छन्द गायत्री है। इस त्र्यह में मध्य सवन के वाहक गायत्री छन्द हैं। जिस छन्द में निविद होता है वही छन्द वाहक होता है। इसलिये निविद को गायत्री छन्द में रखते हैं।

वैश्वदेव शस्त्र के प्रतिपद और अनुचर यह हैं :—

विश्वो देवस्य नेतुः (ऋ० ५।५०।१)

तत् सवितुर्वरेण्यम् (ऋ० ३।६२।१०)

आ प विश्वदेवं सत्पतिम्। (ऋ० ५।८२।७-९)

यह चौथा बृहत् दिन है और चौथे दिन का रूप है।

सविता का निविद सूक्त यह है :—

आ देवो यातु सविता सुरत्नः। (ऋ० ७।४५)

इसमें 'आ' है। यह चौथे दिन का रूप है।

इसमें 'जनयन्त' शब्द आया है। यह चौथे दिन का रूप है। इसके छन्द भिन्न-भिन्न हैं। विराज और त्रिष्टुप्। यह चौथे दिन का रूप है। (५)

ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवीं पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

६—पाँचवें दिन का देवता गौ है। स्तोम त्रिणव है। साम शाक्वर है, छन्द पंक्ति है। जो यह जानता है कि कौन देवता है, कौन स्तोम है, कौन साम है और कौन छन्द है उसका यज्ञ सफल होता है।

जिसमें 'आ' और 'प्र' न हो और जो 'स्थित' हो वह पांचवें दिन का रूप है। दूसरे दिन के रूप भी पांचवें दिन के रूप हैं, जैसे ऊर्ध्व, प्रति, अन्तः, वृषन्, वृधन्। बीच के पाद में देवता का निर्वचन और अन्तरिक्ष का उल्लेख। इनके सिवाय यह विशेषतायें और हैं:—

दुग्ध, ऊध, धेनु, पृश्नि, मद, पशुओं का रूप, अध्यास (अर्थात् घटना बढ़ना) क्योंकि पशु बड़े छोटे होते हैं। पांचवां दिन जागत है अर्थात् जगत् से सम्बन्ध रखता है, पशु जगत् है (चलता फिरता) है; यह बार्हत भी है क्योंकि बृहती छन्द पशुओं का है। यह पांक्त भी है क्योंकि पशु पंक्ति छन्द से सम्बन्ध रखते हैं। यह 'वाम' है क्योंकि पशु बलटे हैं। यह हविष्मत् है क्योंकि पशु हवि हैं। यह वसुमत् है क्योंकि पशुओं

के वसु या शरीर है। यह शाक्वर पांक्त है और दूसरे दिन के समान वर्तमान काल है। यह पांचवें दिन के रूप हैं।

आज्य शस्त्र है ' इममूषुवो अतिथि मुषुबुधम्"

(ऋ० ६।१५)

छन्द जगती है और छन्दों के साथ भी। यह पशुओं का रूप है। यह पांचवें दिन का रूप है।

पांचवें दिन के प्र-उग शस्त्र में जो बृहत् छन्द में हैं नीचे के मत्र हैं :—

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः। अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोयं शुक्रो अयामि ते ।।

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये। अघा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ।। (ऋ० ८।१०१।९-१०)

आ नोने वायो महे तने याहि मखाय पाजसे। वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने। (ऋ० ८।४६।२५)

रथेन पृथु पाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम्। इन्द्रवायू इहागतम् ।।

इन्द्रवायू अय सुतस्तं देवेभिः सजोषसा। पिबतं दाशुषो गृहे ।।

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्र वायू विमोचनम्। इह वां सोम पीतये ।।

(ऋ० ४।४६।५-७)

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः। त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ।।

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम्। अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ।।

तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते। यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ।। (ऋ० ७।६६।१०-१२)

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना। अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ।।

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते। अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना। दुग्धं पयो वृषणा जेन्या-वसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ (ऋ० ७।७४।१-३)

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सध-माद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः।

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये। अस्माञ् चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरोवर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ (ऋ० ८।३।१-३)

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये। देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः। ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वीरवोविदः ॥

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम्। न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥ (ऋ० ८।२७।१३-१५)

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्। सरस्वतीमिन् महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥

उभे यत् ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः। सा नो बोध्यवित्री मरुत् सखा चोद राधो मघोनाम् ॥

भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती। गृणाना जमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ (ऋ० ७।९६।१-३)

मारुतीय शस्त्र का प्रतिपद यह है:—

यत् पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत। अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ (ऋ० ८।६३।७)

इसमें 'पाँचजन्य' शब्द आया है। यह पाँचवें दिन का रूप है।

(मरुत्वतीय शस्त्र के) आतान वहीं हैं जो दूसरे दिन के:—

इन्द्र इत् सोमपा एक...... (ऋ० ८।२।४)

इन्द्र नेदीय एदिहि (ऋ० ८।५३।५)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते (ऋ० १।४०।१)

अग्निर्नेता (ऋ० ३।२०।४)

त्वं सोम क्रतुभिः (ऋ० १।९१।२)

पिन्वन्ति अपो (ऋ० १।६४।६)

बृहदिन्द्राय गायत (ऋ० ८।८९।१)

यह पाँचवें दिन का रूप है।

अवितासि सुन्वतो वृक्त बर्हिषः... (ऋ० ८।३६)

इस सूक्त में 'मद' शब्द है। इसके पहले मंत्र में पाँच पद हैं और पंक्ति छन्द है। यह पाँचवें दिन का रूप है।

इत्था हि सोम इन्मदे... (ऋ० १।८०)

इस भी 'मद' शब्द है। पाँच पद हैं और पंक्ति छन्द है। यह पाँचवें दिन का रूप है।

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतोमदाय..... (ऋ० ६।४०)

इसमें भी 'मद' है। यह त्रिष्टुभ् है।

इस पद से जो प्रतिष्ठित है, सवन की प्रतिष्ठा होती है कि कहीं गिर न पड़े।

नीचे का तृच पर्याप्त है :—

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबासोमं शतक्रतो। अस्मिन् यज्ञे पुरुष्टुत ।।
तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः। हृदा हूयन्त उक्थिनः ।।
पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु। वज्रं शिशान ओजसा ।।

(ऋ० ८।७६।७-९)

इनमें न 'प्र' है न 'अ'। यह पाँचवें दिन का रूप है।

गायत्री छन्द में हैं। यह गायत्री इस त्र्यह के मध्यसवन की वाहक है। वाहक वही छन्द होता है जिसमें निविद सूक्त

होता है। इसलिये निविद को गायत्री छन्द में ही रखते हैं। (१)

७—पाँचवें दिन जो रथंतर दिन है शाक्वर स्वर से महानाम्नी का पाठ होता है। यह पाँचवें दिन का रूप है। इन्द्र ने इनके द्वारा अपने को महान् बनाया था। इस लिये उनका महानाम्नी नाम पड़ा।

यह लोक भी महानाम्नी हैं क्योंकि यह बड़े हैं। जब प्रजापति ने इन सब को बनाया, तो इन सबके बनाने की उसमें शक्ति थी। चूँकि यह सृष्टि रच कर उसमें सब शक्तियाँ थीं इस लिये उनसे 'शक्री' उत्पन्न हुई। इस लिये इनका नाम शक्री है।

जो सीमा से बाहर पैदा हो गये वह सीमा से बाहर हो गये इसलिये 'सिम्न' कहते हैं। यही सिमा का सिमात्व है।

नीचे के मंत्र निष्केवल्य शस्त्र के "अनुरूप" हैं।

स्वादो रित्था विषूवत··· (१।८४।१०)

उप नो हरिभिः सुतम्··· (८।९३।३१)

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्··· (१।११।१)

इनमें 'वृषन्', 'वृष्णिः', 'मद' और 'वृधन्' शब्द आये हैं। यह पाँचवें दिन का रूप हैं।

धाय्या वही है यद् वावान ॥

यह क्रम के अनुसार रथंतर दिन है। इसलिये

अभित्वा शूर नोनुमो··· (७।३२।२२)

पढ़ने से होता रथंतर की योनि की ओर लौटाता है।

मोषु त्वा वाघतश्चन··· (७।३२।१-२)

साम प्रगाथ है। इसमें एक पद अधिक है। यह पशुओं का रूप है। जो पाँचवें दिन का रूप है। तार्क्ष्य वही है अर्थात्

त्यमूषु वाजिनं। (१०।१७८।१) (२)

८—प्रेदं ब्रह्मवृत्रतूर्येष्वाविथ··· (८।३७)

इस सूक्त का छन्द पक्ति है। और पाँच पद हैं। यह पाँचवें दिन का रूप है।

'इन्द्रो मदाय वावृधे' (१।८१)

इसमें 'मद' है, पक्ति छन्द है। पाँच पद हैं। यह पाँचवें दिन का रूप है।

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः। सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद् देवेषु धारयथा असुर्यम्॥

(ऋ० ६।३६।१)

इसमें 'मद' है और यह त्रिष्टुभ् छन्द में है। इसके स्थिर पदों द्वारा यह सवन को ठीक स्थान पर रखता है और गिरने नहीं देता।

नीचे तृच पर्यास है :—

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥
गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः॥

(ऋ० ८।९३।७-९)

यहाँ "सवृषा वृषभो भुवत्" में पशु का रूप है। यह पांचवें दिन का रूप है।

यह गायत्री छन्द मे है। त्र्यह के मध्य सवन की वाहक गायत्री हैं। निविद उसी छन्द मे रक्खा जाता है जो वाहक होता है, इसलिये निविद को गायत्री में रक्खा है।

वैश्वदेव शस्त्र की प्रतिपद है :—

तत् सवितुर्वृणीमहे······(५।८२।४)

और अनुचर है

अद्या नो देव सवितः (५।८२।४)

यह रथन्तर दिन का रूप है जो पांचवां दिन है और यह पांचवें दिन का रूप है।

सविता का निविद् सूक्त यह है :—

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्। अयो हनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आदाशुषे सुवति भूरिवामम्॥ (६।७१।४-६)

इसमें 'दाशुषे सुवति भूरिवामम्' इस वाक्य में 'वाम' शब्द पड़ा है। यह पशु रूप है। पांचवें दिन का यही रूप होता है।

द्यावापृथिवी का निविद् सूक्त है।

मही द्यावापृथिवी इहज्येष्ठे (४।५६)

इसमें 'रुवद्घोक्ष' शब्द आया है।

रुवद्घोक्षा पप्रथानेभिरेवैः (४।५६।१)

यह पशु रूप है। यह पांचवें दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद् सूक्त यह हैं।

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छ (४।३४)

पशु वाज हैं। यह पशु रूप है। यह पांचवें दिन का रूप है।

स्तुषे जनं सुव्रतं नवासीभिः……(६।४९।१)

यह वैश्वदेव का अभ्यास है। यह पशु रूप है। यह पांचवें दिन का रूप है।

अग्नि-मारुत् शस्त्र का प्रतिपद् यह है :—

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ। तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त॥ (ऋ० १०।८८।१)

'हविष्मत्' पांचवें दिन का रूप है।

मरुतों का निविद् सूक्त यह है :—

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु। (ऋ० ६।६६।१)

इसमें वपु शब्द आया है। यह पांचवें दिन का रूप है।

धाय्या वही है… जातवेदसे सुनवाम सोमम्।

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः। देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा॥ (ऋ० ६।१५।१३)

यह जातवेद का अभ्यास पशुरूप है। यह पांचवें दिन का रूप है। (३)

९—छठा दिन देवक्षेत्र है। जो छठे दिन में प्रवेश करते हैं वह देव क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। देव एक दूसरे के घर में नहीं रहा करते। कहावत है कि एक ऋतु दूसरी ऋतु के घर में नहीं रहती।

इसलिये ऋत्विज लोग अपना अपना ऋतुयाज करते हैं। दूसरे से नहीं कराते।

इस प्रकार ऋत्विज लोग सभी ऋतुओं के कृत्य करते हैं। किसी को छोड़ते नहीं। सब के कल्याण के लिये।

कहा जाता है कि ऋतुओं के कृत्य के लिए न कोई आज्ञा चाहिये, न वषट्कार। आज्ञा वाणी से होती है और वाणी छठे दिन थक जाती है।

यदि वह आज्ञा देंगे और वषट्कार करेंगे तो थकी हुई वाणी बोझ के नीचे दब जायगी। और वाणी गड़बड़ हो जायगी।

और अगर ऋत्विज आज्ञा न दें और वषट्कार न करें तो यज्ञ की सीमा से पतित हो जाते हैं। यज्ञ भंग हो जाता है और यज्ञ, प्राण, प्रजापति और पशु नहीं रहते और वे टेढ़े चलने लगते हैं।

इसलिये आज्ञा और याज्य मंत्र से पहले एक ऋचा बोलनी चाहिये।

इसी प्रकार न तो वाणी थकेगी, न बोझ से दबेगी, न उसमें गड़बड़ होगी। न यज्ञ भंग होगा, न वे यज्ञ, प्राण, प्रजापति या पशुओं से च्युत होंगे और न टेढ़े चल सकेंगे। (४)

१०—पहले दो सवनों में प्रत्येक प्रस्थित याज्य से पहले परुच्छेप ऋषि वाली एक एक ऋचा को रखते हैं। इस छन्द का नाम रोहित है। इसके द्वारा इन्द्र सात स्वर्गों को चढ़ गया

था। जो इस रहस्य को समझता है वह भी सात स्वर्गों को चढ़ जाता है।

यहां शंका होती है कि जब पांच पदों की ऋचायें पांचवे दिन बोली जाती हैं और छः पदों की छठे दिन तो सात पद वाले छन्द छठे दिन क्यों पढ़े जायं। (इसका उत्तर यह है) कि छः पदों से छठे दिन को प्राप्त हो जाते हैं। लेकिन सातवें दिन को काट कर सातवें पद से (स्वर्ग में) स्थिर हो जाते हैं। इस प्रकार वह सतति या सिलसिले के लिए वाणी को प्राप्त कर लेते हैं। जो इस रहस्य को समझ कर कृत्य करते हैं उनका त्र्यह छिन्न-भिन्न नहीं होता। (५)

११—देवों और असुरों ने इन लोकों में झगड़ा किया। देवों ने छठे दिन के कृत्य से असुरों को इन लोकों से निकाल दिया। असुरों को जो कुछ हस्तगत हो सका उसको उन्होंने ले लिया और समुद्र में फेंक दिया। देव पीछे दौड़े और इस छन्द के द्वारा जो कुछ उन्होंने लिया था उसे छीन लाये। इस सातवें पद ने कटियां (अंकुश) का काम दिया जिससे समुद्र से चीजें निकाल ली गईं।

इसलिये जो इस रहस्य को समझता है वह अपने शत्रु से धन छीन लेता है और सब लोकों से उनको निकाल देता है। (६)

१२—छठे दिन का वाहक देवता द्यौ है। तैंतीस स्तोम हैं। रैवत साम है। अतिच्छन्द छन्द है। जो यह जानता है कि कौन देवता है, कौन स्तोम है, कौन साम है और कौन छन्द है, उसका यज्ञ सफल हो जाता है।

छठे दिन का वही रूप है जो तीसरे दिन का अर्थात् समानोदर्क होना, 'अश्व' और 'अन्त' शब्द आना, पुनरावृत्ति, निनृति (rhyme), रति या रमण करना, पर्यास, तीन

अन्त का रूप, पिछले पद में देवता का निरूपण, परलोक का उल्लेख।

सातवें दिन की और विशेषतायें यह हैं:—

सात पदों का परुच्छेप, नराशंस, नाभानेदिष्ट, रैवत, अतिच्छन्द, और भूतकालिक क्रिया।

जो तीसरे दिन का रूप है वही छठे दिन का है।

"अयं जायत मनुषो धरीमणि" (ऋ० १।१२८) आज्य शस्त्र का सूक्त है। इसका ऋषि परुच्छेप है, छन्द सात पदों का अतिच्छन्द है। यह छठे दिन का रूप है।

प्र-उग शस्त्र ये हैं। इन सब का परुच्छेप ऋषि है और सात पदों वाला अतिच्छन्द है:—

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते। तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे। प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन्॥

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति। तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते। वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये। तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा। अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत॥

(ऋ० १।१३५।१-३)

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये। वायो हव्यानि वीतये। पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम्। वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम्॥

आ वां धियो ववृत्युरध्वरां उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्। तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या। इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम्॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत । एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः । युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ (ऋ० १।१३५।४-६)

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे । आ राजाना दिविस्पृशाऽस्मत्रा गन्तमुपनः । इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः । उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः । सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुऋताय पीतये ॥

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः । अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये । अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ (ऋ० १।१३७।१-३)

अचेति दस्रा व्युनाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्व-स्मानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये । पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् । मा वां रातिरुप दसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः । ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे । गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥

(ऋ० १।१३९।४-६)

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः । शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः । सुन्वान इत्सिषा सति सहस्रा वाज्यवृतः । सुन्वानाये-न्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ (ऋ० १।१३३।६।७)

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी। अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवां अच्छा न धीतयः॥

(ऋ० १।१३६।१)

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीडितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः। यद्धत्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन। वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा॥ (ऋ० १।१३९।७)

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ। अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥ (ऋ० १।१३९।११)

इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे। या शश्वन्तमा चखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः, पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः॥

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः। उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति॥

(ऋ० ६।६१।१-३)

मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद् यह है :—

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे। यस्यद्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे॥

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः। उक्था ब्रह्म च शंस्या॥

स विद्वां अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप। स्तुषे तदस्य पौंस्यम्॥

(ऋ० ८।६३।१-३)

'महत्' अन्तशब्द है। अन्त छठे दिन का रूप है।

नीचे की ऋचायें (मरुत्वतीय शस्त्र की) आतान (appendages) हैं और तीसरे दिन के समान हैं :—

अयं इन्द्रस्य सोमा…(ऋ० ८।२।७-९)

इन्द्र नेदीय एदिहि…(ऋ० ८।५३।५-६)

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः…(ऋ० १।४०।५-६)
अग्निर्नेता…(ऋ० ३।२०।४)
त्वं सोम क्रतुभिः…(ऋ० १।९१।२)
पिन्वन्त्यपो…(ऋ० १।६४।६)
न किः सुदासो रथं…(ऋ० ७।३२।१०)
"यं त्वं रथमिंद्र मेधसातये" (ऋ० १।१२९)

यह परुच्छेप ऋषि का सूक्त है। अतिच्छन्द छन्द है और सात पद वाला है। यह छठे दिन का रूप है।

"स यो वृषावृष्ण्येभिः समोका" (ऋ० १।१००)

यह समानोदर्क सूक्त है। यह छठे दिन का रूप है।

"इन्द्रमरुत्व इह पाहि सोमम्" (ऋ० ३।५१।७)

इस सूक्त के ९वें मन्त्र में "तेभिः साकं पिबतुवृत्र खाद" ऐसा आया है। इसमें 'वृत्र खाद' 'अन्त' पद वाला है। यह छठे दिन का रूप है।

त्रिष्टुप् छन्द के इस सूक्त से जिसके पद क़ायम हैं सवन को ठीक स्थान पर रक्खा जाता है और सवन गिरने नहीं पाता।

'अयं ह येन वा इदं' (ऋ० ८।७६।४)

यह पर्यास है। इसमें 'स्वर्मरुत्वता जितम्' पद है, इसमें 'जितम्' अन्त वाला है। यह छठे दिन का रूप है।

यह गायत्री छन्द में है। गायत्री मध्य सवन का वाहक है। जो छन्द वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। गायत्री छन्द का निविद रखते हैं।

रेवतीर्नः सधमादे……(ऋ० १।३०।१३-१५)
रेवाँ इद्रेवतः स्तोता……(ऋ० ८।२।१३-१५)

यह रैवत पृष्ठ है। बृहत् छन्द में है। यह छठे दिन का रूप है।

धाय्य वही है :—यद् वावान……

त्वामिद्धि हवामहे (ऋ० ६।४६।१-२)

से होता बृहत् योनि की ओर सब को फेरता है। क्योंकि क्रमानुसार यह बृहत् दिवस है।

इन्द्रमिद्देवतातये (ऋ० ८।३।५-६)

यह साम प्रगाथ है। इसमें निनृत आता है। यह छठे दिन का रूप है।

तार्क्ष्य वही है :—त्यमूषु वाजिनं देवजूतम्। (७)

१३—"एन्द्र याह्युपनः परावतो" (१।१३०) यह परुच्छेप ऋषि का सूक्त है। छन्द अतिछन्द है और इसमें सात पद हैं। यह छठे दिन का रूप है।

"प्र घा न्वस्य महतो महानि" (ऋ० २।१५)

यह समानोदर्क है और छठे दिन का रूप है।

'अभूरेकोरयिपतेरयीणाम्' (ऋ० ६।३१)

इस सूक्त में ५ वें मंत्र में यह पद है "रथमा तिष्ठतु विनृम्णभीमम्' इसमें 'स्था' धातु का 'तिष्ठतु' अन्तवाला है। यह छठे दिन का रूप है।

त्रिष्टुभ् छन्द के इस रूप से सवन स्थित रहता है और गिरने नहीं पाता।

उप नो हरिभिः सुतम् (ऋ० ८।९३।३१-३३)

यह समानोदर्क पर्यास है। यह छठे दिन का रूप है। यह गायत्री छन्द में है। गायत्री इस त्र्यह के मध्य सवन का वाहक है। जो छन्द वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। इसलिये यह गायत्री छन्द वाला निविद रक्खा गया है।

वैश्वदेव शस्त्र का प्रतिपद यह है—

अभित्यं देवं सवितारमोण्योः (यजु० ४।२५)

यह अतिच्छन्द छन्द में है। यह छठे दिन का रूप है। इसके अनुचर यह हैं—

तत्सवितुर्वरेण्यम् (३।६२।१०-११)

दोषो अगात्

यहाँ 'अगात्' जाने के अर्थ में 'अन्त' वाला है। यह छठे दिन का रूप है।

सविता का निविद् सूक्त यह है :—

उदुष्य देवः सविता सवाय (ऋ० २।३८)

इसमें 'शश्वत्तमं तदपावह्निरस्थात्' में 'स्थ' अन्त वाला है।

द्यावापृथिवी का निविद् सूक्त यह है :—

कतरा पूर्वा कतरापरायोः······(ऋ० १।१८५।१)

यह समानोदर्क है। यह छठे दिन का रूप है।

किमुश्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्······(ऋ० १।१६१)

उपनोवाजा अध्वरमृभुक्षा······(ऋ० ४।३७)

यह ऋतुओं का नाराशंसी सूक्त है। इसमें 'त्रि' शब्द है। यह छठे दिन का रूप है।

नीचे के दो सूक्त वैश्वदेव (नाभानेदिष्ठ) के हैं :—

इदमित्थारौद्रं गूर्तवचा······(ऋ० १०।६१)

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता······(ऋ० १०।६२) (८)

१४—अब नाभानेदिष्ठ पढ़ता है। नाभानेदिष्ठ मनु का पुत्र था जो ब्रह्मचर्य आश्रम में था। उसके भाइयों ने उसको घर की सम्पत्ति से अलग कर दिया।

उसने भाइयों के पास आकर कहा, "मेरा कितना भाग है ?"

उन्होंने कहा, "फैसला करने वाले के पास जा"। इससे उनका आशय पिता से था। इसलिये पिता को पुत्रों के झगड़ों का फैसला करने वाला कहते हैं।

वह पिता के पास आया और बोला, "यह मेरा भाग बाँट कर खा गये।"

पिता ने कहा, "पुत्र, चिंता मत कर। अंगिरा स्वर्ग लोक के लिये सत्र कर रहे हैं। जब वह छठे दिन का कृत्य करने बैठते हैं वह भूल जाते हैं। उनसे छठे दिन के यह दोनों सूक्त (१०।६१,६२) पढ़वाओ। वे तुमको एक सहस्र देंगे जो कि सत्र करने वाले दिया करते हैं"।

उसने कहा "अच्छा"।

वह तब उनके पास गया और कहा कि हे बुद्धि वाले लोगो ! सुन मनु के पुत्र को ले लो"। उन्होंने कहा, "तुम क्या चाहते हो जो ऐसा कहते हो" ?

उसने कहा, "मैं तुमको छठे दिन का कृत्य करने की विधि बताऊँगा। और जब तुम स्वर्ग को जाने लगो तो मुझे सत्र की दक्षिणा एक सहस्र देना"। उन्होंने कहा, "अच्छा"।

उसने उनसे छठे दिन उन दो सूक्तों का पाठ कराया। तब उनको यज्ञ और स्वर्गलोक का ज्ञान हुआ। इसलिये छठे दिन यह दो सूक्त पढ़े जाते हैं कि यजमान को यज्ञ का ज्ञान हो जाय और स्वर्गलोक का निर्देश हो जाय।

जब वह स्वर्ग को जाने लगे तो उन्होंने कहा, "हे ब्राह्मण यह सहस्र तुम्हारा है"।

जब वह इस सहस्र को इकट्ठा कर रहा था तो एक मैले से कपड़ों का आदमी उतरा और कहने लगा, "यह मेरा है, मैं इसे यहाँ छोड़ गया था"।

उसने कहा "यह मुझे अंगिरा दे गये हैं।"

तब उसने कहा, 'तो यह हममें से एक का है, तेरे पिता निश्चय करेंगे।

वह अप[illegible] के पास गया। पिता ने पूछा, "क्या अंगिरा ने तुम्हें दक्षिणा नहीं दी ?"

उसने कहा, "उन्होंने तो दी थी। लेकिन एक मैले कपड़े

वाला उतरा और मेरे पास आकर कहने लगा कि यह मेरा है। मैं इसे यहाँ छोड़ गया था। यह कह कर उसने ले लिया"। उसके पिता ने कहा, "बेटा, यह ी का है। लेकिन वह तुमको दे देगा"। वह उसके पास गया और कहा, "मेरे पिता ने कहा है कि यह तुम्हारा ही है"।

उसने कहा, "मैं तुमको देता हूँ क्योंकि तुमने सच बोला"।

इस लिये विद्वान् को सच ही बोलना चाहिये। यह नाभानेदिष्ठ का सहस्र वाला मंत्र है।

जो इस रहस्य को समझता है उसके ऊपर 'सहस्र' की वर्षा होती है। और वह छठे दिन के द्वारा स्वर्ग के दर्शन करता है। (९)

१५—अब (वैश्वदेव शस्त्रके) सहचर सूक्त पढ़ता है, जैसे नाभानेदिष्ठ, बालखिल्य, वृषाकपि, एवया मरुत।

यदि इनमें से कोई छूट जाय तो यजमान को क्षति होगी। यदि नाभानेदिष्ठ छूट जाय तो यजमान को वीर्य की क्षति होगी। बालखिल्य छूट जाय तो प्राणों की। वृषाकपि छूट जाय तो आत्मा की। एवयामरुत छूट जाय तो प्रतिष्ठा की। अर्थात् मनुष्यों और देवों में जो उसकी प्रतिष्ठा है वह जाती रहे।

नाभानेदिष्ठ से वह यजमान में वीर्य धारण कराता है। बालखिल्य से आकृति धारण कराता है। कक्षीवान् के पुत्र सुकीर्ति ने इस सूक्त के द्वारा गर्भ को बचा उत्पन्न करने योग्य बनाया। इसके पहले मंत्र में (ऋ० १०।१३१।१) आया है "उरौ यथा तव शर्मन् मदेम" (हे इन्द्र, हम तेरे उदार शरण में सुख पावें)। इस लिये गर्भ चाहे बड़ा हो और योनि छोटी हो तब भी वह उसे हानि नहीं पहुँचाता। अगर ब्रह्म सुकीर्ति सूक्त द्वारा योनि को सुरक्षित रखता है, तो यजमान एवयामरुत सूक्त (ऋ० ५।८७) द्वारा गतिवान हो जाता है। यदि यजमान

के लिये यह सब किया जाय तो यजमान चलने के योग्य हो जाता है।

अग्निमारुतशस्त्र का प्रतिपद् यह है :—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजाऽवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ (ऋ० ६।९।१)

'अहः' 'अहः' यह पुनरावृत्ति और निनृत्ति है, यह छठे दिन का रूप है।

'मध्वो वो नाम मारुतं यजत्रा' यह मरुत सूक्त है। यह बहुवचन है। बहुवचन 'अन्त' वाला है। यह छठे दिन का रूप है।

जातवेदस मंत्र वही है "जातवेदसे सुनवाम" (१।९९।१) जातवेदस का निविद् सूक्त "स प्रत्नथा सहसा जायमानः" (१।९६।१) है। यह समानोदर्क है, यह छठे दिन का रूप है।

इस सूक्त के हर मंत्र में 'धारयन्' आता है। इस प्रकार ऋत्विज यज्ञ को दोनों सिरों पर बाँधता है जैसे रस्सी को दोनों सिरों पर बाँधते हैं, (आग्रन्थन और निग्रन्थन) सादी गाँठ और लपेट की गाँठ। यह जैसे किसी चीज को दो खूटियाँ गाड़ कर तान देते हैं, यह यज्ञ की निर्विघ्नता के लिये किया जाता है। जो इस रहस्य को समझते हैं उनका यह निर्विघ्न समाप्त हो जाता है। (१०)

ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवीं पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

१६—'अ' और 'प्र' सातवें दिन के रूप हैं। सातवाँ दिन पहले के समान है। युक्त, रथ, आशु, पिब, पहले पाद में देवता का निर्वचन, इस लोक का उल्लेख, जात, अनिरुक्त और भविष्य कालिक क्रिया यह जो पहले दिन के रूप हैं वही सातवें दिन के रूप हैं।

आज्य सूक्त यह है :—

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारत्   (ऋ० ४।५८।१)

यहाँ कुछ अनिरुक्त है। यह सातवें दिन का रूप है। समुद्र वाणी है। क्योंकि न वाणी क्षीण होती है न समुद्र। इस लिये यह सातवें दिन का आज्य है। यज्ञ से ही यज्ञ तानते हैं। और वाणी को प्राप्त करते हैं। संतति अर्थात् सिलसिले के लिये। जो इस रहस्य को समझ कर यज्ञ करते हैं उनका त्र्यह छिन्न भिन्न नहीं होता। छठे दिन स्तोम समाप्त हो जाते हैं और छन्द समाप्त हो जाते हैं।

जैसे दर्शपूर्णमास—इष्टि में आज्य पर घृत डाल कर उसे ताजा करते हैं, उसी प्रकार सातवें दिन के आज्य शस्त्र से स्तोम

और छन्दों को फिर ताजा करते हैं । छन्द त्रिष्टुभ् है क्योंकि यह इस त्र्यह के प्रातः सवन् का छन्द है ।

प्र-उग शस्त्र यह है :—

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार । उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ (ऋ० ७।६२।१)

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे । नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व निवीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ (ऋ० ७।६२।३)

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै । प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ (ऋ० ७।९२।२)

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः । घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥

(ऋ० ७।६२।४)

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते । आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक् पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥

(ऋ० ७।६१।६)

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति । न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञ साचो अप्यो न पुत्राः ॥

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः । आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रा वरुणावस्कृधोयु । अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥

(ऋ० ६।६७।६-११)

आ गोमता नासत्या रथेनाऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् । अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन । युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥

उदुस्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः। आविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ (ऋ० ७।७२।१-३)

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य। महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ। त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत् केतुमुपमं समत्सु। न्यग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ (ऋ० ७।३०।१-३)

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै। येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग् वियन्ति वनिनो न शाखाः।

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः। स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु। आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥

(ऋ० ७।४३।१-३)

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसीपूः। प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥

एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥

स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु। स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥

(ऋ० ७।९५।१-३)

इन मंत्रों में 'आ' और 'प्र' आये हैं। यह सातवें दिन का रूप है।

यह त्रिष्टुभ छन्द में हैं। इस त्र्यह के प्रातः सवन का छन्द त्रिष्टुभ है।

सातवें दिन के आतान मंत्र वही हैं जो पहले दिन के और यह सातवें दिन का रूप है। वे मंत्र यह हैं :—

आ त्वा रथं (८।६८।१-२)
इदं वसो सुतं (८।२।१-२)
इन्द्र नेदीय (८।५३।५-६)
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः (१।४०।३-४)
अग्निर्नेता (३।२०।४)
त्वं सोम क्रतुभिः (१।९१।२)
पिन्वन्त्यपः (१।६४।६)
प्र व इन्द्राय बृहते (८।८६।३)

"कया शुभा सवयसः सनीडा" (१।१६५) में "न जायमानो नशते न जात" यह पद आया है। इसमें 'जात' शब्द है। यह सातवें दिन का रूप है।

इस 'कयाशुभीय' सूक्त से एकमत और दीर्घायु होती है। इस कयाशुभीय सूक्त के द्वारा इन्द्र, अगस्त्य और मरुत एकमत हो गये थे। 'कयाशुभीय' सूक्त के पढ़ने से होता एकमत करता है। लेकिन यह दीर्घायु भी करता है। जो इसकी कामना करे वह 'कयाशुभीय' सूक्त का पाठ करे। यह त्रिष्टुभ् छन्द में है। इसके ठहरे हुये पद से होता सवन को ठीक स्थान पर कायम रखता है और गिरने नहीं देता।

"त्यं सुमेषं महयास्वर्विदम्" (१।५२) इस सूक्त में पहले मंत्र के दूसरे पद में "अत्यं न वाजं हवनस्य दं रथम्" में 'रथ' शब्द आया है यह सातवें दिन का रूप है।

यह जगती छन्द में है। इस त्र्यह के मध्य सवन का छन्द जगती है। जो छन्द वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। इस लिये निविद को जगती छन्द में रखते हैं।

अब मैथुन सम्बन्धी सूक्त पढ़े जाते हैं। त्रिष्टुभ् और जगती

पशु मिथुन हैं। पशु छन्दोम हैं, यह पशुओं की बढ़ती के लिये किया जाता है।

सातवें दिन के बृहत् पृष्ठ यह हैं :—

त्वामिद्धि हवामहे… (ऋ० ६।४६।१)

त्वं ह्येहि चेरवे… (ऋ० ८।६१।७)

पृष्ठ वही हैं जो छठे दिन के।

वैरूप रथन्तर है और वैराज बृहत्। शकूर रथंतर है और रैवत बृहत। इसलिये सातवें दिन बृहत् पृष्ठ होता है। क्योंकि वे छठे दिन के बृहत् सातवें दिन के बृहत् से बाँध देते हैं स्तोमों को जारी रखने के लिये। क्योंकि यदि (बृहत् का विरोधी) रथंतर पढ़ा जाय तो जोड़ा (मिथुन) टूट जाये। इस लिये बृहत् का प्रयोग होता है।

धाय्या वही है अर्थात् यद् वावान… "अभित्वा शूर नोनुमः" के पाठ से होता सबको योनि तक लौटा लाता है। यह क्रम के अनुसार रथंतर है।

साम प्रगाथ यह है—

"पिबा सुतस्य रसिनः"… (८।३।१-२)

इसमें 'पिब' शब्द है। यह सातवें दिन का रूप है। तार्क्ष्य वही है "त्यमूषु वाजिन देवजूतम्"। (१)

१७—इन्द्रस्य नुवीर्याणि… (ऋ० १।३२)

इस सूक्त में 'प्र' है। यह सातवें दिन का रूप है। यह त्रिष्टुभ् छन्द में है। इन पदों के द्वारा जो ठहरे हुये हैं होता सवन को कायम रखता है और पतित नहीं होने देता।

"अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम्" सूक्त (१।५१) में 'प्र' के स्थान में 'अभि' है। यह सातवें दिन का रूप है। यह जगती छन्द में है। मध्य सवन के वाहक जगती छन्द हैं। जो छन्द

वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। इसलिये इसमें निविद रक्खा गया है।

अब मिथुन सम्बन्धी सूक्त पढ़े जाते हैं। यह त्रिष्टुभ् और जगती में हैं, पशु मिथुन हैं। और छन्दोम पशु हैं। यह पशुओं की बढ़ती के लिये किया जाता है।

वैश्वदेव शस्त्र के प्रतिपद् और अनुचर यह हैं :—

तत् सवितुर्वृणीमहे (ऋ० ५।८२।१-३)

अद्या नो देव सवितः (ऋ० ५।८२।४-५)

यह रथन्तर है। यह सातवें दिन के रूप हैं।

अभि त्वा देव सवितः (ऋ० १।२४।३)

यह सविता का निविद सूक्त है। इसमें 'अभि' 'प्र' का स्थानीय है। यह सातवें दिन का रूप है।

द्यावा पृथिवी का निविद सूक्त यह है :—

प्रेतां यज्ञस्य (ऋ० २।४१।१६)

इसमें 'प्र' है यह सातवें दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद सूक्त यह है :—

अयं देवाय जन्मने (ऋ० १।२०)

इसमें 'जन्म' आया है। यह सातवें दिन का रूप है।

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१॥

आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन् मखः सुदानुभिः ॥२॥

(ऋ० १०।१७२)

इत्यादि दो पदों वाले मंत्रों का पाठ करता है। पुरुष दोपाया है। पशु चौपाये हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की बढ़ती के लिए यह किया जाता है।

एभिरग्ने दुवोगिरः (ऋ० १।१४)

विश्वेदेवों का निविद सूक्त है। इसमें 'आ' है यह सातवें दिन का रूप है। यह गायत्री छन्द में है। इस त्र्यह के तृतीय

सवन का छन्द गायत्री है। इसलिये यह गायत्री छन्द में है।

अग्निमारुत शस्त्र का प्रतिपद् यह है :—

"वैश्वानरो अजीजनत्"

इसमें 'जात' शब्द है, यह सातवें दिन का रूप है।

मरुतों का निविद सूक्त यह है :—

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषम्... । (ऋ० ८।७)

इसमें 'प्र' है। यह सातवें दिन का रूप है।

जातवेदस मंत्र वही है :—

जातवेदसे सुनवाम (ऋ० १।६६।१)

जातवेदों का निविद यह है :—

दूतं वो विश्ववेदसम्। (ऋ० ४।८)

इसमें 'जातवेद' का स्पष्ट वर्णन नहीं है। यह सातवें दिन का रूप है। यह छन्द गायत्री में है। इस त्र्यह के तीसरे सवन का वाहक गायत्री छन्द है। (२)

१८—आठवें दिन का रूप यह है कि न 'अ' हो, न 'प्र' और 'स्थित' हो। आठवाँ वही है जो दूसरा। इसके रूप यह हैं :—ऊर्ध्व, प्रति, अन्तः, वृषण, वृधन, बीच के पाद में देवता का निर्वचन, अन्तरिक्ष का उल्लेख, दो बार अग्नि शब्द, महद्, विहूत, पुनः, और वर्तमान कालिक क्रिया।

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा......(ऋ० ७।३)

यह आठवें दिन का आज्य है। इसमें दो बार अग्नि आया है। यह आठवें दिन का रूप है। यह त्रिष्टुभ् छन्द में है। इस त्र्यह के प्रातः सवन का वाहक त्रिष्टुभ् छन्द है।

इसके प्र-उग शस्त्र के मन्त्र यह हैं :—

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण॥ (ऋ० ७।९१।१)

पीवो अन्नान् रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः। ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः॥

(ऋ० ७।६१।३)

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः। गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तोषामनु प्रदिवः सस्रुरापः॥ (ऋ० ७।६०।४)

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः। इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम्॥

(ऋ० ७।६१।२)

यावत् तरस्तन्वो३यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः। शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम्॥

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्। इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे॥

(ऋ० ७।६१।४-६)

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।
ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु॥
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च॥
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येत् रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम॥

(ऋ० ७।६५।१-३)

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानाऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः। आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः॥

सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः। जरेथामस्मद् वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा पातमर्वाक्॥

सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः। किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाऽऽहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥

(ऋ० ३।५८।१-३)

ब्रह्मणा इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः। विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥

हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम्। आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाड्हः ॥

तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ। महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत् ॥

(ऋ० ७।२८।१-३)

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥
ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षेमर्जयन्त शुभ्राः।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥

(ऋ० ७।३९।१-३)

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन्। मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रतिस्तोमं सरस्वति जुषस्व। तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः। वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

(ऋ० ७।९५।४-६)

इन मन्त्रों में प्रति, अन्तः, विहूत, ऊर्ध्व आये हैं। यह त्रिष्टुभ् छन्द में हैं। इस त्र्यह के प्रातः सवन का वाहक त्रिष्टुभ् छन्द है।

मरुत्वतीय शस्त्र के आतान जो दूसरे दिन के हैं, वही आठवें के और यही आठवें दिन का रूप है :—

विश्वानरस्य वस्पतिं (ऋ० ८।६८।४)
इन्द्र इत् सोमपा एकः (ऋ० ८।२।४)
इन्द्र नेदीय एदि हि (ऋ० ८।५३।५-६)
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते (ऋ० १।४०।१-२)
अग्निर्नेता त्वं सोम क्रतुभिः......

अब 'महद्वत्' सूक्त पढ़े जाते हैं अर्थात् वह जिनमें 'महद्' शब्द आया है :—

शंसा महाम्...(ऋ० ३।४६)
महश्चित् त्वम्... ऋ० १।१६६)
पिबा सोममभि यं...(ऋ० ६।१७)
यहाँ इन्द्रो नृवत् (ऋ० ६।१६)

इन सब में 'महान्' शब्द आया है और यह आठवें दिन का रूप है।

यह त्रिष्टुभ् छन्द में है। इससे होता सवन को कायम रखता है और गिरने नहीं देता।

"तमस्य द्यावा पृथिवी" (ऋ० १०।११३) भी महद्वत् सूक्त है। क्योंकि पहले मन्त्र के दूसरे पाद में महिमानो शब्द आया है। इसका छन्द जगती है। इस त्र्यह के मध्य सवन के वाहक छन्द जगती हैं। निविद उसी छन्द में रक्खा जाता है जो वाहक होता है। इसलिये निविद जगती छन्द में रक्खा गया है।

अब मिथुन के सूक्त पढ़े जाते हैं त्रिष्टुभ् और जगती छन्दों में। पशु मिथुन हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये महद्वत् सूक्त पढ़े जाते हैं।

अन्तरिक्ष महद् है। अन्तरिक्ष की प्राप्ति के लिये पाँच सूक्त पढ़े जाते हैं।

पंक्ति में पाँच पद होते हैं। यज्ञ पंक्ति वाला है। पशु भी पंक्ति वाले हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये।

आठवें दिन के रथन्तर पृष्ठ यह हैं :—

अभित्वा शूर नो नुमो......

अभित्वा पूर्वपीतये......

धाय्या वही है......यद् वावान्......

"त्वामिद्धि हवामहे" इससे सबको मानि की ओर लौटाता है। क्रमानुसार यह बृहत् दिवस है।

साम प्रगाथ यह है :—

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः। सत्राच्या मघवा सोम पीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः। उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ (ऋ० ८।६१।१-२)

इनमें वह भी है जो आज है और वह भी जो कल था। यह बृहत् दिवस अर्थात् आठवें दिन का रूप है।

तार्क्ष्या वही है अर्थात् त्यमूषु वाजिनम्......(३)

१९—पाँच महद्वत् सूक्त यह हैं :—

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै...(ऋ० ६।३२)

इसमें 'महेवीराय तवसे तुराय' में 'महद्' शब्द आया है। यह आठवें दिन का रूप है।

तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा...(ऋ० १०।५४)

इसमें भी 'महद्' है। यह भी आठवें दिन का रूप है।

त्वं महाँ इंद्र यो ह शुष्मैः...(ऋ० १।६३)

इसमें 'महद्' है यह भी आठवें दिन का रूप है।

त्वं महाँ इंद्र तुभ्यं ह क्षा......(ऋ० ४।१७)

इसमें भी 'महद्' है। यह भी आठवें दिन का रूप है। यह त्रिष्टुभ् छन्द में हैं। इसके द्वारा प्रतिष्ठित करके वह सवन को थामे रहता है गिरने नहीं देता।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ......(ऋ० १।५५)

इस सूक्त में "इन्द्रं न मह्ना" में महद् शब्द है यह आठवें दिन का रूप है।

यह जगती छन्द में है। इस त्र्यह का मध्य सवन का वाहक गायत्री छन्द है। जो छन्द सवन का वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। इसलिये निविद जगती छन्द में है।

अब मिथुन सूक्त पढ़ते हैं। त्रिष्टुभ् भी और जगती भी। पशु मिथुन हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये 'महद्वत्' सूक्त पढ़े जाते हैं। महद् अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्ष की प्राप्ति के लिये यह सूक्त पढ़े जाते हैं।

पाँच पाँच सूक्त पढ़े जाते हैं, पाँच पदों की पंक्ति होती है। यज्ञ पाँच भाग वाला है। पशु भी पाँच भाग वाले होते हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये।

पाँच पाँच कर दस होते हैं। यह दसवाली विराट् है। अन्न विराट है। पशु अन्न हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये।

विश्वो देवस्य नेतुः (ऋ० ५।५०।१)

तत्सवितुर्वरेण्यम्

आविश्वदेव सत्पतिम्। (ऋ० ५।८२।७)

यह वैश्वदेव शस्त्र के प्रतिपद् और अनुचर हैं। यह बृहत छन्द में हैं और आठवें दिन के रूप हैं।

सविता के निविद यह हैं—

हिरण्यपाणिमूतये (ऋ० १।२२।५-७)

इसमें 'ऊर्ध्व' आया है। यह आठवें दिन का रूप हैं।

द्यावापृथिवी के निविद यह हैं :—

मही द्यौः पृथिवी चीन (ऋ० १।२२।१३-१५)

इसमें 'महद्' है। यह आठवें दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद यह है :—

युवाना पितरा पुनः (ऋ० १।२०।४-८)

इसमें 'पुनः' है। यह आठवें दिन का रूप है। 'इमा नु कं भुवना सीषधाम' में (१०।१५७) दो पद वाले मंत्र हैं। अब यह पढ़े जाते हैं। मनुष्य दो पाया है। पशु चौपाया। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये। इस सूक्त का पाठ करके होता यजमान को चौपाये पशुओं में स्थापित करता है।

विश्वेदेवों का निविद सूक्त यह हैं :—

देवानामिदवो महद्......(ऋ० ८।८३।१)

इसमें महद् शब्द है। यह आठवें दिन का रूप है।

यह गायत्री छन्द में हैं। इस त्र्यह के तीसरे सवन का वाहक गायत्री छन्द है।

अग्नि मारुत शास्त्र का प्रतिपद् यह है :—

ऋतावान वैश्वानरं (आश्व० श्रौत सूत्र ८।१०)

इसमें 'वैश्वानरं महान्' में महद् शब्द आया है। यह आठवें दिन का रूप है।

मरुतों का निविद सूक्त यह है :—

क्रीडं वः शर्धो मारुतम्। (ऋ० १।३७)

इसमें 'वावृध' शब्द आया है। वृधन' आठवें दिन का रूप है।

जातवेद मंत्र वही है :—जातवेदसे सुनवाम...

जातवेद का निविद सूक्त यह है :—

"अग्ने मृडमहाँ असि"। (ऋ० ४६)

इसमें 'महद्' आया है। यह आठवें दिन का रूप है।

यह सब गायत्री छन्द में हैं, इस त्र्यह के तीसरे सवन का वाहक छन्द गायत्री है। (४)

ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवीं पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

२०—यह जो समानोदर्क है वह नवें दिन का रूप है यह वही है जो तीसरे दिन का। इसकी विशेषतायें यह हैं :—

अश्व, अन्त, पुनरावृत्ति, पुनर्निनृति, रमण करना, पर्यास, तीन की संख्या, अन्त का रूप, अन्त के पद में देवता का निर्वचन, स्वर्ग लोक का उल्लेख, शुचि, सत्य, चेति अर्थात् रहना, गत (गुज़र जाना), ओक (घर) और भूतकालिक क्रिया। यह तीसरे दिन के रूप है। यही नवें दिन के भी।

नवें दिन का आज्य सूक्त यह हैं :—

अगन्म महा नमसा यविष्ठम् (ऋ० ७।१२)

इसमें 'गत' शब्द है। यह नवें दिन का रूप है। छन्द त्रिष्टुभ् है। इस त्र्यह के प्रातः सवन का छन्द त्रिष्टुभ् है।

प्र उग शस्त्र के मंत्र यह हैं:—

प्र-वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः। वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसोमदाय ॥ (ऋ० ७।९०।१)

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः
क्रतुना वहन्ति । इन्द्रवायू वीरवाहं रथं
वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ (ऋ० ७।९०।५)

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्। हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त । (ऋ० ७।६४ १)

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥
सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठाऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥
यानि स्थान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥
(ऋ० ७।७०।१-३)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः । पिबत्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥

ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् । अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधाम इन्द्र शृणवो हवेमा । (ऋ० ७।२९।१-३)

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु । प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च । ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके । यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥

(ऋ० ७।४२।१-३)

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने । सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती । आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वऽनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः । सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ (ऋ० १०।१७।७-९)

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् । हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् । सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः । ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ (ऋ० ५।४३।११—१३)

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् । जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥

(ऋ० ६।६१।१४)

इन मंत्रों में शुचि, सत्य, क्षेति, गत, ओक आये हैं। यह नवें दिन का रूप है। छन्द त्रिष्टुभ् है। इस त्र्यह के प्रातः सवन का छन्द त्रिष्टुभ् ही है।

जो तीसरे दिन के आतान हैं वही नवें के। वही नवें दिन का रूप हैं :—

अर्थात्

तं तमिद्राधसे मह...... (ऋ० ८।६८।७)

इन्द्रस्य सोमा......

इन्द्र नेदीय एदहि...... (ऋ० ८।५३।५)

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिः...... (ऋ० १।४०।५)

अग्निर्नेता त्वं सोमक्रतुभिः......

पिन्वंत्यपो...... (ऋ० १।६४।६)

न किः सुदासो रथम्...... (ऋ० ७।३२।१०)

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोमः (ऋ० ३।५०)

इस सूक्त में स्वाहाकार अन्त वाला है। 'अन्त' नवें दिन का रूप है।

गायन्साम नभन्यं यथावेः (ऋ० १।१७३)

इस सूक्त में "अर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत्" इसमें "स्वः" अन्त वाला है। अन्त नवें दिन का रूप है।

"तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना" (ऋ० ३।३५)

इसमें 'स्था' अन्त वाला है। और 'अन्त' नवें दिन का रूप है।

"इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोः" (ऋ० ६।२१)

इसमें "धियोरथेष्ठा" में 'स्था' अन्त वाला है। अन्त नवें दिन का रूप है।

यह त्रिष्टुभ् छन्द में हैं। इस प्रतिष्ठित पद से सवन को क़ायम रखता है और गिरने नहीं देता।

प्रमंदिने पितुमदर्चतावच......(ऋ० १।१०१)

यह सूक्त समानोदर्क है। यह नवें दिन का रूप हैं। यह जगती छन्द में है। इस त्र्यह के मध्य सवन का वाहक छन्द जगती है। जो छन्द वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। इस लिये निविद जगती छन्द में रक्खा गया है।

यह मिथुन सूक्त पढ़े गये, त्रिष्टुभ् भी और जगती भी। पशु मिथुन हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये यह पाँच सूक्त पढ़े जाते हैं। पंक्ति में पाँच पद होते हैं। यज्ञ पाँच पद वाला होता है। पशु पाँच पद वाले होते हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये ऐसा किया जाता है।

नवें दिन के बृहत् पृष्ठ यह हैं :—

त्वामिद्धि हवामहे...... (ऋ० ६।४६।१)

त्वं ह्येहि चेरवे...... (ऋ० ८।६१।७)

यह जगती छन्द में है। इस त्र्यह के मध्य सवन का वाहक छन्द जगती है। जो छन्द वाहक होता है उसी में निविद रक्खा जाता है। इसीलिये निविद जगती छन्द में रक्खा गया है।

मिथुन सूक्त पढ़े जाते हैं, त्रिष्टुभ् भी और जगती भी। पशु मिथुन है। पशु छन्दोम है। पशुओं को वृद्धि के लिये। पाँच सूक्त पढ़े जाते हैं। पंक्ति में पाँच पद होते हैं। यज्ञ में पाँच पद होते हैं। पशु पाँच पद वाले हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये।

दो बार पाँच पाँच दस हो जाते हैं। विराट् दश वाली है। अन्न विराट् है। पशु अन्न हैं। पशु छन्दोम है। पशुओं की वृद्धि के लिये।

वैश्वदेव के प्रति पद् और अनुचर क्रमशः यह है :—

तत्सवितुर्वर्णीमहे...... (ऋ० ५।८२।१)

अद्या नो देव सवितः...... (ऋ० ५।८२।४)

यह रथन्तर हैं। यह नवें दिन का रूप है।

सविता का निविद सूक्त यह हैं :—

दोषो आगात्......(?)

इसमें "सावित्रमंतो वैगतम्" अन्त वाला है। 'अन्त' नवें दिन का रूप है।

द्यावा पृथिवी का निविद यह है।

प्र वां महि द्यवी अभिः...(ऋ० ४।५६।५-७)

इसमें 'शुची उप प्रशस्त' में 'शुचि' शब्द आया है। यह नवें दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद यह हैं।

इन्द्र इषे ददातु नः। (ऋ० ८।९३।३४)

ते नो रत्नानि धत्तन (ऋ० १।२०।७-८)

इसमें 'त्रि' शब्द आया है। यह नवें दिन का रूप है।

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युव......(ऋ० ८।२९)

दो पद वाले मंत्र हैं। मनुष्य दो पाया है। पशु चौपाये हैं। पशु छन्दोम हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये। दो पद वाले वाले मंत्र इस लिये पढ़े जाते हैं कि यजमान की पशुओं में प्रतिष्ठा हो।

वैश्व देवों का निविद सूक्त यह है :—

ये त्रिंशति त्रयस्परः......(ऋ० ८।१२)

इसमें 'त्रि' शब्द आया है। यह नवें दिन का रूप है। यह गायत्री छन्द में हैं। इस त्र्यह के तीसरे सवन का छन्द गायत्री है।

अग्नि मारुत शस्त्र का प्रतिपद यह है :—

वैश्वानरो न ऊतये......(आश्व० ८।११)

इसमें 'आ प्रयातु परावत' में 'परावत' अन्त वाला है। 'अन्त' नवें दिन का रूप है।

मरुतों का निविद यह है : –

मरुतो यस्य हि क्षये......(ऋ० १।८६)

इसमें 'क्षेति' अन्त वाला है। 'अन्त' नवें दिन का रूप है। मानों कोई किसी स्थान पर जाकर पहुँचता है।

जातवेद का मन्त्र वही है :—

जातवेदसे सुनवाम सोमम्......(ऋ० १।९९)

जातवेद का निविद सूक्त यह है :—

प्राग्नये वाचमीरय (ऋ० १०।१८७)

यह समानोदर्क है। यह नवें दिन का रूप है। "सनः पर्षदति द्विषः" इस पद का दो बार पाठ करता है। इस नवरात्र में बहुत से कृत्य हैं और चूक होना सम्भव है। इसलिए "सनः पर्षदति द्विषः" (यह अग्नि हमारे शत्रुओं पर विजयी हो और

हमारे यज्ञ को अन्त तक पहुँचावे) इस पद का बार-बार पाठ करता है, जिससे शान्ति हो जाय। ऐसा करने से वह उन सब को पाप से छुड़ा देता है। यह गायत्री छन्द में है। इस त्र्यह के तीसरे सवन का छन्द गायत्री है। (२)

२२—पृष्ठ्य षडह (द्वादशाह के पहले छः दिन) मुख्य हैं। और (सातवाँ, आठवाँ, नवाँ दिन) अर्थात् छन्दोमा मुख के भाग हैं। जैसे जिह्वा, तालु, दाँत। दशवाँ दिन ऐसा है जिससे वाणी की विवेचना होती है या स्वादु और बेस्वादु जाना जाता है। या पृष्ठ्य षडह नाक के नथुनों के समान हैं। और छन्दोमा उसके जो नथनों के बीच में हो। और दशवाँ दिन ऐसा है जिसके द्वारा गंधों की पहचान की जाती है। या पृष्ठ्य षडह आँखों के समान है। छन्दोमा आँख के काले भाग के समान है और दसवाँ दिन पुतली के समान, जिससे देखते हैं।

या पृष्ठ्य षडह कान के समान है। छन्दोमा कान के भीतर का आकाश है। और दसवाँ दिन वह है जिससे सुनते हैं।

दसवाँ दिन श्री है। जो दसवें दिन में प्रवेश करते हैं वे श्रीमान् होते हैं। दसवें दिन मौन रहते हैं। श्री से कोई नहीं बोलता। श्री बोलने की चीज नहीं है।

अब ऋत्विज् लोग चलते हैं, स्नान करते है और पत्नीशाला में जाते हैं। उनमें से जो इस आहुति को जाने वह कहे, "समन्वारभध्वम्।"

"इह रमेहरमध्वमिह धृतिरिहस्वधृतिरग्ने-वाट् स्वाहा वाट्"

अब इस मन्त्र को पढ़ कर आहुति दे :—

"इत रम" (यहाँ रमण कर) से उन सब यजमानों को

जो इस लोक में हैं खुश करता है। "इह रमध्व" से इन लोकों में सन्तान को खुश करता है।

"इह धृतिः, इहस्वधृतिः" से यजमानों को प्रजा और वाणी धारण कराता है। 'अग्ने वाट्' रथन्तर है। और 'स्वाहावाट्' बृहत् साम है। रथन्तर और बृहत् देवों के मिथुन हैं। मिथुन से मिथुन होता है और सन्तान होती है। उत्पत्ति के लिये ऐसा किया जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशुओं से सम्पन्न होता है।

अब वे सब चलते हैं और स्नान कर के अग्नीध्र के स्थान को जाते हैं। उनमें से जो इस आहुति को जानता हो वह कहे "समन्वारभध्वम्" और यह पढ़ कर आहुति दे :—

"उपसृज धरुणं मातरं धरुणोधयन्। रायस्पोषमिषमूर्जमस्मासुदीधरत् स्वाहा"।

जो इस रहस्य को समझ कर आहुति देता है वह अपने लिये और यजमानों के लिये धन, शक्ति, स्वास्थ्य और तेज प्राप्त कर लेता है। (२)

२३—वे वहाँ से चलते हैं। और सदस् में पहुँचते हैं। (उत्तर वेदी के दक्षिण पूर्वी कोने में एक स्थान होता है उसे सदस् कहते हैं)। जिधर को जो चाहें उधर को ही (अर्थात् यह नियम नहीं है कि इसी दिशा में चलें)। अन्य ऋत्विज् भिन्न भिन्न दिशाओं में चलते हैं। लेकिन उद्गाता लोग साथ चलते हैं। वे सर्पराज्ञी वाली ऋचायें पढ़ते हैं। यह (पृथिवी) सर्पराज्ञी है क्योंकि जितने चलने वाले हैं उन सब की रानी है। यह पृथिवी पहले अलोमिका (रोम रहित या वृक्ष आदि रहित) थी। उसने तब यह मंत्र देखा :—

आयं गौः पृश्निरक्रमीत् (ऋ० १०।१८९)

तब उसमें पृश्निवर्ण (चित्र विचित्र रंगों) ने प्रवेश किया। नाना रूपों में से जिस किसी की कामना की, ओषधि, वनस्पति इत्यादि सभी रूप इसमें आ गये। जो इस रहस्य को समझता है वह नाना रूपों को अपनी कामना के अनुसार प्राप्त कर सकता है।

प्रस्तोता मौन होकर (मन से) पढ़ता है। उद्गाता मौन होकर पढ़ता है। प्रतिहर्ता मौन होकर पढ़ता है। होता वाणी से (ज़ोर ज़ोर से) पढ़ता है। वाक् और मन देवों के मिथुन हैं। देवों के इस मिथुन से मिथुन की उन्नति होती है। देवों के मिथुन से मिथुन पैदा होता है। जो इस रहस्य को समझता है वह सन्तान और पशुओं से युक्त होता है।

अब होता चतुर्होत्री मन्त्रों को पढ़ता है। उद्गाता के स्तोत्र के साथ साथ पढ़ता है।

चतुर्होत्री में देवों का जो यज्ञ का नाम था वह छिपा हुआ था। होता उनको प्रकट करता है। देवों का जो यज्ञ का नाम है उसे प्रकाशित करता है। उस प्रकाशित को प्रकाशित करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रकाशित हो जाता है।

जिस वेदपाठी ब्राह्मण को यश न प्राप्त हो, वह वन में जावे, दर्भ घास के सिरों को बाँध ले और एक दूसरे ब्राह्मण के दक्षिण की ओर बैठ कर चतुर्होत्री के मंत्रों को ज़ोर ज़ोर से पढ़े। चतुर्होत्री में देवों का यज्ञ का नाम छिपा हुआ रहता है। चतुर्होत्री पढ़ने से वह नाम प्रकाशित हो जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रकाशित हो जाता है। (३)

२४—अब उदम्बर वृक्ष की शाखा को (जो यज्ञशाला में उद्गाता के आसन के पीछे रक्खी रहती है) छूते हैं। यह सोचकर कि हम 'अन्न और रस' को छू रहे हैं। क्योंकि उदुम्बर वृक्ष 'अन्न और रस' है। जब देवों ने 'अन्न और रस'

को पृथ्वी में बाँटा तो उदुम्बर वृक्ष उत्पन्न हुआ। इसलिये उदुम्बर साल में तीन बार फल लाता है। उदुम्बर की शाखा लेते हैं तो मानो अन्न और रस लेते हैं।

वाणी को रोकते हैं। वाणी ही यज्ञ है। यज्ञ को रोकने से मानों दिन को रोकते हैं। दिन स्वर्गलोक है इसलिये मानो स्वर्गलोक को लेते हैं।

दिन में वाणी न बोलें। अगर वह दिन में वाणी बोलेंगे तो दिन को शत्रुओं के हवाले कर देंगे। रात में वाणी न बोलें। यदि रात में वाणी बोलेंगे तो रात को शत्रुओं के हवाले कर देंगे। केवल जब सूर्य्य अध-छिपा हो वाणी बोलें। तब वे शत्रु के लिये केवल इतना समय छोड़ते हैं (जितना रात और दिन के बीच का है)। या उस समय बोलें जब सूर्य्य बिल्कुल डूब जाय। इससे वे शत्रु को अँधेरे का हिस्सेदार कर लेते हैं। आहवनीय अग्नि के चारों ओर घूम कर बोलते हैं। आहवनीय यज्ञ है। आहवनीय स्वर्गलोक है। यज्ञ रूपी स्वर्गलोक से स्वर्गलोक को जाते हैं।

वे यह कह कर बोलते हैं:—"यदि होनमकर्मयदत्यरीरिचाम, प्रजापतिं तत् पितरमप्येतु"। (जो कुछ हमसे छूट गया हो या अधिक हो गया हो वह हमारे पिता प्रजापति को पहुँच जावे)।

सब प्रजा प्रजापति के पीछे उत्पन्न होती है। इसलिये प्रजापति कम बढ़ के दोष का रक्षक है। और कमी या बढ़ती यजमान को हानि नहीं पहुँचाने पाती। जो इस रहस्य को समझ कर वाणी बोलता है उसकी कमी या बढ़ती प्रजापति को पहुँचती है। इसलिये इस मंत्र को पढ़कर ही वाणी बोलनी चाहिये। (४)

२५—चतुर्होत्री कहने वाला पुकारता है, "हे अध्वर्यु"। यही उचित "आहाव" है। ('शौंसावोम्' इस अवसर के लिये उचित आहाव नहीं है)।

अध्वर्यु कहता है, "ओ३म् होतः" या "तथा होतः"। अब होता चतुर्होत्री को दुहराता है। दस पदों में से हर एक पर ठहरता हुआ :—

(१) तेषां चित्तिः स्रुगासी३त्। (उनकी बुद्धि स्रुक् थी)
(२) चित्तमाज्यमासी३त्। (चित्त आज्य था)
(३) वाग्वेदिरासी३त्। (वाणी वेदि थी)
(४) आधीतं बर्हिरासी३त्। (पढ़ा हुआ आसन था)
(५) केतोऽअग्निरासी३त्। (समझ अग्नि थी)
(६) विज्ञातमग्नीध्ररासी३त्। (विज्ञान अग्नीध्र था)
(७) प्राणो हविरासी३त्। (प्राण हवि था)
(८) सामाध्वर्युरासी३त् (साम अध्वर्यु था)
(९) वाचस्पतिर्होतासी३त्। (वाचस्पति होता था)
(१०) मन उपवक्तासी३त्। (मन उपवक्ता या मैत्रावरुण था)
(११) ते वा एतं ग्रहमगृह्णत। (उन्होंने ग्रह को लिया)
(१२) वाचस्पते विधे नामन् (हे वाचस्पति, हे विधि, हे नाम)
(१३) विधेम ते नाम। (हम तेरा नाम लें)
(१४) विधेस्त्वमस्माकं नाम्ना द्यां गच्छ। (तू हमारे नाम से द्यौ लोक को जा)
(१५) यां देवाः प्रजापतिगृहपतय ऋद्धिमराध्नुवंस्तामृद्धि रात्स्यामः। (देव और प्रजापति गृहपतियों ने जो ऋद्धि प्राप्त की उसी ऋद्धि को हम भी प्राप्त करें)

अब होता "प्रजापतेस्तनूः" और 'ब्रह्मोद्य' मन्त्रों को पढ़ता है। (प्रजापतेस्तनू मन्त्र १२ हैं। यह दो दो कर के पढ़े जाते हैं।)

(१, २) अन्नादा चान्न पत्नी च। (अन्न खाने वाली और अन्न की पत्नी)। अन्न खाने वाली अग्नि है और अन्न पत्नी आदित्य।

(३, ४) भद्रा च कल्याणी च। 'भद्र' सोम है और 'कल्याणी' पशु हैं।

(५, ६) अनिलया चापभयाच। (घर रहित और भय रहित)। घर रहित वायु है क्योंकि किसी एक जगह नहीं ठहरती। और भय रहित मृत्यु है क्यों सब उससे डरते हैं।

(७, ८) अनाप्ता चा अनाप्या च। (प्राप्त न की हुई और प्राप्त न की जाने वाली) अनाप्ता पृथ्वी है और अनाप्या द्यौ।

(९, १०) अनाधृष्याचाप्रतिधृष्याच। (न जीते जाने वाली और न रुकने वाली)। न जीते जाने वाली अग्नि है और न रुकने वाला सूर्य।

(११, १२) अपूर्वाचाभ्रातृव्या च (जिसका कोई कारण नहीं और जो नाश नहीं हो सकता)। जिसका कोई कारण नहीं वह मन है। और जो नष्ट न हो सके वह संवत्सर है।

यह बारह प्रजापति के तनु या शरीर हैं। प्रजापति पूरा है। दसवें दिन पूरे प्रजापति को प्राप्त होते हैं।

अब 'ब्रह्मोद्यम्' को पढ़ते हैं :—

"अग्निर्गृहपतिरिति हैक आहुः सोस्य लोकस्य गृहपतिर्वायुर्गृहपतिरिति हैक आहुः सोंतरिक्षलोकस्य गृहपतिरसौ वै गृहपतिर्यो सौ तपत्येष पतिर्ऋतवोगृहाः। येषां वै गृहपतिं देवं विद्वान् गृहपतिर्भवति राध्नोति स गृहपतीराध्नुवंति ते यजमानाः। येषां वा अपहतपाप्मानं देवं विद्वान् गृहपतिर्भवत्यप स गृहपतिः पाप्मानं हते ऽ पतेयजमानाः पाप्मानं घ्नतेऽध्वर्यो अरात्स्मारात्स्म"।

"अग्नि गृहपति है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं क्योंकि अग्नि इस लोक का गृहपति है। कुछ लोग कहते हैं कि वायु गृहपति है

क्योंकि वह अंतरिक्ष का गृहपति है। यह जो सूर्य्य है वह गृहपति है क्योंकि यह तपता है। ऋतु गृह हैं। जो जानता है कि ऋतुओं का गृहपति कौन है वह सफल होता है। ऐसे यजमान सफल होते हैं। जो उस देव को जानता है जो पाप की बुराइयों को दूर करता है (अर्थात् सूर्य्य) वह गृहपति होता है। ये यजमान पाप की बुराई को दूर कर देते हैं। हे अध्वर्यु, हम सफल हो गये, हम सफल हो गये।" (४)

ऐतेरय ब्राह्मण की पाँचवीं पंचिका का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पांचवाँ अध्याय

२६—(अग्निहोत्री अध्वर्यु से) शाम को कहता है:—"आहवनीय अग्नि में से ले।"। जो कुछ दिन में अच्छा काम किया उसको पूर्व की ओर ले जाकर भयरहित स्थान में रख देता है। सवेरे कहता है, "आहवनीय अग्नि में से ले।" जो कुछ रात में अच्छा काम करता है उसको पूर्व में ले जाकर निर्भय स्थान में रख देता है। आहवनीय यज्ञ है। आहवनीय स्वर्ग लोक है। जो इस रहस्य को समझता है वह यज्ञ रूपी स्वर्ग लोक को स्वर्ग में स्थापित कर देता है।

जो सब देवों वाले, सोलह कला वाले, पशुओं में प्रतिष्ठित यज्ञ को जानता है वह सब देवों वाले, सोलह कला वाले और पशुओं में प्रतिष्ठित यज्ञ के द्वारा सफल होता है।

जो गाय में है वह रुद्र का है। जो बछड़े में है वह वायु का है। जो दुहा जाने को है वह अश्विनों का, जो दुहा जा चुका वह सोम का है। जो आग पर पकाने रक्खा वह वरुण का है। जो उबलता है वह पूषा का है। जो टपक रहा है वह

मरुतों का। जिस पर फेन उठता है वह विश्वेदेवों का है। मलाई मित्र की है। जो गिर पड़े वह द्यावापृथिवी का है। जो उबल पड़े वह सविता का, जो ले लिया गया वह विष्णु का। जो वेदी पर रक्खा जाता है वह बृहस्पति का है। पहली आहुति अग्नि की। पिछली प्रजापति की। जो आहुति हो चुकी वह इंद्र की। इस प्रकार यह सब देवों का, सोलह कला वाला और पशुओं में प्रतिष्ठित अग्निहोत्र है। जो इस सब देवों वाले, सोलह कला वाले, पशुओं में प्रतिष्ठित अग्निहोत्र को जानता है वह सफल होता है। (१)

२७—अगर एक अग्निहोत्री की गाय जो बछड़ा के साथ है दूध दुहने के समय बैठ जाय तो इसका क्या प्रायश्चित्त है? तब यह मंत्र पढ़े :—

"यस्माद्भीषा निषीदसि ततो नो अभयं कृधि।
पशून्नः सर्वान् गोपाय नमो रुद्राय मीढ्ढुष।"

"जिससे डर कर तू बैठती है उससे हम को अभय करो। हमारे सब पशुओं की रक्षा कर। दानी रुद्र के लिये नमस्कार हो।"

इस मंत्र को पढ़कर उठावे :—

"उदस्थाद् देव्यदितिरायुर्यज्ञपतावधात्। इंद्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय च।"

"देवी अदिति उठी। और यजमान को दीर्घ जीवन दिया। इन्द्र, मित्र और वरुण को भाग देती हुई।"

या उसके थन और मुख पर जलपात्र रखकर उसको ब्राह्मण को दे देवे। यह दूसरा प्रायश्चित्त है।

अगर किसी अग्निहोत्री की गाय जो बछड़े से युक्त है दुहते में चिल्ला पड़े तो क्या प्रायश्चित्त है? यदि भूख से चिल्ला पड़े और यजमान को प्रकट करे कि उसको क्या जरूरत है तो

अधिक भोजन दे देवे। शान्ति के लिये। अन्न शान्ति है। और यह मंत्र बोले :—

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमध्न्ये विश्वधनीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्त॥
(ऋ० १।१६४।४०)

"बैठ और भगवती हो जिससे हम भी भगवन्त होवें। हे गौ, हर ऋतु में तृण खा। हमारे पास आती हुई शुद्ध जल पी।"

यह प्रायश्चित्त है।

जिस अग्निहोत्री की बछड़े से युक्त गाय हिल जाय उसका क्या प्रायश्चित्त है? यदि हिलकर दूध फैला दे तो उसे छूकर यह मंत्र जपे :—

यदद्य दुग्धं पृथिवीमसृप्तय दोषधीरत्यसृपद् यदापः। पयो गृहेषु पयो अघ्नयायां पयोवत्सेषु पयो अस्तु तन् मयि॥

"जो दूध आज ज़मीन पर फैल गया या ओषधि में मिल गया या जल में मिल गया वह दूध घरों में, वह गायों में, वह बछड़ों में, वह मुझ में हो।"

अब जो दूध बच रहे वह अगर काफी हो तो उसकी आहुति दे दे। और अगर सब फैल गया हो तो दूसरी गाय मँगा कर दुहें और तब उसकी आहुति दें। श्रद्धा से हवन करना चाहिये। यह प्रायश्चित्त है। जो इस रहस्य को समझकर अग्निहोत्र करता है उसको सब सामग्री मिल जाती है और उसे सभी चीज़ों की प्राप्ति हो जाती है। (२)

२८—आदित्य इसका यूप है। पृथिवी वेदी है। ओषधि बर्हि हैं। वनस्पति ईंधन है। जल प्रोक्षणी है। दिशायें परिधि हैं. अगर अग्निहोत्री की कोई चीज़ खो जाय या वह मर जाय, या उसका कुछ नष्ट हो जाय तो यह सब उसको परलोक में

बर्हि पर रक्खा मिलेगा। जो इस रहस्य को समझकर अग्निहोत्र करता है उसे यह सब कुछ मिल जाता है।

देव और मनुष्य दोनों को और सब को (एक के प्रति दूसरे को) दक्षिणा में देता है। जो कुछ शाम को आहुति दी जाती है। उससे देवों के लिये मनुष्यों तथा और सब चीज़ की दक्षिणा देता है। ये जो मनुष्य बिना रक्षा के सोते हैं वे मानों देवताओं के लिये दक्षिणा हैं। जो कुछ प्रातःकाल हवन किया जाता है वह मानों मनुष्यों के लिये देवताओं की तथा अन्य चीज़ों की दक्षिणा देता है। देवता (मन की बात) जान जाते हैं और कहते हैं कि "मैं करूँगा", "मैं जाऊँगा।"

जो लोक सब कुछ देवताओं को देकर प्राप्त होता है वही लोक उसको मिलता है जो इस रहस्य को समझ कर अग्निहोत्र करता है।

शाम की आहुति देकर अश्विन-शस्त्र का आरम्भ करता है। 'वाक्' 'वाक्' कह कर वाणी का प्रतिगार (response) करता है। जो इस रहस्य को समझ कर अग्निहोत्र करता है उसके अग्नि रात को अश्विन-शस्त्र का पाठ करता है।

प्रातःकाल आदित्य के लिये आहुति देकर महाव्रत करता है। 'अन्न' 'अन्न' कह कर वह 'प्राण' का प्रतिगार करता है। जो इस रहस्य को समझ कर अग्निहोत्र करता है, उसके लिये आदित्य दिन में महाव्रत के शस्त्र का पाठ करता है। अग्निहोत्री वर्ष में ७२० आहुतियाँ शाम को देता है और ७२० सवेरे। इतनी ही 'गवां अयन' में ईंटें होती हैं। जो इस रहस्य को समझ कर अग्नि होत्र करता है वह अग्नि चिति द्वारा साल भर तक यज्ञ करता है। (३)

२९—'जातूकर्ण' के पुत्र 'वतवत' के पुत्र 'वृषशुष्म' ने कहा,

"हम देवतों से कहेंगे कि जो अग्निहोत्र दोनों दिन (उभयेद्यु) किया जाता है वह तीसरे दिन (अन्येद्यु) किया जाय।"

गन्धर्वगृहीता नामी कुमारी ने कहा, "हम पितरों से कहेंगे कि जो अग्निहोत्र दोनों दिन किया जाता है वह तीसरे दिन किया जाय।"

जो अग्निहोत्र तीसरे दिन किया जाता है वह शाम को सूर्य्यास्त के बाद और सबेरे को सूर्य्योदय से पहले किया जाता है। और जो अग्निहोत्र दोनों दिन किया जाता है वह सूर्य्यास्त से पहले और सूर्य्योदय के बाद। इसलिये अग्नि-होत्र सूर्य्य-उदय के बाद करना चाहिये।

जो सूर्य्य-उदय से पहले अग्निहोत्र करता है वह चौबीस वर्ष में गायत्री लोक को प्राप्त हो जाता है। और सूर्योदय के बाद करने वाला बारहवर्ष में। जो सूर्योदय से पहले दो साल अग्निहोत्र करता है वह सूर्योदय के बाद एक साल अग्निहोत्र करने के बराबर है। जो इस रहस्य को समझ कर सूर्य्योदय पर अग्निहोत्र करता है वह एक साल में ही इतना समाप्त कर लेता है। इसलिये सूर्य्योदय पर अग्नि-होत्र करना चाहिये।

जो शाम को सूर्य्यास्त के बाद और प्रातःकाल सूर्य्योदय के बाद अग्निहोत्र करता है वह अहोरात्र (दिन रात) के तेज में हवन करता है। रात्रि अग्नि से तेज लेती है और दिन सूर्य्य से। जो इस रहस्य को समझ कर सूर्य्योदय पर अग्नि-होत्र करता है उसका हवन अहोरात्र (रात दिन) के तेज में होता है। इसलिये सूर्य्योदय पर हवन करना चाहिये। (४)

२०—यह जो दिन रात हैं वे साल के दो चक्र हैं। उन्हीं दोनों चक्रों (पहियों) के द्वारा संवत्सर चलता है। जो सूर्य्योदय से पहले अग्निहोत्र करता है वह ऐसा है जैसे मानों एक चक्र से चलता हो। परन्तु जो सूर्य्योदय के बाद हवन करता है

वह मानों दोनों पहियों से चलता है और निर्दिष्ट स्थान पर जल्दी पहुँचता है।

इस सम्बन्ध में एक यज्ञगाथा कही जाती है :—

"यह जो कुछ है और होगा वह बृहत् साम और रथन्तर साम से युक्त है। और उसी से स्थित है। धीर पुरुष अग्नि का आधान कर के दिन में अलग हवन करे और रात में अलग।" रात रथन्तरी है और दिन बृहत्। अग्नि रथन्तरी और सूर्य्य बृहत्। जो इस रहस्य को समझ कर सूर्य्योदय के पश्चात् हवन करता है उसको यह दोनों देवते तेजोयुक्त स्वर्गलोक (ब्रध्नस्य विष्टपं) को पहुँचा देते हैं। इसलिये सूर्य्योदय पर हवन करना चाहिये।

एक और गाथा गाई जाती है :—

"जो सूर्य्योदय से पहले अग्निहोत्र करते हैं वे उस आदमी के बराबर हैं जो एक घोड़े से काम चलाता है और दूसरे को नहीं खरीदता।"

जब यह देवता (सूर्य्य) फैलता है तो सब उसके पीछे चलते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसके पीछे यह देवता चलता है। और सब उस देवते के पीछे चलते हैं। जो इस प्रकार हवन करता है उसका यह (सूर्य्य) एकमात्र अतिथि होता है।

इस पर एक गाथा है :—

"जिसने कमलों को चुराया या जिसने शाम को अतिथि का स्वागत नहीं किया वह इस पाप से निष्पाप को पापी बना देगा और पापी से पाप का निराकरण कर देगा" (अर्थात् उसके कार्य्य उलट पलट हो जायँगे)।

यह आदित्य ही एकमात्र अतिथि है। यह हवन करने वाले के साथ रहता है। जो इस देवता को बिना आहुति दिये

हुये समझता है कि मैंने अग्निहोत्र कर लिया और जो इस देवता को आहुति से वंचित कर देता है, उसको यह देवता भी इस लोक और परलोक दोनों से निकाल देता है। इसलिए जो समझे कि इतना ही अग्निहोत्र काफी है, उसे इस देवता को भी आहुति देनी चाहिये। इसलिये कहते हैं कि शाम के अतिथि को लौटाना न चाहिये।

एक बार नगरी के रहने वाले एक विद्वान् जानश्रुतेय ने मनतन्तु की सन्तान एकादशाक्ष से कहा था, "हम सन्तान से पहचानते हैं कि किसी ने समझ कर यज्ञ किया या बेसमझे।"

एकादशाक्ष के इतने लड़के थे कि सारा राज्य भर जाय। जो सूर्य्योदय के पश्चात् हवन करता है उसके भी इतनी ही सन्तान होती है। (५)

३१—उदय होकर सूर्य्य अपनी रश्मियों को आहवनीय में मिला देता है। इसलिये जो सूर्य्योदय से पहले अग्निहोत्र करता है, वह उस कुमारी के समान है जो अभी उत्पन्न न हुये बच्चे को दूध पिलावे या गाय न उत्पन्न हुये बछड़े को थन दे। लेकिन जो सूर्य्योदय के बाद अग्निहोत्र करता है वह उस कुमारी के समान है जो उत्पन्न हुये बच्चे को दूध पिलाती है। या उस गाय के समान है जो उत्पन्न हुये बछड़े को थन देती है।

इस प्रकार सूर्य्य के लिये जो अग्निहोत्र किया जाता है उसके बदले सूर्य्य अग्निहोत्री को इस लोक और परलोक दोनों में खाना देता है। सूर्य्योदय से पहले अग्निहोत्र करना ऐसा है जैसा उस आदमी या हाथी के सामने खाना फेंकना जो अपना कर नहीं बढ़ा रहा। लेकिन सूर्य्योदय के पश्चात् अग्निहोत्र करना ऐसा है जैसे उस आदमी या हाथी के सामने खाना रखना जो अपने करों (हाथ या सूंड) को फैला रहा

हो। जो इस रहस्य को समझ कर सूर्य्योदय के पश्चात् अग्नि-होत्र करता है वह सूर्य्य के करों से अपने अग्निहोत्र को उठाता है और स्वर्ग लोक में रख देता है। इसलिये सूर्य्योदय पर अग्नि-होत्र करना चाहिये।

उदय होने पर सूर्य्य सब चीजों को प्राण देता है। इस लिये उसको प्राण कहते हैं। जो इस रहस्य को समझ कर सूर्य्योदय के पश्चात् अग्निहोत्र करता है उसकी आहुतियाँ इसी प्राण (सूर्य) में स्थित रहती हैं। इसलिये सूर्य्योदय के पश्चात् अग्निहोत्र करना चाहिये। जो सायंकाल को सूर्य्यास्त पर और प्रातःकाल सूर्य्योदय पर अग्निहोत्र करता है वह सत्य बोलता है। सायंकाल की आहुति यह है :—

भूर्भुवः स्वरो३मग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः।

प्रातःकाल की आहुति यह है :—

भूर्भुवः स्वरों सूर्य्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः॥

सच्चा आदमी सूर्य्योदय पर अग्निहोत्र करके सच्ची आहुति देता है। इसलिये सूर्य्योदय पर अग्निहोत्र करना चाहिये। इसके विषय में यह गाथा कही जाती है। "जो सूर्य्योदय से पहले अग्निहोत्र करते हैं वह झूठ बोलते हैं क्योंकि जो दिन की बात है वह दिन में नहीं करते। वह सूर्य्य की ज्योति का पाठ करते हैं और उनके पास उस समय ज्योति नहीं होती।" (६)

३२—प्रजापति ने चाहा कि मैं सन्तान उत्पन्न करूँ और बहुत हो जाऊँ। उसने तप तपा। उसने तप करके इन लोकों को उत्पन्न किया। पृथिवी को, अन्तरिक्ष को, द्यौ को। उन लोकों को गर्म किया। उन तपे हुओं से तीन ज्योतियां उत्पन्न हुईं। पृथिवी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्यौ से सूर्य्य। उन तीनों ज्योतियों को तपा और उनसे तीन वेद उत्पन्न हुये।

अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद। उसने इन वेदों को तपा। इनसे तीन शुक्र उत्पन्न हुये। ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, सामवेद से स्वः। उसने इन तीन शुक्रों को तपा। उनसे तीन वर्ण उत्पन्न हुये अकार, उकार और मकार। उसने तीनों को जोड़ दिया। इससे ओ३म् हुआ। इसलिये ओम् ओम कहता है। ओ३म् स्वर्गलोक है। और ओ३म् वह है जो तपता है (अर्थात् सूर्य्य)। प्रजापति ने यज्ञ ताना। यज्ञ को लिया और यज्ञ किया। उसने ऋग्वेद से होता का काम किया। यजुः से अध्वर्यु का और साम से उद्गाता का। इन तीन विद्याओं में जो शुक्र (वीर्य) था उससे ब्रह्मत्व को उत्पन्न किया।

उस प्रजापति ने यज्ञ देवों को दिया। उन देवों ने यज्ञ को ताना, यज्ञ को लिया और यज्ञ को किया। ऋग्वेद से होता का काम किया, यजुर्वेद से अध्वर्यु का और सामवेद से उद्गाता का। इन तीन विद्याओं के शुक्र से ब्रह्मत्व को उत्पन्न किया।

देवों ने प्रजापति से पूछा कि अगर हमसे ऋग्वेद में कोई चूक हो जाय या यजुर्वेद में या साम में, भूल से या आपत् काल में तो क्या प्रायश्चित्त है। प्रजापति ने देवों से कहा, "अगर ऋग्वेद में कोई भूल हो जाय तो 'भूः' से गार्हपत्य अग्नि में आहुति दो। अगर यजुः में भूल हो जाय तो 'भुवः' से अग्नीध्रीय अग्नि में या अन्वाहार्यपचन अर्थात् दक्षिणाग्नि में आहुति दो। अगर साम में भूल हो जाय तो 'स्वः' से आहवनीय में। यदि बेजाने या आपत्ति के कारण भूल हो जाय तो आहवनीय अग्नि में भूर्भुवः स्वः तीनों से। यह तीन व्याहृतियों द्वारा यज्ञ की बिखरी हुई चीजों को ऐसे जोड़ते हैं जैसे एक चीज को दूसरी से। एक टुकड़े को दूसरे से। एक कड़ी को

दूसरी से। या चमड़े या किसी चीज़ के टुकड़ों को। यह व्याहृतियां सब के लिये प्रायश्चित्त हैं। इन व्याहृतियों से ही प्रायश्चित्त करना चाहिये। (७)

३३—इस पर महावाद (बड़े लोग) पूछते हैं :—"जब ऋग्वेद से होता का काम किया जाता है, यजुर्वेद से अध्वर्यु का और सामवेद से उद्गाता का, और इस प्रकार त्रयीविद्या पूर्ण हो जाती है तो ब्रह्मा का काम किससे किया जाता है ?" इसका उत्तर यह है, "त्रयी विद्या से ही"।

यह जो बहता है (पवन) वह यज्ञ है। इसके दो मार्ग हैं एक वाणी दूसरा मन। वाणी और मन से यज्ञ किया जाता है। यह वाणी हुई। यह मन हुआ। वाणी से त्रयी विद्या द्वारा ऋत्विज लोग एक पक्ष को करते हैं। परन्तु ब्रह्मा केवल मन से काम करता है।

कुछ ब्राह्मण प्रातरनुवाक की तैयारी पर स्तोम भागों को जपकर बैठ जाते हैं और बातचीत करते हैं।

एक ब्राह्मण ने ब्रह्मा को प्रातरनुवाक के बाद बोलते देखकर कहा था कि इसने यज्ञ का आधा भाग लुप्त कर दिया। जैसे एक पैर से चलने वाला मनुष्य या एक पहिये से चलने वाला रथ गिर पड़ता है उसी प्रकार यज्ञ भ्रष्ट हो जाता है और उसके साथ यजमान भी भ्रष्ट हो जाता है (यदि ब्रह्मा बोलता है क्योंकि उसे मौन रहना चाहिये)। इसलिये ब्रह्मा को प्रातरनुवाक के आदेश देने के बाद बोलना नहीं चाहिये। जब तक उपांशु और अन्तर्याम से आहुतियां न दी जायं। पवमान स्तोत्र के आदेश के बाद भी जब तक अन्त की ऋचा न बोली जाय (मौन रहना चाहिये)। जब स्तोत्र और शस्त्र पढ़े जाते हों तब वषट्कार तक मौन रहे। जैसे दोनों पैरों से चलने वाला आदमी और दोनों पहियों से चलने वाला रथ गिरता

नहीं। इसी प्रकार इस तरह यज्ञ करने से यज्ञ भ्रष्ट न होगा और न यजमान ही उसके साथ भ्रष्ट होगा। (८)

३४ – इस पर प्रश्न उठाते हैं कि जब अध्वर्यु को दक्षिणा दी जाती है तो यजमान समझता है कि इसने मेरे बजाय मेरे ग्रहों को थामा। परिक्रमा की। आहुतियां दीं। इसी प्रकार जब उद्गाता को दक्षिणा दी जाती है तो यजमान समझता है कि इसने मेरे लिये गायन किया। जब होता को दक्षिणा दी जाती है तो यजमान समझता है कि इसने मेरे लिए अनुवाक्, याज्य और शस्त्र पढ़े। लेकिन ब्रह्मा ने क्या किया कि उसे दक्षिणा मिले। क्या यजमान समझता है कि इसे बिना किसी श्रम के ही दक्षिणा मिले। इसका उत्तर यह है कि यज्ञ की चिकित्सा के लिये। ब्रह्मा यज्ञ का चिकित्सक है। ब्रह्मा ब्रह्म के द्वारा यज्ञ करता है। ब्रह्म छन्दों का रस है। वह यज्ञ का आधा काम करता है, और आधा अन्य ऋत्विज् करते हैं। ब्रह्म ऋत्विजों का अध्यक्ष होता है। इसलिये यदि ऋक् में, यजुः में या साम में बे जाने या आपत्काल में भूल हो जाय तो ब्रह्मा से ही निवेदन करते हैं। इसलिये यदि ऋक् में भूल हो तो ब्रह्मा 'भूः' कहकर गार्हपत्य में आहुति दे। यदि यजुः में भूल हो तो 'भुवः' कहकर अग्नीध्रीय या अन्वाहार्यपचन अग्नि में आहुति दे। यदि साम में भूल हो तो 'स्वः' कहकर आहवनीय अग्नि में। यदि अज्ञानवश या आपत्काल में भूल हो तो 'भूर्भुवः स्वः' कहकर आहवनीय में आहुति दे।

स्तोत्र पढ़ने का आदेश मिलने पर प्रस्तोता कहता है :—

"ब्रह्मन्स्तोष्यामः प्रशास्तः"

"हे हमारे नेता ब्रह्मा, हम स्तोत्र पढ़ेंगे"।

इस पर ब्रह्मा प्रातःसवन में कहता है :—

"भूः। इंद्रवंतः स्तुध्वम्"

(भूः । इन्द्र वाले होकर स्तुति करो ।)

दोपहर के सवन में कहे :—

"भुवः । इन्द्रवंतः स्तुध्वम्"

तीसरे सवन में कहे :—

"स्वः । इन्द्रवंतः स्तुध्वम्"

ऊक्थ्य या अतिरात्र में कहे :—

"भूर्भुवः स्वः । इन्द्रवतः स्तुध्वम्"

अगर ब्रह्मा कहे, "इन्द्रवंतः स्तुध्वम्", इसका अर्थ है कि इन्द्र का यज्ञ है। इंद्र यज्ञ का देवता है। 'इन्द्रवन्त' कह कर ब्रह्मा उद्गीथ को इन्द्रवाला करता है। अर्थात् "इन्द्र से मत अलग हो। इन्द्रवाले होकर स्तुति करो"। वह ऐसा कहता है। (९)

ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवी पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥

ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवी पञ्चिका समाप्त हुई।

छठी पत्रिका

पहला अध्याय

१—देवता गण सर्वचरु में सत्र करने बैठे। वे पाप के फल को दूर न कर सके। उनसे कद्रु का पुत्र, सर्प ऋषि, मंत्रों का कर्ता अर्बुद बोला, "होता से की जाने वाली एक क्रिया तुम से छूट गई। उसे मैं कर दूँ। तब तुम पाप के फल से छूट जाओगे।" उन्होंने कहा, "अच्छा"। हर मध्य दिन के सवन में वह आया। उनके पास बैठा और पत्थरों पर सोम को निचोड़ा। उसी के अनुकरण में मध्यदिन के सवन में पत्थरों पर सोम निचोड़ते हैं, जिस मार्ग से वह आता था उसे "अर्बुदोदा सर्पणी" कहते हैं।

सोम राजा ने उन देवों को मद-युक्त कर दिया। उन्होंने कहा, "विषवाला साँप हमारे राजा की ओर देखता है। उसकी आँखों से पट्टी बाँध दें," इसी के अनुकरण में अब भी पट्टी बाँध कर पत्थरों पर सोम निचोड़ते हैं।

सोम राजा ने उनको मद-युक्त कर दिया। उन्होंने कहा, "यह पत्थर पर सोम निचोड़ने के समय अपने ही मंत्र पढ़ता

है। हम दूसरी ऋचायें इसमें जोड़ दें।" बस उन्होंने उसके मंत्रों में अन्य ऋाचायें जोड़ दीं। अब राजा सोम उनको मद्-युक्त न कर सका। उसके मंत्र में और ऋचायें शान्ति के लिये मिलाने से वह पाप के फल को निवृत्त कर सके।

उन्हीं के अनुकरण में साँप अपने पापों को निवृत्त कर सके। और पुरानी कैंचुल को छोड़कर नई ले सके। जो इस रहस्य को समझता है वह पाप को निवृत्त करता है। (१)

२--प्रश्न है कि कितनी ऋचाओं से पत्थर पर सोम निचोड़े। सौ से। पुरुष शतायुः, शतवीर्य और शत-इन्द्रिय होता है। ऐसा करने से पुरुष शतायु, शतवीर्य और शत-इंद्रिय होता है।

कुछ कहते हैं कि तेतीस ऋचायें बोले। क्योंकि तेंतीस देवताओं का पाप निवृत्त किया। देव तेंतीस हैं।

कुछ कहते हैं कि अपरिमित ऋचायें बोले। क्योंकि प्रजापति अपरिमित है और पत्थर पर सोम निचोड़ने का कृत्य प्रजापति का है। इससे सब कामनायें पूरी हो जाती हैं। जो ऐसा करता है वह सब इच्छाओं को पूरी करता है। इसलिये अपरिमित मंत्र बोलना चाहिये।

अब प्रश्न यह है कि कैसे मंत्र बोले? अक्षर अक्षर या चार चार अक्षर या पद पद, या आधे आधे मंत्र या मंत्र मंत्र।

मंत्र मंत्र तो पढ़े नहीं जाते। न पद पद पढ़े जाते हैं। यदि अक्षर अक्षर करके या चार चार अक्षर करके पढ़ें तो छन्द लुप्त हो जाते हैं। क्योंकि बहुत से अक्षर छूट जाते हैं। इस लिये आधे आधे मंत्र कह कर पढ़े। प्रतिष्ठा के लिये मनुष्य दोपाया है और पशु चौपाया। इस प्रकार वह चौपायों में यजमान को स्थापित करता है। इसलिये आधे आधे मंत्र करके पढ़ना चाहिये। इस पर शंका उठाते हैं कि जब मध्यदिन

के सवन में ही ग्रावस्तुत किया जाता है तो दूसरे दो सवनों में ग्रावस्तुति कैसे होती है। इसका उत्तर यह है कि प्रातः सवन का सम्बन्ध गायत्री से है। इस लिये प्रातः सवन में गायत्री से स्तुति की जाती है। तीसरे सवन का संबन्ध जगती से है इसलिये तीसरे सवन में जगती से स्तुति की जाती है। इस प्रकार जो इस रहस्य को समझ कर मध्यदिन के सवन में ग्रावस्तुति करता है वह प्रातः और सायं सवनों को भी स्तुति-संपन्न कर देता है।

इस पर प्रश्न करते हैं कि जब अध्वर्यु अन्य ऋत्विजों को सब अन्य कामों के लिये आदेश करता है तो ग्रावस्तुति में बिना आदेश के ही क्यों पाठ होता है ?

इसका उत्तर यह है कि ग्रावः स्तोत्रीय का संबंध मन से है। मन को आदेश नहीं दिया जाता। इस लिये बिना आदेश के ही ग्रावःस्तुति की जाती है।(२)

३—वाक् ही सुब्रह्मण्या है। सोम राजा उसका बेटा है। सोम राजा को खरीद के समय सुब्रह्मण्या को बुलाते हैं जैसे किसी गाय को बुलावें।

इसी बेटे के द्वारा यजमान के लिये सब कामनायें दुही जाती हैं। जो इस रहस्य को समझता है वाणी उसकी सभी कामनाओं को पूरा कर देती है।

इस पर प्रश्न करते हैं कि सुब्रह्मण्या का सुब्रह्मण्यात्व क्या है ?

इसका उत्तर है कि वाक् ही सुब्रह्मण्या है। वाक् ही ब्रह्म है। वाक् सुब्रह्म है।

इस पर शंका है कि सुब्रह्मण्या ऋत्विज् पुरुष है। उसको स्त्री कहकर क्यों पुकारते हैं ? इसका उत्तर यह है कि वाक् ही सुब्रह्मण्या है। इसी से।

अब प्रश्न है कि जब अन्य ऋत्विज् सब कृत्य वेदी के भीतर करते हैं और सुब्रह्मण्या वेदी के बाहर। तो उसका किया हुआ वेदी के भीतर किया हुआ कैसे समझा जाता है ? इसका उत्तर यह है कि वेदी में एक उत्कर (outlet, बाहर फेंकने का भाग) होता है, उसमें होकर (अनावश्यक चीजें) बाहर फेंकी जाती हैं। उस उत्कर में खड़े होकर जो आह्वान किया जाता है वह (वेदी के भीतर किया हुआ ही समझा जाता है)।

इस पर शंका है कि उत्कर में खड़े होकर सुब्रह्मण्या क्यों पढ़ी जाती है। (इस पर एक गाथा है) :—

ऋषियों ने एक सत्र किया था। उनमें जो सबसे बूढ़ा था उस से वे बोले, "सुब्रह्मण्या को बुला। हम में से तू देवतों के निकटतम होकर बुलायेगा (बूढ़ा होने से तू देवों के निकट है) इस लिये सब से बूढ़े को सुब्रह्मण्या बनाते हैं। इस प्रकार वह सब वेदी को प्रसन्न करता है।

इस पर पूछते हैं कि उसको दक्षिणा में बैल क्यों दिया जाता है ? बैल नर होता है और सुब्रह्मण्या स्त्री होती है।' इस प्रकार मिथुन हो जाता है। मिथुन से संतान उत्पन्न करने के लिये।

अग्नीध्र पात्नीवत ग्रह के लिये याज्य मंत्र धीरे धीरे पढ़ता है। पात्नीवत वीर्य (रेत) है। और वीर्य सिंचन धीरे धीरे होता है। वह अनुवषट्कार नहीं करता। अनुवषट्कार विराम (संस्था) है। वह अनुवषट्कार इसलिये नहीं करता कि वीर्य-सिंचन में विराम न हो। वही वीर्य उत्पत्ति करता है जिसके सिंचन में विराम न हो।

नेष्टा के पास बैठकर खाता है। नेष्टा पत्नियों का भाजन होता है। अग्नि पत्नियों में सन्तानोत्पत्ति के लिये वीर्य डालता है। जो इस रहस्य को समझता है वह अग्नि के द्वारा अपनी

स्त्रियों में वीर्य धारण कराता है और प्रजा और पशु से युक्त होता है।

दक्षिणा के बाद सुब्रह्मण्या समाप्त हो जाती है। वाक् ही सुब्रह्मण्या है। दक्षिणा अन्न है। इस प्रकार यज्ञ को अन्त में अन्न अर्थात् वाणी में स्थापित करते हैं। (३)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

४—देवों ने यज्ञ ताना। जब यज्ञ की तैय्यारी कर रहे थे तब असुर आये कि इस में विघ्न डालें। उन्होंने उनके ऊपर दक्षिण की ओर से आक्रमण किया। उसको सबसे कमजोर समझकर। देव जग पड़े और अपने में से दो अर्थात् मित्रावरुण को दक्षिण की ओर नियत कर दिया।

इन दो मित्र-वरुण के द्वारा उन्होंने दक्षिण से प्रातः सवन में असुरों को हटा दिया। ऐसे ही यजमान भी मित्रावरुण के द्वारा दक्षिण से प्रातः सवन में असुरों को भगा देते हैं। इसलिये मैत्रावरुण ऋत्विज् प्रातः सवन में मैत्रावरुण शस्त्र पढ़ता है।

असुरों ने दक्षिण की ओर हार कर यज्ञ के मध्य भाग में आक्रमण किया। देवों ने सजग होकर मध्य में इन्द्र को नियत किया। उन्होंने इन्द्र के द्वारा मध्य में प्रातः सवन में असुरों को भगा दिया, इसी प्रकार यजमान भी इन्द्र के द्वारा मध्य से

प्रातः सवन में असुर राक्षसों को भगा देते हैं। इसलिये ब्राह्मणाच्छंसी प्रातः सवन में इन्द्र-शस्त्र पढ़ता है।

बीच से हारकर असुरों ने यज्ञ के उत्तरी भाग पर आक्रमण किया। देवों ने सजग होकर इन्द्र और अग्नि को उत्तर भाग में नियत किया। उन्होंने इन्द्राग्नि की सहायता से प्रातः सवन में उत्तर की ओर से असुरों को भगा दिया। इसी प्रकार यजमान भी इन्द्राग्नि की मदद से उत्तर की ओर से प्रातः सवन में राक्षसों को भगा देते हैं। इसलिये अच्छावाक् इन्द्राग्नि शस्त्र को प्रातः सवन में पढ़ता है। चूँकि इन्द्राग्नि के द्वारा ही देवों ने प्रातः सवन में उत्तर की ओर से असुरों को भगाया।

असुर उत्तर की ओर हार कर एक लाइन में पूर्व की ओर आ डटे। देवों ने सजग होकर अग्नि को प्रातः सवन में पूर्व की ओर नियत कर दिया। उन्होंने अग्नि की सहायता से प्रातः सवन में पूर्व की ओर से असुरों को निकाल दिया। इसी प्रकार यजमान भी प्रातः सवन में पूर्व की ओर से अग्नि की मदद से असुरों को भगा देता है। इसलिये प्रातः सवन अग्नि का होता है। जो इस रहस्य को समझता है उसका पाप छूट जाता है।

ये असुर पूर्व से हार कर पश्चिम की ओर यज्ञ पर आक्रमण करने लगे। देव जग उठे और स्वयं विश्वेदेवों को पश्चिम की ओर तीसरे सवन में नियत किया। और विश्वेदेवों की मदद से उन्होंने पश्चिम की ओर से तीसरे सवन में असुरों को भगा दिया। यजमान भी विश्वेदेवों की मदद से तीसरे सवन में पश्चिम की ओर से असुरों को निकाल देते हैं। इसलिये तीसरे सवन विश्वेदेवों का है। जो इस रहस्य को समझता है उसका पाप छूट जाता है।

इस प्रकार देवों ने समस्त यज्ञ से असुरों को भगा दिया। इस प्रकार देव असुरों के अधिपति हो गये। जो इस रहस्य को समझता है वह स्वयं ही शत्रुओं पर विजय पा जाता है और पाप से छूट जाता है।

इस प्रकार यज्ञ करके देवों ने असुरों को हरा दिया और पापों से छूट कर स्वर्ग को प्राप्त हुये। जो इस रहस्य को समझता है वह इस प्रकार यज्ञ को तान कर अपने शत्रु को हरा देता है, पाप से छूट जाता है और स्वर्ग को प्राप्त होता है। (१)

५—प्रातः सवन में (अगले दिन के) स्तोत्रिय को (पिछले दिन के) अनुरूप करते हैं। इस प्रकार एक दिन को दूसरे दिन का अनुरूप करते हैं। पहले दिन के कृत्य के अनुकूल पिछले दिन के कृत्य को आरंभ करते हैं। मध्य दिन में ऐसा नहीं करते। (मध्यदिन के) पृष्ठ श्री हैं। (मध्यदिन के पृष्ठों का) उसके लिये वह स्थान नहीं है (जो प्रातः सवन का है) कि स्तोत्रिय उनको पहले दिन का अनुरूप करे। इसी प्रकार तीसरे सवन में भी एक स्तोत्रिय को दूसरे का अनुरूप नहीं करते। (२)

६—अब आरंभ करते हैं :—

ऋजुनीती नो वरुणो······(ऋ० १।६०।१) से मित्रा वरुण शस्त्र का आरभ होता है। इसके दूसरे पद में आया है "मित्रो नयतु विद्वान्" (विद्वान् मित्र हमारा नेता हो)। मैत्रावरुण होत्रकों का प्रणेतृ है। इसलिये यही ऋचा प्रणेतृ है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि······(ऋ० १।७।१०)

इससे 'ब्राह्मणाच्छंसि' का आरंभ होता है। इसमें आया है "हवामहे जनेभ्यः" (हम इन्द्र को लोगों के लिये बुलाते हैं)। इस प्रकार वे इन्द्र को हर रोज बुलाते हैं।

यदि इस प्रकार समझकर 'ब्राह्मणाच्छंसी' हर रोज इन्द्र का आह्वान करता है तो कोई अन्य इन्द्र को ले नहीं जा सकता।

'यत् सोम आसुते नर' (ऋ० ७।६४।१०)

यह अच्छावाक् का मंत्र है। इसमें 'इंद्राग्नी अजोहवुः" (इन्द्राग्नी को उन्होंने बुलाया) ऐसा पद आया है। इस प्रकार इन्द्राग्नी को उन्होंने हर रोज बुलाया। जब अच्छावाक् रोज इसको बुलाता है तो कोई और इन्द्राग्नी को ले नहीं जा सकता।

यह ऋचायें नावें हैं जो स्वर्गलोक के किनारे तक पहुँचा देती हैं। इन से यजमान इन लोकों को तरके स्वर्ग लोक को पहुँच जाते हैं। (३)

७—अब इन के अन्त के मंत्र कहते हैं :—

ते स्याम देव वरुण···(ऋ० ७।६६।८)

यह मैत्रावरुण का परिधानीय या अन्त का मंत्र है। इसमें एक पद आया है "इषं स्वश्चधीमहि", (हम अन्न और प्रकाश धारण करें)। इससे वे दोनों लोकों को प्राप्त करते हैं। अन्न से यह लोक और प्रकाश (स्वः) से दूसरा लोक।

"व्यंतरिक्षमतिरद्" (ऋ० ८।१४।७-६)

यह तीन ऋचायें विवृत हैं। इन से ब्राह्मणाच्छंसी स्वर्ग के द्वार खोल देता है।

"प्रत्यंतरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
इंद्रो यदभिनद्वलम्" (ऋ० ८।१४।७)

(इंद्र ने सोम के मद में सूराख को खोल दिया और प्रकाश आने दिया) इससे दीक्षित लोगों का जोश प्रकट होता है। इसीलिये इस ऋचा को वलवती (बलवाली। इस मंत्र में 'वल' शब्द है 'बल' नहीं) कहते हैं।

उद्गा आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहासतीः ।

अर्वाञ्चं नुनु दे वलम् । (ऋ० ८।१४।८)

(गायों को निकाल लाया और अंगिराओं के लिये उन को जो अब तक छिपी थीं प्रकट कर दिया । और वल को निकाल कर फेंक दिया)। इस मंत्र में अंगिरों के लिये भेंट का उल्लेख है ।

"इन्द्रेण रोचना दिवि" (ऋ० ८।१४।६) से स्वर्ग लोक की ओर संकेत है ।

दृढ्हानि दृंहि तानि च । स्थिराणि न पराणुदे । (८।१४।६)

(इन्द्र ने स्वर्ग के प्रकाशों को दृढ़ किया है । वह स्थिरों को नहीं फेंकता) ।

इस मंत्र से यजमान रोज स्वर्ग को जाते और वहाँ चलते फिरते हैं ।

आहं सरस्वती वतो : (ऋ० ८।३८।१०)

अच्छावाक् का मंत्र है, वाक् ही सरस्वती है ।

"वतोः" द्विवचन में है "इन्द्र और अग्नि का" ।

"इन्द्राग्न्योरवोवृणे"

यह जो वाक् है वह इन्द्र और अग्नि का प्रिय धाम है । इस प्रिय धाम से समृद्धि को प्राप्त होता है । जो इस रहस्य को समझता है वह अपने प्रिय धाम के द्वारा समृद्ध होता है । (४)

८—होत्रकों के प्रातः सवन और मध्य सवन के परिधानीय (अन्त के) मंत्र दो तरह के होते हैं:—

अहीन और एकाहिक । मैत्रावरुण एकाहिक से अन्त करते हैं । जिससे यजमान इस लोक से च्युत न हो । अच्छावाक् "अहीनों" से स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये । ब्राह्मणाच्छंसी दोनों से । इससे दोनों लोकों को जोड़ता है और उनमें चलता है । इस प्रकार मैत्रावरुण और अच्छावाक् को तथा अहीनों

को और एकाहिकों को, अग्निष्टोम को और संवत्सर को दोनों को थामे हुये चलता है।

तीसरे सवन में होत्रकों के परिधानीय मंत्र "एकाहिक" ही होते हैं। "एकाहः" प्रतिष्ठा है, इस प्रकार अन्त को यज्ञ को प्रतिष्ठावान् करता है।

प्रातः सवन में याज्य मंत्रों को लगातार (अनवानं) पढ़े। एक या दो स्तोम अधिक न पढ़े। यह ऐसा ही है जैसे किसी भूखे प्यासे को झट खाना पानी दे देवे। यह सोचकर कि मैं देवों को जल्दी से भोजन दे दूँगा वह इस लोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

पिछले दो सवनों में अपरिमित मंत्र पढ़े। स्वर्ग लोक अपरिमित है। स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये। जो मंत्र होत्रकों ने पहले दिन पढ़े उन्हीं को यदि चाहे तो पढ़े। या जिनको होता ने पढ़ा उन्हीं को होत्रक पढ़ें। होता प्राण है। होत्र का अंग हैं। एक ही प्राण का अंगों में संचार है। इसलिये चाहे तो होता वही मंत्र पढ़े जो होत्रकों ने पहले दिन पढ़े थे। या जो होता ने पढ़े उनको होत्रक पढ़ें।

तृतीय सवनों में होत्रक जो परिधानीय मंत्र पढ़ते हैं उन्हीं सूक्त के अन्तिम मंत्रों से होता समाप्त करता है। होता आत्मा है। होत्रक अंग हैं। अंगों के अन्त समान होते हैं। इसीलिये तीसरे सवन में होत्रकों के परिधानीय मंत्र समान ही होते हैं।(५)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

६—आत्वा वहंतु हरय......(ऋ० १।१६।१)

इस सूक्त को मैत्रावरुण प्रातः सवन में पढ़ता है। जब सोम के प्यालों को उठाते हैं। इस सूक्त के मंत्रों में वृषन्, पीत, सुत, मद, शब्द आते हैं। इसलिये इनमें रूपसमृद्धता है। यह इन्द्र के मंत्र हैं। यज्ञ इन्द्र का है। गायत्री पढ़ता है। प्रातः सवन गायत्री का है। प्रातः सवन में नौ मंत्र ("न्यून" दस से एक कम) पढ़े जाते हैं। वीर्य भी 'न्यून' अर्थात् तंग अवकाश में सींचा जाता है। मध्य दिन में दस मंत्र पढ़ता है। क्योंकि जो वीर्य 'न्यून' स्थान में सींचा गया था वह स्त्री के मध्य भाग में पहुँच कर बड़ा हो जाता है। तीसरे सवन में नौ ("न्यून", दस से एक कम) मंत्र पढ़ता है। क्योंकि 'न्यून' अर्थात् तंग जगह से ही बच्चे पैदा होते हैं। जब पूरे २ सूक्त पढ़े जायँ तो यजमान को यज्ञ की योनि से गर्भ रूप में उत्पन्न करता है।

कुछ लोग सात सात मंत्र पढ़ते हैं। सात प्रातःसवन में, सात मध्यसवन में और सात तीसरे सवन में। जितने पुरोनु-

वाक्य हों उतने ही याज्य हों। सात होता सामने मुख करके याज्य पढ़ते और वषट् करते हैं। वे कहते हैं कि वे सात मंत्र इन सात याज्यों के पुरोनुवाक्य हैं। लेकिन होता ऐसा न करे, क्योंकि इससे यजमान का वीर्य लुप्त हो जाता है और यजमान भी। यजमान सूक्त है।

मैत्रावरुण नौ मंत्रों से यजमान को इस लोक से अन्तरिक्ष को ले जाता है और दसवें मंत्र से अन्तरिक्ष से भी ऊपर। क्योंकि अन्तरिक्ष लोक ज्येष्ठ है। उस लोक से नौ मंत्रों द्वारा स्वर्गलोक को ले जाता है। जो सात ही मंत्र पढ़ते हैं वे यजमान को स्वर्ग लोक में ले जाना नहीं चाहते। इसलिये पूरे पूरे सूक्त पढ़ने चाहियें। (१)

१०—इस पर प्रश्न करते हैं। जब यज्ञ इन्द्र का ही है तो केवल होता और ब्राह्मणाच्छंसी ही प्रातःसवन में प्रस्थित सोम के लिये ऐसे याज्य क्यों पढ़ते हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से इन्द्र का वर्णन हो। होता का याज्य है :—

इदं ते सोम्यं मधु (ऋ० ८।६५।८)

और ब्राह्मणाच्छंसी का :—

इन्द्र त्वा वृषभं वयम् (ऋ० ३।४०।१)

जो इतर ऋत्विज नाना देवतों के लिये पढ़ते हैं वह इन्द्र के मंत्र कैसे हो जाते हैं? (प्रश्न का आशय यह है कि 'इन्द्र' अन्य याज्यों में क्यों नहीं? केवल दो याज्यों में ही क्यों है? इसका उत्तर देते हैं)।

मैत्रावरुण का याज्य है :—

मित्रं वयं हवामहे (ऋ० १।२३।४)

परन्तु इसी में एक पद है "वरुणं सोम पीतये"। जहाँ किसी पद में 'पीत' शब्द आता है वहाँ इन्द्र की ओर संकेत होता है क्योंकि इस पद से इन्द्र को प्रसन्न करते हैं।

पोता का याज्य मंत्र यह है :—

मरुतो यस्य हि क्षये......(ऋ० १।८६।१)

इसमें एक पद है "स सुगोपातमो जन" यह इन्द्र की ओर संकेत है क्योंकि इन्द्र गोपातम अर्थात् सबसे अच्छा रक्षक है। इससे इन्द्र को प्रसन्न करता है।

नेष्टा का याज्य यह है :—

अग्ने पत्नीरिहा वह......(ऋ० १।२२।६)

इस मंत्र में 'त्वष्टारं सोमपीतये' आया है। यहाँ इन्द्र का वर्णन है। क्योंकि इन्द्र 'त्वष्टा' है। यह इन्द्र का रूप है। इस प्रकार वह उसको प्रसन्न करता है।

अग्नीध्र का याज्य मंत्र यह है :—

उक्षान्नाय वशान्नाय (ऋ० ८।४३।११)

इसमें 'सोमपृष्ठाय वेधसे' आया है। 'वेधस्' इन्द्र है। यह इन्द्र का रूप है। इससे इन्द्र को प्रसन्न करता है।

अच्छवाक् के मंत्र में तो अन्त में इन्द्राग्नी साक्षात् ही है इस लिये यह मंत्र स्वयंसमृद्ध है अर्थात् :—

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू। इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥

(ऋ० ८।३८।७)

इस प्रकार यह सब मंत्र इन्द्र के हो जाते हैं। जिनमें नाना देवतों का वर्णन है उनसे अन्य देवताओं को ही प्रसन्न नहीं करता। यह मंत्र गायत्री छन्द में हैं। यह अग्नि के हैं। इस प्रकार तीनों की प्राप्ति होती है अर्थात् इन्द्र, अन्य देवते और अग्नि। (२)

११—मध्य सवन में सोम के उठाने पर होता यह सूक्त पढ़ता है :—

असावि देवं गो ऋजीकमंध......(ऋ० ७।२१।१)

इनमें 'अभितृण' वाले मंत्र हैं। इन्द्र ने पहले प्रातःसवन में विजय पाई थी। परन्तु इन मंत्रों द्वारा मध्यसवन में भेदन किया (अभितृणात्) इस लिये 'अभितृण' वाले मंत्र बोले जाते हैं। (२)

१२—तृतीय सवन में सोम के उठाने पर होता यह मंत्र बोलता है :—

इहोप यात शवसो नपातः (ऋ० ४।३५।१)

इनमें वृषन्, पीत, सुत, मद् शब्द आये हैं। इस लिये इनमें रूपसमृद्धता है। यह इन्द्र के मंत्र हैं और ऋभुओं के हैं।

इस पर प्रश्न है कि जब ऋभुओं की स्तुति नहीं की जाती तो यह तीसरे सवन के पवमान मंत्र ऋभुओं के क्यों कहलाते हैं? (इसका उत्तर यह है) कि पिता प्रजापति ने मर्त्य ऋभुओं को अमर्त्य करके तीसरे सवन में भाग दिया। इसलिये ऋभुओं के मन्त्र तो नहीं बोलते किन्तु पवमान स्तोत्रों को आर्भव कहते हैं।

एक ऋषि का प्रश्न है कि तीसरे सवन में त्रिष्टुभ् छन्द क्यों लाते हैं? प्रातः सवन का छन्द गायत्री है। मध्य सवन का त्रिष्टुभ और तीसरे सवन का जगती। इसका उत्तर यह देना चाहिये कि तीसरे सवन में सोमरस समाप्त हो जाता है (धीतरसं)। अगर तीसरे सवन में ऐसा छन्द बोला जाय जिसका रस अभी समाप्त नहीं हुआ (अधीतरस) जैसे त्रिष्टुभ् तो ऐसा करने से तृतीय सवन रस वाला हो जाता है।

इस सवन में इन्द्र को भी भाग मिलता है।

इस पर प्रश्न यह होता है कि जब तीसरा सवन इन्द्र और ऋभुओं का है, और उपस्थित सोम के लिये होता इन्द्र और ऋभुओं का ही याज्य मन्त्र बोलता है तो फिर इतर ऋत्विज नाना देवतों के याज्य क्यों बोलते हैं?

होता के याज्य में :—

ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितम् ।

ऋभुओं का स्पष्ट लेख है। लेकिन दूसरों में स्पष्ट लेख नहीं।

मैत्रावरुण का याज्य यह है :—

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतम् । (ऋ० ६।६८।१०)

इसमें एक पद है :—युवोरथो अध्वरं देववीतये। इसमें बहुवचन है। यह ऋभुओं का रूप है।

ब्राह्मणाच्छंसी का मंत्र यह है :—

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते...(ऋ० ४।५०।१०)

इसमें 'विशंत्विंदवः स्वाभुवः' पद आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

पोता का याज्य मंत्र है :—

आ वो वहंतु सप्तयो रघुष्यदो...(ऋ० १।८५।६)

इसमें "रघु पत्वानः प्रजिगात बाहुभिः' आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

नेष्टा का याज्य मंत्र यह है :—

अमेव नः सुहवा आ हि गंतन...(ऋ० २।३६।३)

इसमें 'गंतन' बहुवचन है। यह बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

अच्छावाक् का याज्य यह है :—

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वोऽस्य...(ऋ० ६।६९।७)

इसमें "आवामंधांसि मदिराण्यग्मन्"...बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

अग्नीध्र का याज्य यह है :—

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे (ऋ० १।९४।१)

इसमें 'रथमिव संमहेम' आया है। यह बहुवचन है। बहु-वचन ऋभुओं का रूप है।

इस प्रकार यह सब मंत्र ऐन्द्र-आर्भव हो जाते हैं।

दूसरे देवतों के मंत्रों से उन उन देवतों को भी प्रसन्न करता है। वह जगत् के विजेता हैं। इसलिये जगती छन्द की आव-श्यकता होती है। तीसरे सवन की समृद्धि के लिये। (४)

१३—इस पर प्रश्न होता है कि कुछ होत्रों में उक्थ्य (शस्त्र) होता है। कुछ में नहीं होता। फिर सब होत्र बराबर और उक्थ्य वाले कैसे हो जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि ये उक्थ्य वाले और अनुक्थ्य वाले साथ-साथ पाठ करते हैं। इसलिये वे सब समान कहलाते हैं। और उनकी विषमता दूर हो जाती है।

अब प्रश्न होता है कि होत्रक लोग प्रातः सवन और मध्य सवन में ही शस्त्र पढ़ते हैं। फिर यह तीसरे सवन में पढ़े के बराबर कैसे हो जाता है? इसका उत्तर यह है कि वे मध्य सवन में दो दो सूक्त पढ़ते हैं।

इस पर प्रश्न होता है कि होत्रक होता के बराबर दो सूक्त क्यों पढ़ते हैं? इसका उत्तर यह है कि वे दो देवतों के लिये होते हैं। (५)

१४—शंका होती है कि जब तीन होत्रक ही उक्थ्य वाले हैं अन्य नहीं। तो वे उक्थ्य वाले कैसे समझे जा सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि अग्नीध्र का उक्थ्य आज्य है। पोता के याज्य का मरुत्वतीय। नेष्टा का वैश्वदेव। इस प्रकार यह याज्य उक्थ्य वाले हो जाते हैं।

प्रश्न यह है कि अन्य होत्रकों को तो एक बार ही आदेश दिया जाता है तो पोता को और नेष्टा को क्यों दो बार आदेश दिया जाता है? (इसके लिये गाथा है) :—

जब गायत्री ने सुपर्ण होकर सोम को निकाला तो इन्द्र ने इन दोनों के उक्थ काट कर होता को दे दिये और कहा, "तुम न बुलाना। तुम योग्य नहीं हो।" देवों ने कहा, "इन दोनों को वाणी से प्रभावित कर दें।" (अर्थात् दो बार आदेश देकर उसका बदला चुका दें) इसलिये इन (पोता और नेष्टा) को दो बार आदेश दिये जाने लगे।

अग्नीध्र के याज्य में एक ऋचा बढ़ा दी। इसलिये उसके याज्य में एक ऋचा अधिक होती है।

कुछ लोग पूछते हैं कि जब मैत्रावरुण आदेश देता है "होता यक्षत्" "होता यक्षत्" (होता याज्य पढ़े) तो यह आदेश केवल होता को ही क्यों नहीं देता। उनको क्यों देता है जो होता नहीं होते, केवल होता के मंत्रों को उच्चारते मात्र हैं? इसका उत्तर यह है कि होता प्राण है। सब ऋत्विज् भी प्राण हैं। इस आदेश का प्रयोजन यह है कि "प्राण याज्य पढ़े", "प्राण याज्य पढ़े।"

क्या यह आदेश उद्गाताओं के लिये भी है? हाँ, है। क्योंकि मैत्रावरुण मंत्र जप कर के कहता है "तुम स्तुति करो।"

क्या अच्छावाक् का कुछ प्रवर (विशेषता) होता है? हाँ होता है। क्योंकि अध्वर्यु उससे कहता है, "अच्छावाक्, कह जो कुछ तुझे कहना है।"

जब मैत्रावरुण तीसरे सवन में इन्द्र-वरुण का शस्त्र कहता है तो अग्नि के लिए स्तोत्रिय और अनरूप क्यों पढ़े जाते हैं? देवों ने अग्नि को मुख बना के ही असुरों को उक्थों से निकाल दिया। इसलिये स्तोत्रिय और अनुरूप अग्नि के होते हैं।

अब प्रश्न है कि जब तीसरे सवन में ब्राह्मणाच्छंसी इन्द्र और बृहस्पति के लिये शस्त्र बोलता है और अच्छावाक् इन्द्र और विष्णु के लिये, तो तीसरे सवन में स्तोत्रिय और अनुरूप

इन्द्र के कैसे होते हैं ? (उत्तर यह है कि) इन्द्र ने असुरों को उक्थ्यों से निकाल कर पराजित कर दिया और उसने देवों से कहा. 'मेरा साथ कौन देगा ?' देवों ने कहा, "मैं, मैं।" और उन्होंने उसका साथ दिया। लेकिन चूँकि इन्द्र ने पहले विजय पाई, इसलिये स्तोत्रिय और अनुरूप इन्द्र के होते हैं। और चूँकि देवों ने कहा, "मैं साथ दूंगा" और दिया भी। इसलिये ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक् नाना देवतों के लिये मन्त्र पढ़ता है। (६)

१५—फिर प्रश्न यह है कि जब तीसरा सवन वैश्वदेव का है तो तीसरे सवन के आरम्भ में इन्द्र के और जगती छन्द वाले मंत्र क्यों बोले जाते हैं ? उत्तर यह है कि इन्द्र से आरम्भ करके ही चलते हैं। जगती छन्द इसलिये है कि तीसरा सवन जगती से सम्बन्ध रखता है। जगत् की इच्छा के लिये। और जो कोई छन्द पीछे पढ़ा जाता है वह भी जगती से सम्बन्धित हो जाता है। जब तृतीय सवन के आरम्भ में इन्द्र के और जगती छन्द वाले सूक्त पढ़े जाते हैं।

शस्त्रों के अन्त में अच्छावाक् त्रिष्टुभ् छन्द का सूक्त बोलता है :—स वां कर्मणा...(ऋ० ६।६९।१) यह 'कर्म' से तात्पर्य 'सोमपान' की प्रशंसा है। इसमें 'समिषा' पद है। यहाँ 'इष' का अर्थ है अन्न। अन्न की प्राप्ति के लिये। "अरिष्टैनः पथिभिः पारयंत" इस पद के पढ़ने का तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक दिन कल्याण के लिये स्तुति करता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि जब तीसरा सवन जगती छन्द वाला है तो तीसरे सवन के अन्त में त्रिष्टुभ् छन्द क्यों पढ़ते हैं ? इसका उत्तर यह है कि त्रिष्टुभ् वीर्य है। अन्त में वीर्य की प्रतिष्ठा हो जाती है।

मैत्रावरुण का अन्त का मंत्र यह है :—

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः (ऋ० ७।८४।५)

ब्राह्मणाच्छंसी का :—

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात् (ऋ० १०।४२।११)

अच्छावाक् का :—

उभा जिग्यथुः (ऋ० ६।६९।८)

वे दोनों ही जीते थे। कोई पराजित नहीं हुआ। अर्थात् उन्होंने हार नहीं मानी। उनमें से कोई नहीं हारा।

"इंद्रश्च विष्णो पदं पस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम्" से तात्पर्य है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही असुरों से लड़े। और उनको जीत कर कहा, "लाओ, बाँट लें।" असुरों ने कहा, "अच्छा"। इन्द्र ने कहा, "यह विष्णु तीन पैर में जितना नाप ले वह हमारा, शेष तुम्हारा"। वह इन लोकों में चला, फिर वेदों में, फिर वाणी में।

इस पर शंका करते हैं कि सहस्र का क्या अर्थ है। इसका उत्तर देना चाहिये कि "यह लोक, वेद और वाक्"।

अच्छावाक उक्थ्य के अन्त में कहता है:—

"ऐरयेथां, ऐरयेथां" (तुम दोनों ने जीता)।

अच्छावाक् का काम अन्त का है। अग्निष्टोम और अतिरात्र में होता अन्त के भाग को पढ़ता है। 'षेडशी' में सन्देह है कि अन्त के चार अक्षर पढ़े जायँ या न पढ़े जायँ। कुछ कहते हैं कि अवश्य पढ़े जायँ। जब अन्य कृत्यों में पढ़े जाते हैं तो इसमें क्यों न पढ़ा जाय।" (७)

१६—अब प्रश्न है कि जब तीसरा सवन नाराशंसी का है तो अच्छावाक् शिल्पों में उन मंत्रों को क्यों पढ़ता है जो नाराशंसी के नहीं होते ? इसका उत्तर यह है कि नाराशंसी विकार

का सूचक है। वीर्य थोड़ा थोड़ा विकृत होता जाता है। तब पूर्ण विकार के बाद पैदा होता है। नाराशंस छन्द मृदु और शिथिल है। अच्छावाक् सबसे पिछला बोलने वाला है। इस लिये ऐसा है। पिछले भाग को भली भाँति स्थापित कर देना चाहिये। इसलिये अच्छावाक् शिल्पों में नाराशंसी के मन्त्र नहीं बोलता। जिससे अन्त मजबूत हो जाय। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

१७—प्रातः सवन में अहीन संतति के लिये (अर्थात् वह सोम यज्ञ जिनमें कई दिन लगते हैं और एक दिन और दूसरे दिनों में सिलसिला जारी रखना पड़ता है) जो अगले दिन के स्तोत्रिय को पहले दिन का अनुरूप करते हैं वह उसी प्रकार होता है जैसे एकाह में (जिस सोम यज्ञ में एक ही दिन लगता है उसे 'एकाह' कहते हैं)। जैसे 'एकाह" के सवनों में सिलसिला होता है उसी प्रकार 'अहीन' के दिनों में भी। प्रातः सवन में अगले दिन के स्तोत्रिय को पहले दिन का अनुरूप इसलिये करते हैं कि 'अहीन' के दिनों में सिलसिला हो जाय। इस प्रकार सिलसिला हो जाता है।

देवों और ऋषियों ने सोचा कि यज्ञ में सिलसिला क़ायम करें दिनों को समान करके। तब उन्होंने यह समानता सोची कि प्रगाथ एक ही हों, प्रतिपद एक ही हों और सूक्त एक ही हों। इन्द्र घर का व्यापी सा है। वह यज्ञ में पहले भी चलता है और अगले दिनों में भी। (अर्थात् इन्द्र यज्ञ में सर्वत्र

विचरता है)। इस प्रकार यज्ञ के सब दिनों में इन्द्र के विचरने से समानता या सिलसिला हो जाता है। (१)

१८—इन संपात सूक्तों का सबसे पहला ऋषि (द्रष्टा) विश्वामित्र हुआ। विश्वामित्र के देखे हुये उन मंत्रों को वामदेव ने फैलाया (असृजत)। यह सूक्त यह हैं :—

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्......(ऋ० ४।१९)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि......(ऋ० ४।२२)

कथा महामवृधत् कस्य होतुः (ऋ० ४।२३)

उसने झट उनका पीछा किया (समपतत्) और अपने शिष्यों को पढ़ाया। इसलिये उनका संपात सूक्त नाम पड़ गया। (समपतत् का अर्थ है मंत्रों को देखकर शिष्यों को पढ़ाना)।

विश्वामित्र ने इन संपात सूक्तों को देखा और कहा कि मेरे देखे हुये मंत्रों को वामदेव ने फैला दिया। मैं इन सूक्तों के प्रतिमान के लिये ऐसे ही अन्य सूक्त बना दूँ। इसलिये उसने यह सूक्त प्रतिमान रूप बना दिये :—

सद्यो ह जातो वृषभः (ऋ० ३।४८)

इन्द्रः पूर्भिदातिरत् (ऋ० ३।३४)

इमामु षु प्रभृतिम् (ऋ० ३।३६)

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः (ऋ० ३।३०)

शासद् वह्नि दुहितुः (ऋ० ३।३१)

अभितष्टेव दीधया मनीषा (ऋ० ३।३८)

दूसरे संपात सूक्त यह हैं :—

भरद्वाज का सूक्त······य एक इद्धव्यः (ऋ० ६।२२)

वशिष्ठ के दो सूक्त अर्थात्

यस्तिग्मशृंगो वृषभो न भीम (ऋ० ७।१९)

उदु ब्रह्माण्यैरत......(ऋ० ७।२३)

नोधा का सूक्त :—

अस्मा इदु प्रतवसे तुराय...' ऋ० १।६१)

यह लोग (मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक) षडह के प्रातःसवन में स्तोत्रियों के पढ़ने के बाद मध्य सवन में अहीन सूक्तों को पढ़ते हैं। यह सूक्त यह हैं :—

आसत्यो यातुमघवाँ ऋजीषि...(ऋ० ४।१६)

क्योंकि मित्रावरुण सत्य वाला है।

ब्राह्मणाच्छंसी पढ़ता है :—

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय...' ऋ० १।६१)

इस सूक्त में "इन्द्राय ब्रह्मणा राततम" शब्द आये हैं।

और

"इंद्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्..."

इसमें 'ब्रह्म' शब्द आया है।

अच्छावाक यह सूक्त पढ़ता है :—

शासद् वह्निर्जन यंत वह्निम्।

इसमें "वह्नि" (नेता) शब्द आया है।

इस पर प्रश्न होता है :—कि अच्छावाक "वह्नि" वाले इस सूक्त को दोनों प्रकार के दिनों में क्यों पढ़ता है। 'परांचि' दिनों में भी और 'अभ्यावर्त्ति' दिनों में भी। (एक सत्र में दो प्रकार के दिन होते हैं। एक तो अकेले दिन जिनको 'परांचि' कहते हैं। दूसरे षडह' आदि जो बारबार आते हैं। इनको 'अभ्यावर्ति' कहते हैं)। इसका उत्तर यह है कि वह वृ च ऋत्विज वीर्यवान होता है। यह सूक्त 'वह्नि' वाला है। 'वह्नि' वह है जो अगुआ हो (वहति)। 'वह्नि' उस घोड़े को भी कहते हैं जो धुरे को खींचता है• जिसमें वह जुता होता है। इसलिये अच्छावाक इन सूक्तों को दोनों प्रकार के दिनों में पढ़ता है अर्थात् 'परांचि' दिनों में भी और 'अभ्यावर्त्ति' दिनों में भी।

यह पाँच दिनों में पढ़े जाते हैं :—चतुर्विंश, अभिजित्, विषुवत्, विश्वजित् और महाव्रत। यह दिन 'अहीन' हैं। क्योंकि इनमें कुछ छूटता नहीं (न हि एषु किंचन हीयते)। यह दिन 'परांचि' हैं। अभ्यावृत्ति नहीं। अर्थात् यह बार बार नहीं आते। इस लिये इन दिनों अहीन सूक्त पढ़े जाते हैं। इनको पढ़ते हुये वह समझते हैं "हम स्वर्ग लोक को पूर्ण रूप से और समृद्धता से प्राप्त होवें"। जब यह इनका पाठ करते हैं तो इंद्र को बुलाते हैं जैसे गाय के पास बैल को बुलाते हैं। यह पाठ सिलसिले को कायम रखने के लिये करते हैं। इससे सिलसिला कायम रहता है।(२)

१९—इसलिये मैत्रावरुण षडह के पहले तीन दिनों में से हर दिन इन तीन संपातों को विपर्यास अर्थात् उल्टे क्रम से पढ़ता है। पहले दिन "एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्", दूसरे दिन "यन्न इंद्रो जुजुषे यच्च वष्टी", तीसरे दिन "कथा महामवृधत् कस्य होतुः"।

ब्राह्मणाच्छंसी तीन संपात सूक्तों को एक करके एक-एक दिन (दूसरे तीन दिनों में) विपर्यास अर्थात् उलटे क्रम से पढ़ता है :—पहले दिन, "इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैः"; दूसरे दिन, "एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम", तीसरे दिन, "यस्तिग्मशृंगो वृषभो न भीम"।

अच्छावाक तीन संपात सूक्तों को एक एक करके विपर्यास (उलटे क्रम) से एक एक दिन पढ़ता है :—

पहले दिन, "इमामूषु प्रभृतिं सातयेधा"; दूसरे दिन "इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः"; तीसरे दिन, "शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यंगात्"।

यह नौ और तीन सूक्त जो प्रतिदिन पढ़े जाते हैं बारह हो जाते हैं। बारह मासों का संवत्सर होता है। संवत्सर प्रजा-

पंति है। प्रजापति यज्ञ है। इस प्रकार संवत्सर प्रजापति यज्ञ को प्राप्त होते हैं और हर दिन के कृत्य को संवत्सर प्रजापति यज्ञ में प्रतिष्ठित कर देते हैं।

इन सूक्तों के बीच-बीच में 'विमद' ऋषि के विराज मंत्रों को चौथे दिन बिना 'न्यूंख' के पढ़ना चाहिये। पंक्ति मंत्रों को पाँचवें दिन, परुच्छेप मंत्रों को छठे दिन।

जो दिन महास्तोम के हों उनमें मैत्रावरुण इस मंत्र को पढ़े :—को अद्य नर्यो देवकामः (४।२५।१)

ब्राह्मणाच्छंसी इसको :—"वने न वा यो न्यधायि चाकन्" (१०।२९।१)

अच्छावाक इस मंत्र को :—"आ याह्यर्वाङुप वंधुरेष्ठा" (३।४३।१)

यह आवपन मंत्र है। इन्हीं 'आवपन' मंत्रों से देवों और ऋषियों ने स्वर्गलोक को जीता और इन्हीं के द्वारा यजमान स्वर्गलोक को प्राप्त करता है (३)।

२०—उन अहीन सूक्तों के पहले हर दिन मैत्रावरुण इस सूक्त का पाठ करता है :—

"सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः" (ऋ० ३।४८)

यह सूक्त स्वर्ग से संबंध रखता है। इसी से देवों ने स्वर्ग जीता। इसी से ऋषियों ने। इसी से यजमान भी स्वर्ग जीत सकते हैं।

यह विश्वामित्र का सूक्त है। क्योंकि विश्वामित्र सब का मित्र था। इसलिये जो इस रहस्य को समझता है उसके सभी मित्र हो जाते हैं अगर मैत्रावरुण इसको समझकर अहीन सूक्तों से पूर्व रोज़ इसका पाठ करता है।

इसमें 'वृषभ' और पशुमत' शब्द आये हैं। पशुओं की वृद्धि के लिये।

इसमें पाँच ऋचायें हैं। पंक्ति में पाँच पद होते हैं, पंक्ति अन्न हैं। अन्न की प्राप्ति के लिये।

ब्राह्मणाच्छंसी प्रति दिन इस ब्रह्मसूक्त को पढ़ता है :— उदु ब्रह्मारयैरत श्रवस्य (७।२३) इसमें 'ब्रह्मन्' शब्द आने से रूप समृद्धता प्राप्त होती है। यह स्वर्ग का सूक्त है। इससे देवों ने स्वर्ग जीता, ऋषियों ने स्वर्ग जीता और यजमान भी स्वर्ग जीत सकते हैं।

यह वशिष्ठ का सूक्त है। इससे वशिष्ठ इन्द्र के प्रिय धाम को गया। और परम लोक को जीता। जो इस रहस्य को समझता है वह इन्द्र के प्रिय धाम को पाता है और परम लोक को जीतता है। इसमें छः ऋचायें हैं। छः ऋतुयें हैं। ऋतुओं की प्राप्ति के लिये। सपात सूक्तों के पीछे इनका पाठ करता है। इस प्रकार यजमान स्वर्ग लोक में जाने के लिए इस लोक में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

अच्छावाक हर रोज यह सूक्त पढ़ता है :—

अभि तष्टेव दीधया मनीषाम्...(ऋ० ३ ३८)

इसमें 'अभि' शब्द है। इसलिये यह इस लोक और परलोक के सिलसिले के लिये उपयुक्त है। इस सूक्त में ''अभिप्रयाणि मर्मृशत् पराणि'' शब्द आये हैं। इससे तात्पर्य है कि जो परलोक में आने वाले दिन हैं वह प्रिय हैं। इन्हीं को वह प्राप्त करता है। 'पर' का अर्थ है स्वर्गलोक जो इस लोक से परे है।

''कवींऽरिच्छामि संदृशे सुमेधा'' इन शब्दों से तात्पर्य है उन ऋषियों से जो गुजर चुके। वे कवि हैं। इन्हीं के विषय में यह मंत्र है। यह विश्वामित्र का है। विश्वामित्र सब का मित्र था। जो इस रहस्य को समझता है उसके सभी मित्र हो जाते हैं।

वह अब प्रजापति के अनिरुक्त सूक्त को पढ़ता है (अर्थात् इसमें प्रजापति का स्पष्ट नाम नहीं)। प्रजापति अनिरुक्त है। प्रजापति की प्राप्ति के लिये। इसमें एक बार 'इन्द्र' आया है। वह इसलिये कि यज्ञ का इन्द्र-पन न चला जाय। इसमें दस ऋचायें हैं। विराट् में १० अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है। अन्न की प्राप्ति के लिये। दस ऋचाओं के विषय में यह भी है कि प्राण दस हैं। इससे यजमान प्राणों को प्राप्त करता है और प्राणों को आत्मा में धारण करता है।

अच्छावाक संपात सूक्तों के बाद इस सूक्त को इसलिये पढ़ता है कि यजमानों के लिये स्वर्ग की प्राप्ति हो जाय जब यजमान इसी लोक में प्रतिष्ठित हैं। (४)

२१—प्रतिदिन के आरम्भ के प्रगाथ "कद्वत्" मन्त्र हैं। (जिन मंत्रों में प्रश्नवाचक 'कः' या उसका कोई रूप आता है उनको "कद्वत्" मंत्र कहते हैं)। वह यह है :—

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा इत्ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु। तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ (ऋ० ७।३२।१४-१५)

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः। नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते। कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ (ऋ० ८।३।१३-१४)

कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्। केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्। इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥

(ऋ० ८।६६।६-१०)

'कः' नाम है प्रजापति का। यह 'कद्वन्त' मंत्र प्रजापति की प्राप्ति के लिये है। 'कं' नाम है अन्न का। यह 'कद्वन्त' अन्न की प्राप्ति के लिये है। ये यजमान प्रतिदिन शांत अहीन सूक्तों से जुड़े रहते हैं। उनको 'कद्वत्' प्रगाथों के द्वारा शांत करते हैं। इस प्रकार यह अहीन सूक्त शांत हो जाते हैं और शांत होकर स्वर्ग को ले जाते हैं।

अहीन सूक्तों का आरम्भ त्रिष्टुभ् से करना चाहिये।

कुछ लोग प्रगाथों से पहले इन (त्रिष्टुभों) को पढ़ते हैं और इनको 'धाय्या' कहते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये। होता राजा (शासक) है और होत्रक लोग प्रजा (रय्यत) हैं। (धाय्या को होता ही पढ़ता है। यदि होत्रक भी पढ़ने लगेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि) प्रजा ने राजा का विरोध किया। और यह पाप है।

उसको जानना चाहिये कि ये त्रिष्टुभ् मेरे 'प्रतिपद' हैं। जिनसे समुद्र को तरते हैं। ('प्रतिपद' में यहाँ श्लेष है। प्रतिपद का अर्थ है आरम्भ और प्रतिपद का अर्थ है नाव का पतवार) जो द्वादशाह या संवत्सर यज्ञ करते हैं वह समुद्र पर तैरने वालों के समान हैं। जैसे समुद्र के उस पार पहुँचने के लिए जहाज पर सब सामान इकट्ठा करके तब बैठते हैं। इसी प्रकार यजमानों को त्रिष्टुभों से आरम्भ करना चाहिये।

यह वीर्यवान् छन्द यजमान को स्वर्ग में ले जाकर फिर लौटाता नहीं।

लेकिन इनमें 'आहाव' (शोंसावोम्) नहीं कहना चाहिये। छन्द समान गति से चलना चाहिये।

होता को सोचना चाहिये कि मैं धाय्या न पढ़ूंगा। जब इन सूक्तों को पढ़े। प्रसिद्ध सूक्तों के आरम्भ से सूक्तों का समारोह करना चाहिये। (अर्थात् सूक्तों को त्रिष्टुभ् से शुरू

करना चाहिये) । इन मंत्रों को पढ़ कर इन्द्र को बुलाता है जैसे गाय के पास बैल को। यह पाठ यज्ञ के सिलसिले को कायम रखने के लिये है। इससे सिलसिला कायम रहता है। (५)

२२—मैत्रावरुण सूक्तों से पहले हर दिन यह मंत्र बोलता है :—

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व। अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥

(ऋ० १०।१३१।१)

"हे इन्द्र सब अमित्रों को दूर कर दो। हे विजयी, उनको भगा दो। चाहे वे दक्षिण में हों या उत्तर में। जिससे कि हम तेरी विस्तृत शरण से लाभ उठा सकें।"

इसमें अभय की बात है। वह अभय चाहता है।

ब्राह्मणाच्छंसी प्रतिदिन यह मंत्र पढ़ता है :—

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि...(ऋ० ३।३५।४)

'युनज्मि' में 'जोड़' का भाव है। 'अहीन यज्ञों का यही रूप है।

अच्छावाक प्रतिदिन यह मंत्र पढ़ता है :—

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्...(ऋ० ६।४७।८)

'अनु' अहीन यज्ञों का रूप है। और 'नेषि' सत्र का रूप है।

इन मंत्रों को रोज पढ़ें। अन्त के मंत्र एक से हैं। इन्द्र यजमान के घर में व्यापक है। वह यज्ञ में है। जैसे बैल गाय के पास जाता है और गाय प्रसिद्ध गोशाला में जाती है। इसी प्रकार इन्द्र यज्ञ में जाता है।

अहीन यज्ञ को "शुनं हुवेम" (ऋ० ३।३०।२२) से समाप्त न करें। क्योंकि जो क्षत्रिय उसको अपने राज्य में आने देता

है जो उसका शत्रु हो चुका है तो उसका राष्ट्र क्षीण हो जाता है। (६)

२३—अहीन यज्ञ की युक्ति भी है और विमुक्ति भी। (जोड़ना और अलग करना)।

अहीन इन ब्राह्मणाच्छंसीय मंत्रों से युक्त होता है;—

व्यंतग्निमतिरद्...(ऋ० ८।१४।७-६)

और इन मंत्रों से विमुक्त होता है:—

एवेदिंद्रम्...(ऋ० ७।२३।६)

अच्छावाक् के इस मंत्र से युक्त होता है:—

आहं सरस्वती वतोः...(ऋ० ८।३८।१०)

इस मंत्र से विमुक्त होता है:—

नूनं सा ते...(ऋ० २।११।२१)

मैत्रावरुण इस मंत्र से जोड़ता है:—

ते स्याम देववरुण...(ऋ० ७।६६।६)

और इससे विमुक्त करता है:—

न ष्टुन...(ऋ० ४।१६।२१)

जो अहीनों को युक्त करना और विमुक्त करना जानता है। वह अहीन यज्ञ के सिलसिले को कायम रख सकता है।

चौबीसवें दिन जोड़ते हैं वह युक्ति है और अन्तिम अतिरात्र के दिन अलग करते हैं यह विमुक्ति है।

अगर एकाह के मंत्रों से समाप्त करते हैं तो अहीन यज्ञ का कृत्य नहीं हो सकता। अगर अहीन का कृत्य करके समाप्त करते हैं तो जैसे थके बैल को अलग कर देते हैं, ऐसे ही यजमान भी यज्ञ से अलग हो जाता है। इसलिये एकाह और अहीन कृत्यों से समाप्त करना चाहिये जैसे दूर की यात्रा करने वाले मंजिल पर बैल बदल देते हैं। इस प्रकार यज्ञ सिलसिलेवार हो जाता है और यजमान विश्राम ले लेते हैं।

दोनों सवनों में स्तोमों में नियत मंत्रों से एक या दो से अधिक न बोले। अधिक बोलने से बड़े वन के समान हो जाता है, तीसरे सवन में अपरिमित बोले क्योंकि स्वर्ग अपरिमित है। स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिये।

जो इस रहस्य को समझता है उसका अहीन यज्ञ आरंभ होकर बिना विघ्न के समाप्त होता है। (७)

२४—देवों ने वल (कन्दरा) में गायों को देखा। उन्होंने यज्ञ के द्वारा उनको लेना चाहा। छठे दिन के द्वारा उन्होंने इनको पा लिया। पहले सवन में नभाक (खोदने का कुदाल) द्वारा वल खोदा। फिर जब छिद्र हो गया तो पत्थरों को हटाया और तीसरे सवन में वालखिल्य मंत्रों रूपी वज्र द्वारा 'वाचः कूट' नामी एक पद से वल को तोड़ लिया और गायों को निकाल लिया।

इस प्रकार यजमान प्रातः सवन में नभाक द्वारा वल को तोड़ते हैं और उसके पत्थरों को ढीला कर लेते हैं। इसी लिये होत्रक लोग प्रातः सवन में नाभाक तृचों को पढ़ते हैं। मैत्रावरुण "यः ककुभो निधारयः" (८।४१।४-६) को, ब्राह्मणाच्छंसी "पूर्वीष्ट इंद्रोपमातयः" (८।४०।९-११) को अच्छावाक "ताहि मध्यं भराणा" (८।४०।३-५) को। तीसरे सवन में वालखिल्य वज्र से और "वाचः कूट" एक पद द्वारा वल को खोद कर गायों को पालते हैं। वालखिल्य सूक्त छः हैं। उनको तीन बारी में पढ़ते हैं। पहले यह पद करके, फिर आधी आधी ऋचा करके, फिर ऋचा वार।

जब पद पद करके पढ़ता है तो हर प्रगाथ में एक पद रखे। इस प्रकार के एक पद पाँच हैं। चार दशाह से लिये हैं और एक महाव्रत से।

महानामन पदों से आठ अक्षरों को जब जब आवश्यकता हो पूरा कर लें। इतरों की परवाह नहीं।

जब आधे आधे मंत्र पढ़ें तो उन पाँच एकपदों को पढ़ें। और महानाम्नी से आठ अक्षर पूरा कर लें।

जब ऋचाबार वालखिल्यों को पढ़ें तो उन पाँच एकपदों को पढ़ें और महानाम्नी मंत्रों से आठ अक्षर लेकर पूरा कर लें।

जब छः वालखिल्यों को पहली बार पढ़ता है तो प्राण और वाणी का विहार कर देता है। जब दूसरी बार पढ़ता है तो आँख और मन को मिला देता है। जब तीसरी बार पढ़ता है तो कानों और आत्मा को मिला देता है।

इस प्रकार विहार का सब काम समाप्त हो जाता है। और वालखिल्य रूपी वज्र, तथा एक पद वाचःकूट और प्राणों का निर्माण इन सब के सम्बन्ध का कार्य्य समाप्त हो जाता है।

वालखिल्य प्रगाथों को विना विहार के (बिना दो सूक्तों को मिलाये हुये चौथी बार पढ़ता है। प्रगाथ पशु हैं। पशुओं की प्राप्ति के लिये। यहाँ बीच में एक पद नहीं मिलाना चाहिये। अगर बीच में एक पद मिलायेगा तो 'वाचः कूट' के द्वारा यजमान को पशुओं से अलग कर देगा उनको मारकर। यदि किसी होत्रक को ऐसा करते देखे तो उससे कहे कि तुम ने यजमान से पशुओं को मार कर अलग कर दिया। तुमने उसको पशुओं से वंचित कर दिया। ऐसा हो ही जाता है। इसलिये ऐसे अवसर पर एकपाद को मिलाना नहीं चाहिये।

वालखिल्य के पिछले दो सूक्तों (७वां, ८वां) को पर्यास के तौर पर जोड़ता है (मानों किसी बर्तन पर ढकन रख दिया) इन दोनों को मिला देता है। वत्स के पुत्र सर्पि ने सुबल नामी

यजमान के लिये इनको इसी प्रकार पढ़ा था। उसने कहा था, 'मैंने यजमान के लिये बहुत पशु पकड़ लिये। बहुत अच्छे मुझे मिलेंगे।" उसने उसको इतनी ही दक्षिणा दी जितनी बड़े २ ऋत्विजों को दी गई। इस शस्त्र से पशु और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसलिये इसका पाठ किया जाता है।(८)

२५—अब दूरोहण का पाठ करता है। इसके लिये एक ब्राह्मण कही जा चुकी (४।२०)। जिसको पशु की कामना हो वह इन्द्र का सूक्त पढ़े। क्योंकि पशु इन्द्र के हैं। यह जगती छन्द में हो, क्योंकि पशु जागत (चलने वाले) हैं। यह महा-सूक्त होना चाहिये जिससे यजमान को बहुत से पशु मिल जायें। वरु ऋषि का सूक्त पढ़े (१०।९६ प्रतेमहे)। यह महा सूक्त भी है और जगती छन्द में भी है।

प्रतिष्ठा की कामना हो तो इन्द्र वरुण का सूक्त पढ़े। क्योंकि यह होत्र उसी देवता का है। यह इन्द्र वरुण की प्रतिष्ठा है। यह जो इन्द्र-वरुण का याज्य है वह उसी अपनी ही प्रतिष्ठा में स्थित है। यह इन्द्र-वरुण का सूक्त निविद के समान है इससे कामनायें पूरी हो जाती हैं। जब इन्द्र-वरुण का सूक्त दुरोहण के लिये चुने तो सुपर्ण ऋषि का चुने (८।५९ इमानि वां भागधेयानि...)। इससे इन्द्र-वरुण तथा सुपर्ण सम्बन्धी कामना एक साथ पूरी हो सकती है।(९)

२६—प्रश्न होता है कि दुरोहण के साथ छठे दिन के अहीन सूक्त पढ़े या न पढ़े ? इसका उत्तर यह है कि अवश्य पढ़े। जब और दिन पढ़ता है तो आज क्यों न पढ़े !

कुछ लोग कहते हैं कि न पढ़े। छठा दिन स्वर्ग लोक है। स्वर्ग लोक असमायी है अर्थात् सब इस को प्राप्त नहीं कर सकते (inaccessible)। स्वर्ग लोक में कोई विरला ही पहुँचता है। अगर दुरोहण के साथ में और सूक्त भी पढ़े

जायँगे तो सभी बराबर हो जायँगे। स्वर्ग लोक की विशेषता यह है कि दुरोहण के साथ अन्य सूक्त न पढ़े जायँ। इस लिये न पढ़े।' इसीलिये नहीं पढ़ता। स्तोत्रिय आत्मा है और वालखिल्य प्राण हैं। जब अहीन सूक्तों का दुरोहण के साथ पाठ करता है तो इन दो देवतों के द्वारा यजमान के प्राण ले लेता है। जब किसी होत्रक को ऐसा करते देखे तो कहे कि तू ने इन दो देवताओं के द्वारा यजमान के प्राण ले लिये। और वह मर जायगा। सदा ऐसा ही होता है। इस लिये न पढ़े।

अगर मैत्रावरुण सोचे कि मैंने वालखिल्य का पाठ कर लिया, अब मैं दुरोहण के पूर्व एकाह सूक्त पढ़ूँ, उसे ऐसा न करना चाहिये। लेकिन अगर घमंड में आकर कहे कि दुरोहण के पीछे बहुत सैकड़ों सूक्त पढ लूँगा तो इस कामना की पूर्त्ति के लिये पढ़ ले। परन्तु न पढ़ना अच्छा है। वालखिल्य इन्द्र के हैं। उनमें बारह अक्षरों के पद होते हैं। और जगती छन्द के इन्द्र के सूक्त से जो कामना पूरी हो सकती है वह इनसे भी पूरी हो सकती है।

न पढने के लिये एक हेतु यह है कि यह इन्द्र वरुण के सूक्त हैं। और इन्द्र-वरुण के याज्य से ही यज्ञ की समाप्ति होती है।

कहते हैं कि जैसा स्तोत्र हो वैसा शस्त्र हो। प्रश्न यह है कि क्या विहार युक्त (मिले हुये) वालखिल्यों की गणना ऐसे स्तोत्रों में है या बिना मिले हुये (अविहृत) की ? इसका उत्तर है कि विहृत सूक्तों की है। बारह अक्षरों का पद आठ अक्षरों के पद से मिल जाता है।

कहते हैं कि जैसा याज्य हो वैसा शस्त्र हो। अगर शस्त्र में तीन देवता हों अर्थात् अग्नि, इन्द्र और वरुण तो केवल इन्द्र

वरुण का याज्य कैसे पढ़े, अग्नि को कैसे छोड़ दे ? इसका उत्तर यह है कि अग्नि और वरुण तो एक ही हैं। ऋषि भी यही कहता है :—

त्वमग्ने वरुणो जायसे (५।३।१)

इसलिये इन्द्र और वरुण के याज्य में अग्नि छूटता नहीं। (१०)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पाँचवाँ अध्याय

२७—शिल्पसूक्तों को पढ़ते हैं। देव-शिल्प बहुत से हैं। और यह जो मानवी शिल्प है वह देव-शिल्पों की अनुकृति है। हाथी की सुनहरी झूलें और घोड़ों के रथ यह सब शिल्प हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह शिल्प को जान सकता है। शिल्पों से आत्मा का संस्कार होता है और आत्मा छन्दोमय हो जाती है। होत्रक इनसे यजमान की आत्मा का संस्कार कर देता है।

नाभानेदिष्ठ को पढ़ता है। नाभानेदिष्ठ वीर्य है। इस प्रकार वह वीर्य को सींचता है। यह अनिरुक्त पढ़ा जाता है (अर्थात् नाभानेदिष्ट का मंत्र में नाम नहीं होता) क्योंकि वीर्य का नाम नहीं लेते। उसे गुप्त रीति से योनि में डाल देते हैं। वह वीर्य मिश्रित हो जाता है। (जब प्रजापति ने पुत्रों के साथ समागम किया) तब वह वीर्य जमीन पर गिर गया। सन्तानोत्पत्ति के लिये। (ऋ० १०।६१।६)

अब नाराशंस को पढ़ता है। 'नर' का अर्थ है 'प्रजा', 'शंस'

को अर्थ है 'वाक्'। इस प्रकार सन्तान में वाणी को रखता है। इस प्रकार बोलने वाली सन्तान उत्पन्न होती है।

कुछ लोग नाराशंस को नाभानेदिष्ठ से पहले बोलते हैं क्योंकि जबान आगे है। कुछ पीछे क्योंकि जबान पिछले भाग में है। मध्य में बोले क्योंकि वाणी मध्य में है। चूँकि वाणी नाभानेदिष्ठ के अगले भाग के निकटतम है अतः नाराशंस को नाभानेदिष्ठ के समाप्त होने से पहले पढ़ना चाहिये।

होता यजमान को वीर्य के रूप में मैत्रावरुण को दे देता है। यह कहकर "तू इसका प्राण बना"। (१)

२८—अब वह वालखिल्य पढ़ता है। वालखिल्य प्राण हैं। इस प्रकार वह यजमान के प्राण बनाता है। वह वालखिल्य को विहृत दशा में पढ़ता है (अर्थात् एक मन्त्र के एक भाग से मिलाकर)। क्योंकि यह प्राण मिले हुये हैं, प्राण अपान से और अपान व्यान से। पहले दो सूक्तों में पद-वार मिलाता है। दूसरे दो में आधी आधी ऋचा करके। और तीसरे दो में मंत्र-वार।

पहले सूक्त में जो मिलाता है सो प्राण और वाणी को मिलाता है। दूसरे में चक्षु और मन को। तीसरे में कान और आत्मा को।

कुछ लोग वालखिल्य पढ़ते हुये दो बृहती और दो सतो-बृहती को मिलाते हैं। इससे इच्छा तो पूरी हो जाती है परन्तु प्रगाथ नहीं बनते। एक पद अधिक मिला कर पढ़े तो प्रगाथ बन जाते हैं। वालखिल्य प्रगाथ हैं। इस लिये एक पद मिला कर पढ़े।

बृहती आत्मा है और सतोबृहती प्राण। बृहती के पढ़ने से आत्मा बनता है और सतोबृहती से प्राण। इस प्रकार बृहती और सतोबृहती के पढ़ने से आत्मा को प्राणों से युक्त करता

है। वालखिल्यों को पद बढ़ा कर ऐसे पढ़े कि प्रगाथ बन जायँ।

बृहती आत्मा है और सतोबृहती पशु। बृहती पढ़ने से आत्मा बनता है और सतोबृहती पढ़ने से पशु बनते हैं। दोनों के पढ़ने से आत्मा को पशुओं से युक्त कर देता है। इसलिये पद बढ़ाकर पढ़े। पिछले दो सूक्त क्रम बदल कर पढ़े जाते हैं। यह उनका विहार है।

मैत्रावरुण इस प्रकार यजमान के प्राण बनाकर उसको ब्राह्मणाच्छंसी के हवाले कर देता है। यह कहकर कि "तू उत्पन्न कर'। (२)

२९—अब ब्राह्मणाच्छंसी 'सुकीर्ति' सूक्त (ऋ० १०।१३१) को पढ़ता है। सुकीर्ति देवयोनि है। इस प्रकार यज्ञ रूपी देव योनि से यजमान को उत्पन्न करता है।

अब वृषाकपि सूक्त (ऋ० १०।८६) को पढ़ता है। वृषाकपि आत्मा है। इस प्रकार यजमान के आत्मा को बनाता है। उसको वह न्यूंख के साथ पढ़ता है। न्यूंख अन्न है। इस प्रकार वह उसे उत्पन्न होने पर अन्न से युक्त करता है जैसे माँ बच्चे को दुग्धपान कराती है।

यह सूक्त पङ्क्ति छन्द में है। पुरुष के पाँच भाग हैं—लोम, त्वचा, माँस, अस्थि, मज्जा। वह जैसे पुरुष बनता है उसी प्रकार यजमान को बनाता है।

ब्राह्मणाच्छंसी उसको पैदा करके अच्छावाक को दे देता है, यह कह कर, "इसके लिये प्रतिष्ठा को बना"। (३)

३०—'एवयामरुत' सूक्त को अच्छावाक पढता है, 'एवयामरुत' प्रतिष्ठा है। इससे यजमान के लिये प्रतिष्ठा का संपादन करता है। इसको न्यूंख से पढ़ता है। न्यूंख अन्न है। इससे यजमान को अन्न युक्त करता है। इस सूक्त का छन्द

जगती और अतिजगती है। यह जो कुछ संसार में है वह या तो जगत् (जंगम) है या अति जगत् (या स्थावर)। यह सूक्त मरुत का है। मरुत जल हैं। जल अन्न हैं जो भरे जाने चाहियें। इस प्रकार वह यजमान को अन्न से युक्त करता है। यह जो नाभानेदिष्ठ, बालखिल्य, वृषाकपि और एवयामरुत सूक्त हैं यह सहचर कहलाते हैं। उनको दूसरों के साथ साथ पढ़े। अगर दूसरों के साथ न पढ़ना चाहे तो न पढ़े। इनको अलग पढ़ना ऐसा ही है जैसे किसी पुरुष को उसके वीर्य से अलग करना। इस लिये या तो इनको दूसरे सूक्तों के साथ पढ़े या न पढ़े।

अश्व के पुत्र अश्वतर के पुत्र बुलिल ने विश्वजित यज्ञ में होता बनते हुये इन शिल्पों के विषय में ऐसा विचार किया था :—"संवत्सर के विश्वजित् यज्ञ में मध्यसवन में दो शस्त्र (मैत्रावरुण और ब्राह्मणाच्छंसी) बढ़ाने के बाद मैं 'एवयामरुत' सूक्त पढ़ूँगा।" उसने ऐसा ही किया। जब वह पढ़ रहा था तो गौश्ल आया। और कहने लगा "होता, यह तेरा शस्त्र बिना पहियों के जैसा क्यों घसिट रहा है ? यह दशा कैसे हो गई ? एवयामरुत तो उत्तर की ओर पढ़ा जाता है"। फिर उसने कहा, 'मध्य सवन इंद्र का है। तू इन्द्र को इसमें से क्यों निकालना चाहता है ?" उसने उत्तर दिया, "मैं इंद्र को इससे निकालना नहीं चाहता"। उसने कहा, 'तुम चाहते हो। क्योंकि यह जगती और अतिजगती छन्द मध्यसवन का नहीं है। यह सूक्त मरुतों का है। इसलिये यहाँ इसका पाठ नहीं होना चाहिये।" उसने कहा, "अच्छावाक, ठहर जाओ। मैं इनके अनुशासन को पूरा करूँगा"। गौश्ल ने कहा, "इंद्र का सूक्त पढ़ो जिसमें विष्णु की छाप पड़ी हो"। इसलिये हे होता, अपने शस्त्र में से 'एवयामरुत' छोड़ दो जो रुद्र

धाय्या के पहले और मरुत शस्त्र के पीछे पढ़ा गया। उसने ऐसा ही किया और अब भी ऐसा ही करते हैं। (४)

३१—इस पर एक शंका होती है। वालखिल्य प्राण हैं और नाभानेदिष्ट वीर्य। वीर्य प्राणों से पहले होता है। जब विश्वजित, अतिरात्र और षडह के छठे दिन मैत्रावरुण वालखिल्य को पढ़ता है जो प्राण का रूप है तो नाभानेदिष्ठ को क्यों नहीं पढता जो वीर्य का रूप है? इसी प्रकार ब्राह्मणाच्छंसी वृषा-कपि को क्यों पढ़ता है जब नाभानेदिष्ठ नहीं पढ़ा जाता। वृषा-कपि आत्मा है। नाभानेदिष्ठ वीर्य है। आत्मा अर्थात् शरीर से वीर्य पहले होता है। यज्ञ से ही यजमान का संस्कार करते हैं। जिस प्रकार योनि में गर्भ बनता है। वह एक ही दिन में नहीं बन जाता। एक एक अंग बनता है। जब पूरा बन जाय तभी कहते हैं कि बन गया इसी प्रकार यज्ञ के पूरी तरह से बनने पर यजमान भी बन जाता है।

होता तीसरे सवन में 'एवयामरुत' पढता है। यही यजमान की प्रतिष्ठा है जिसको वह अन्त में रखता है। (५)

३२—षडह के छठे दिन छन्दों का रस बहने लगा। प्रजापति डरा कि कहीं यह छन्दों का रस बाहर न निकल जाय और लोकों में फैल जाय। इसीलिये उसने दूसरे स्थान पर छन्द रखकर उसको दबा दिया। नाराशंसी से गायत्री का रस दबाया। रैभि से त्रिष्टुभ् का। पारिक्षिति से जगती का, कारव्य से अनुष्टुभ् का। इस प्रकार उसने छन्दों को फिर रसयुक्त कर दिया। जो इस रहस्य को समझता है उसका यज्ञ रसवाले छन्दों से पूरा होता है। और वह यज्ञ को रस युक्त छन्दों से पूरा करता है।

अब नाराशंसी को पढ़ता है। नर का अर्थ है सन्तान और शंस का अर्थ है वाक्। इस प्रकार वह संतान में वाणी की

स्थापना करता है। जो इस रहस्य को समझता है उसकी संतान वाणीयुक्त होती है। देवों और ऋषियों ने नाराशंसी के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त किया। जो इस रहस्य को समझता है उसको भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

यह प्रग्राह* की रीति से पढ़े जाते हैं जैसे वृषाकपि पढ़ा जाता है। (नाराशंसी) वृषाकपि के रूप के हैं। इसलिये भी ऐसा ही नियम है। इनके पाठ में न्यूंख नहीं होता किन्तु एक प्रकार का निनाद होता है। नाराशंसी मंत्रों का यही न्यूंख है।

होता रैभी मंत्रों (अथर्व० २०।१२७।४) को पढ़ता है। देव और ऋषि शोर करते हुये (रेभंतो) स्वर्ग को गये थे। इसी प्रकार यजमान भी शोर करते हुये (रेभंतो) स्वर्ग को जाते हैं। इसको प्रग्राह की रीति से पढ़ता है। जैसे वृषाकपि। यह भी वृषाकपि के रूप के हैं। इसलिये इनके पाठ का भी वैसा ही नियम है। उनका न्यूंख नहीं होता, निनाद होता है। इनका यही न्यूंख है।

अब यह पारिक्षिति (अथर्व० २०।१२७।७-१०) को पढ़ता है। अग्नि परिक्षित है (चारों ओर घूमती है)। प्रजा अग्नि के चारों ओर रहती है और अग्नि प्रजा के चारों ओर। जो इस रहस्य को समझता है, वह अग्नि की सायुज्यता, सारूपता और सालोक्यता प्राप्त करता है। पारिक्षिती मंत्रों के विषय में एक और बात है। संवत्सर परिक्षित है। संवत्सर प्रजा के चारों ओर रहता है और प्रजा संवत्सर के चारों ओर। जो इस

---

*'प्रग्राह' एक पाठ की विधि है जिसमें दो तीन पदों के बाद ठहरना पड़ता है।

रहस्य को समझता है वह संवत्सर की सायुज्यता, सारूपता और सालोक्यता प्राप्त करता है।

इन मंत्रों को प्रग्राह विधि से पढ़ना चाहिये। जैसे वृषाकपि। क्योंकि इनका भी वृषाकपि का सा रूप है। जो नियम वृषाकपि के पढ़ने में होना चाहिये वह इसमें भी। इनमें न्यूंख नहीं होना चाहिये। निनाद होना चाहिये। यही उनका न्यूंख है।

यह "कारव्या मंत्रों" (अथर्व० २०।१२७।११-१४) को पढ़ता है। देवों ने जो कोई कल्याण कर्म किया वह कारव्या के द्वारा किया। इसी प्रकार यजमान भी जो कुछ कल्याण कर्म करते हैं वह व्याख्या के द्वारा करते हैं।

इनको भी प्रग्राह की विधि से पढ़ना चाहिये। जैसे वृषाकपि मंत्र पढ़े जाते हैं। जो वृषाकपि का रूप है। वह इनका रूप है। इसलिये जो नियम वृषाकपि के हैं वही इनके भी होने चाहिये। इनमें न्यूंख नहीं होता, निनाद होता है। यही इनका न्यूंख है।

अब वह "दिशांक्लृप्ती". (अथर्व २०।१२८।१-५) मंत्रों को पढ़ता है। क्योंकि वह इस प्रकार दिशाओं को बनाता है। ऐसे पाँच मंत्र पढ़ता है। पाँच दिशाएँ हैं। चार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, और एक उनके ऊपर। इनमें न न्यूंख होता है, न निनाद। वह सोच कर कि मैं इन दिशाओं को बिगाड़ूँ नहीं (न्यूंख यानि) वह आधा आधा मंत्र करके पढ़ता है।

प्रतिष्ठा के लिये 'जनकल्प' मंत्रों (अथर्व० २०।१२८।६ ११) को पढ़ता है। प्रजा जनकल्प है। ऊपर की रीति से दिशा बना कर वह उनमें प्रजा को रखता है। इनमें न्यूंख नहीं होता, न निनाद होता है। यह सोच कर कि मैं प्रजा को न बिगाड़ूँ, वह आधी आधी ऋचा करके पढ़ता है।

अब इन्द्र-गाथा (अथर्व० २०।१२८।१२-१६) को पढ़ता है। इन्द्र-गाथाओं द्वारा देवों ने असुरों को गाकर हरा दिया। इसी प्रकार इन्द्र-गाथाओं द्वारा यजमान भी अपने वैरियों को हरा देता है। और उन पर विजय पाता है। इनको प्रतिष्ठा के लिये आधी आधी ऋचा करके पढ़ता है। (६)

३३—ब्राह्मणाच्छसी 'ऐतशप्रलाप' पढता है। 'ऐतश' मुनि था। वह "अग्नेरायुः" (अर्थात् अग्नि के जीवन) मंत्रों का द्रष्टा हुआ। यह वह मंत्र है जिनके विषय में लोग कहते हैं कि यह मंत्र यज्ञ के सब दोषों को दूर कर देते हैं। उसने अपने पुत्रों से कहा, "प्यारे पुत्रो, मैंने 'अग्नेरायुः' मंत्रों का दर्शन किया है। मैं उनको तुमसे कहूँगा। मैं जो कुछ कहूँ तुम अवहेलना न करना।" तब उसने कहना शुरू किया :—"एता अश्वा आ लवंते प्रतीपं प्राति सत्वनम्"...(अथर्ववेद २०।१२९।१) उसके वंश का अभ्यग्नि नाम का एक व्यक्ति असमय उसके पास गया और उसके मुँह को बन्द करके कहने लगा, "हमारा बाप पागल हो गया है।" तब उसके बाप ने कहा, 'जा, कोढी हो जा, तू ने मेरी वाणी को मार दिया। नहीं तो मैं गाय के जीवन को सौ साल का और आदमी के जीवन को हजार साल का कर देता। परन्तु तू ने मुझे रोक दिया। मैं शाप देता हूँ कि तेरी संतान पापिष्ठ हो जाय।" इसलिये कहावत है कि औवर्ण गोत्र के ऐतशायनों में अभ्यग्नि लोग बहुत पापी हैं। कुछ लोग इन (ऐतशप्रलाप) को बहुत बढा देते हैं। किसी को इस बात का निषेध नहीं करना चाहिये। कहना चाहिये कि जितने चाहें मन्त्र पढ़ें। क्योंकि ऐतशप्रलाप जीवन है जो इस रहस्य को समझता है वह इस प्रकार यजमान के जीवन को बढा देता है।

ऐतशप्रलाप का यह भी अर्थ है :—यह छन्दों का रस है।

ऐतशप्रलाप के पाठ से छन्दों में रस आ जाता है। उसका यज्ञ रस युक्त छन्दों वाला हो जाता है। वह सरस छन्दों से अपना यज्ञ करता है, जो इस रहस्य को समझता है।

ऐतशप्रलाप का यह भी अर्थ है :—यह यज्ञ की त्रुटियों को दूर करने और यज्ञ को पूर्ण करने के लिये भी है। यह ऐतश-प्रलाप अक्षिति (न क्षय होने वाली चीज) है। इनका पाठ करने में कहते हैं :—"मेरे यज्ञ में कोई त्रुटि न रहे। मेरा यज्ञ अक्षय हो।"

यह ऐतशप्रलाप हर पद पर ठहर ठहर कर पढा जाता है, जैसे निविद पढा जाता है। अन्त के पद में 'ओ३म्' कहते हैं जैसे निविद में।

अब वह प्रवह्लिका मंत्रों (अथर्ववेद २०।१३३।१-६) को पढ़ता है :—देवों ने असुरों को प्रवह्लिका मंत्रों से ठंडा करके हरा दिया (प्रव ह्लय)। इसी प्रकार यजमान लोग प्रवह्लिका मंत्रों से शत्रु को ठंढा करके हरा देते हैं। यह आधा आधा मंत्र करके पढ़ा जाता है, प्रतिष्ठा के लिये।

वह आजिज्ञासेन्या मंत्रों (अथर्ववेद २०।१३४।१-४) को पढता है। आजिज्ञासेन्या मंत्रों से देवों ने असुरों को पहचान कर (आशाय) पछाड़ लिया लिया। इसी प्रकार यजमान भी आजिज्ञासेन्या मंत्रों से शत्रुओं को पहचान कर पछाड़ डालते हैं। वह इनको आधा आधा मंत्र करके पढता है, प्रतिष्ठा के लिये।

प्रतिराध (अथर्ववेद २०।१३५।१-३) मंत्रों को पढ़ता है। प्रतिराध मंत्रों से देवों ने असुरों में विघ्न डाल कर (प्रतिराध्य) उनको हरा दिया। इसी प्रकार यजमान लोग भी प्रतिराध मंत्रों से शत्रुओं में विघ्न डाल कर उनको परास्त कर देते हैं।

अतिवाद (अथर्ववेद २०।१३५।४) को पढ़ता है। अति-वाद से देवों ने असुरों को गाली देकर परास्त कर दिया। यजमान भी अतिवाद के द्वारा शत्रुओं को गाली देकर परास्त कर देते हैं। इसको आधा आधा मन्त्र करके पढ़ता है, प्रतिष्ठा के लिये। (७)

३४—देवनीथ (अथर्ववेद २०।१३५।१-१७ (?)) मन्त्रों को पढ़ता है। आदित्य लोग और अंगिरस लोग स्वर्ग में जाने के लिये लड़ पड़े कि हम पहले जायंगे, हम पहले जायँगे। अंगि-रसों ने मालूम कर लिया कि कल जो हम सोम यज्ञ करने वाले हैं उससे हम स्वर्ग लोक को पहले पहुँच जायंगे। उन्होंने अपने में से एक अग्नि नामी को भेजा कि जाकर आदित्यों से कह दो कि कल जो हम सोम यज्ञ करने वाले हैं उससे हम स्वर्ग में पहले पहुँच जायंगे।

आदित्यों ने अग्नि को देखते ही सोम यज्ञ को जान लिया जिससे वह स्वर्ग को जा सकें। अग्नि ने उनके पास आकर कहा, "कल हम सोमयज्ञ करने वाले हैं जिससे हम स्वर्ग को पहुँच जायंगे।" उन्होंने उत्तर दिया, "हम भी तुम से कहते हैं कि हम अभी सोम यज्ञ करने वाले हैं जिससे हम स्वर्गलोक में पहुँच जायंगे। लेकिन तुझको होता बनाकर ही हम स्वर्ग लोक में पहुँच सकते हैं", वह "अच्छा" कहकर लौट आया। और अंगिरसों से यह बात कह कर फिर आदित्यों के पास लौट आया। उन्होंने पूछा, "तू ने कहा ?" उसने कहा, "हाँ, मैंने कहा। ये कहने लगे कि क्या तूने हम को वचन नहीं दिया था। मैंने कहा कि वचन तो दिया था (लेकिन आदित्यों को इनकार न कर सका) क्योंकि जो यज्ञ रोपता है वह यश पाता है, और जो यज्ञ में विघ्न डालता है वह यश से वंचित हो जाता है। इसलिये मैंने नहीं रोका। इसलिये यदि कोई यज्ञ

का होता बनने से इनकार करे तो केवल दो कारणों से. एक यह कि वह किसी अन्य यज्ञ में संलग्न हो, दूसरे यह कि वह यज्ञ के अयोग्य हो। (८)

३५—इसलिये अंगिरसों ने आदित्यों को यज्ञ में मदद दी। आदित्यों ने अगिरसों को दक्षिणा से पूर्ण पृथिवी दी। परन्तु जब उन्होंने यह पृथ्वी ली तो उसने इनको तपा डाला। इसलिये उन्होंने उसे फेंक दिया। वह सिंहनी होकर मुँह खोलकर आदमियों को खाने दौड़ी। पृथ्वी की इस जलती हुई दशा से ऊँचे नीचे गार पड़ गये, पहले यह समतल थी। इसी लिये कहते हैं कि अस्वीकृत की हुई दक्षिणा को न लेवे। उसे सोचना चाहिये कि जिस दक्षिणा को अग्नि ने बेध दिया वह मुझे क्यों न बेधेगी? यदि दक्षिणा ले भी तो उसे शत्रु को दे देवे। वह हार जायगा क्योंकि यह उसको जला देती है।

यह सूर्य सफेद घोड़ा बन कर काठी और लगाम से युक्त होकर अन्य आदित्यों के पास आया। उन्होंने कहा, "इसको आपको (अगिरसों को) दे देवें।" इस लिये देवनीथ मन्त्र (जो देवों से ले जाया गया) पढ़े जाते हैं। "हे जरितः (स्तुति करने वाले), आदित्य, लोग अंगिरा लोगों के पास दक्षिणा लाये। हे जरितः, वे इसके पास तक न गये"। (अथर्व० २०।१३५।६) अर्थात् पृथ्वी के पास न गये।

"हे जरितः वे उसके पास गये।" अर्थात् उस घोड़े के पास गये।

"हे जरितः, उन्होंने इसको ग्रहण न किया", अर्थात् पृथ्वी को।

"उन्होंने उसको ग्रहण किया, हे जरितः" (अथर्व० २०।१३५।७) अर्थात् उस घोड़े को।

"अहानेतरसं न वि चेतनानि" (अथर्व० २०।१३५।७)

"जब उन्होंने सूर्य को ले लिया तो दिन न रहे", क्योंकि दिन तो सूर्य से ही बनते हैं।

"यज्ञानेतरसं पुरोगवामः" (अथर्व० २०।१३५।७)

"जब सूर्य्य चला गया तो लोग बिना नेता के रह गये"। क्योंकि दक्षिणा यज्ञ की नेता है। जैसे बिना अगुआ बैल के गाड़ी में गड़बड़ हो जाती है इसी प्रकार बिना दक्षिणा के यज्ञ में गड़बड़ हो जाती है। इसलिये कहते हैं कि दक्षिणा अवश्य हो, चाहे थोड़ी ही क्यों न हो।

उत श्वेत आशुपत्वा। (अथर्व० २०।१३५।८)

"यह घोड़ा सफेद और जल्दी चलने वाला है"।

उतो पद्याभिर्यविष्ठः। (अथर्व० २०।१३५।८)

"और पैरों का बहुत तेज है"।

उतेमाशु मानं पिपर्ति (अथर्व० २०।१३५।८)

"वह शीघ्र काम को पूरा करता है"।

"आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु" (अथर्व वे० २०।१३५।६)

"आदित्य, रुद्र और वसु इसकी स्तुति करते हैं"।

इदं राधः प्रतिगृभ्णीह्यंगिरः।* (अथर्व० २०।१३५।६)

"हे अंगिरा लोगो, इस दक्षिणा को ग्रहण करो"।

उन्होंने उसको लेने की इच्छा की।

इदं राधो बृहत्पृथु। (अथर्व० २०।१३५।६)

यह दक्षिणा बहुत बड़ी और विस्तृत है।

देवा ददत्वासुरं।

तद्वो अस्तु सुचेतनम्।

युष्माँ अस्तु दिवे दिवे।

---

*कहीं कहीं किंचित् पाठभेद है।

प्रत्येवगृभायत । (अथर्व० २०।१३५।१०)

"यह जो देवों ने दी है। यह तुम्हारे लिये प्रकाशदायक हो। तुम्हारे लिये यह प्रति दिन हो। इसको ग्रहण करने के लिये राजी हूजिये"।

इस देवनीथ को पद पद पर ठहर कर पढ़ता है जैसे निविद पढ़ा जाता है। इसके अन्त के पद पर 'ओ३म्' कहते हैं जैसे निविद के साथ।

अब वह भूतेच्छद मन्त्रों (अथर्व० २०।१३५।११-१३) को पढ़ता है। इन भूतेच्छद मन्त्रों द्वारा देवों ने युद्ध और माया (चालाकी) से असुरों को हरा दिया। उन्होंने इन भूतेच्छदों से असुरों की शक्ति को मंद कर दिया और उनको परास्त कर दिया। इसी प्रकार यजमान भूतेच्छद मन्त्रों से शत्रुओं की शक्ति को मंद करके उनको परास्त कर देते हैं। उनको आधा मन्त्र करके पढ़ते हैं, प्रतिष्ठा के लिये।

अब अहनस्या मन्त्रों को पढ़ता है। आहनस्य अर्थात् उपस्थ इन्द्रिय से वीर्य निकलता है और वीर्य से सन्तान होती है। इस प्रकार यजमान के लिये संतान को धारण कराता है। यह दस मन्त्र हैं। दश अक्षर का विराट् छन्द है। विराट् अन्न है। अन्न से वीर्य सींचा जाता है। वीर्य से संतान होती है। इस प्रकार वह संतान को धारण कराता है। उनको न्यूंख की रीति से पढ़ता है। क्योंकि न्यूंख अन्न है। अन्न से वीर्य होता है। वीर्य से सन्तान होती है। इस प्रकार यजमान को सन्तान युक्त करता है।

दधिक्रावन मन्त्र को पढ़ता है :—

दधिक्राव्णो अकारिषम् (अथर्व० २०।१३७।३)

दधिक्रा देवों को पवित्र करने वाला है। क्योंकि उसने सबसे उत्तम वीर्य वाले शब्द कहे (अथर्व० २०।१३६।१—१०)

इस देवों को पवित्र करने वाले से वह वाक् को पवित्र करता है।

यह मत्र अनुष्टुभ् छन्द में है। वाक् अनुष्टुभ् है। इस प्रकार इसी के निज छन्द से वह वाक् को पवित्र करता है।

अब वह पावमान्य मन्त्रों (ऋ० ९।१०१।४) को पढ़ता है :—सुतासो मधुमत्तमा......

पावमान्य मन्त्र देवों को पवित्र करने वाले हैं। उसने सबसे उत्तम वीर्य वाले शब्द बोले। इस देवों को पवित्र करने वाले से वाक् को पवित्र करता है।

यह अनुष्टुभ् छन्द में है। अनुष्टुभ् वाक् है। इस प्रकार वाक् को उसी के निज छन्द द्वारा पवित्र करता है।

अब वह इंद्रबृहस्पति के मंत्र पढ़ता है :—

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठत्......(ऋ० ८।९६।१३-१५)

इसके अन्त में है :—

विशो अदेवीरभ्याचरंतीर्बृहस्पतिना युजेंद्रः ससाहे ॥

(ऋ० ८।९६।१५)

"इन्द्र ने बृहस्पति की मदद से देवों के विरोधी लोगों को जो युद्ध में लड़ने आये हरा दिया", क्योंकि असुरों के लोगों को जब वे देवों से लड़ने आये इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से हरा कर भगा दिया। इसी प्रकार यजमान इन्द्र और बृहस्पति की सहायता से असुरों के लोगों को (असुयवर्णम्) हराकर भगा देते हैं।

इस पर कुछ लोग पूछते हैं कि छठे दिन (शस्त्रों के साथ यह सूक्त) पढ़ने चाहिये या नहीं ? इसका उत्तर यह है कि पढ़ना चाहिये। जब अन्य शस्त्रों के साथ पढ़े जाते हैं तो इनके साथ क्यों न पढ़ना चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि न पढ़ना चाहिये। छठा दिन स्वर्ग लोक है। स्वर्ग लोक तक सबकी

पहुँच नहीं है। स्वर्ग लोक में विरले ही जाते हैं। यदि पढ़ेगा तो सबको बराबर कर देगा। न पढ़ना ही स्वर्ग लोक का रूप है। इस लिये न पढ़े। इसलिये नहीं पढ़ता। उक्थ यह है— नाभानेदिष्ठ वालखिल्या, वृषाकपि, एवयामरुत्। इनको यदि पढ़ेगा तो इनमें इच्छा की पूर्त्ति न होगी। वृषाकपि इन्द्र का है। एतशप्रलाप सब छन्दों में होता है। जो इन्द्र का जगती छन्द का मन्त्र है उससे कामना पूरी होती है। इंद्र-बृहस्पति के सूक्त को इन्द्र बृहस्पति के मन्त्र से समाप्त करता है। इसलिये शस्त्रों के साथ इन मन्त्रों को न पढ़े। (९)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पंचिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पंचिका समाप्त हुई।

पहला अध्याय

१—अब पशु के बाँट का विषय है। उसके विभाग कहेंगे। दोनों जबड़े और जीभ प्रस्तोता के लिये। गरुड़ रूपी छाती उद्गाता के लिये। कण्ठ और तालु प्रति हर्ता के लिये। दाहिना नितम्ब होता के लिये। बांया ब्रह्मा के लिये। दाहिनी जाँघ मैत्रावरुण की। बाईं ब्राह्मणाच्छंसी की। दाहिनी बगल कन्धे सहित अध्वर्यु की। बाईं उपगाताओं की (जो सामगान करने वालों के साथ पढ़ते हैं), बाँया कन्धा प्रतिप्रस्थाता के लिये, दाहिने बाजू का नीचे का भाग नेष्टा को, बाँया पोता को, दाहिनी जाँघ अच्छावाक को, बाईं आग्नीध्र को। दाहिने बाजू का ऊपरी भाग अत्रेयि को, बाँया सदस्य को, रीढ़ की हड्डी और मूत्राशय की नलिका गृहपति को, दाहिने पैर भोज देने वाले गृहपति को, बायें पैर भोज देने वाले गृहपति की स्त्री को। ऊपर का होंठ इन दोनों का शामिल है। इसको गृहपति ही बाँटेगा। पूँछ को पत्नियों के लिये ले जाते हैं। लेकिन उनको

चाहिये कि उसे किसी ब्राह्मण को दे देवे। कन्धे का मांस, तीन कीकस ग्रावस्तुत के लिये। तीन दूसरे कीकस और पीठ के मांस का आधा भाग उन्नेता को, गर्दन के मांस का दूसरा अर्ध भाग और बाँया क्लोम, काटने वाले को। वह यदि स्वयं ब्रह्मा न हो तो उसे ब्रह्मा को दे देवे। शिर सुब्रह्मण्य को जो कहता है "श्वः सुत्यां"। चमड़ा सुब्रह्मण्य का है। जो इडा का भाग है वह सब का है। होता का विकल्प से।

यह सब छत्तीस टुकड़े होते हैं। इनमें से हर एक, एक-एक अक्षर है जो यज्ञ को ले जाते हैं। बृहती छन्द ३६ अक्षर का होता है, स्वर्ग लोक बृहती वाले हैं। इस प्रकार प्राणों और स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है और प्राणों और स्वर्गलोकों में प्रतिष्ठित होता है।

जिस पशु को इस प्रकार बाँटते हैं वह स्वर्ग को ले जाने वाला होता है। जो अन्यथा बाँटते हैं वह बुरे और पापी हैं। और पशु को व्यर्थ मारते हैं।

इस प्रकार का पशु का बाँट श्रुत ऋषि के पुत्र देवभाग ने निकाला था। जब वह इस लोक से चलने लगा तो उसने यह रहस्य किसी से न कहा। किसी अमनुष्य ने बभ्रु के पुत्र गिरिज को बताया। तब से मनुष्य इसका अध्ययन करते हैं। (१)

ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

२—कुछ लोग पूछते हैं कि अगर अग्नि स्थापित करने के बाद कोई मनुष्य, उपवसथ (यज्ञ के पहले) के दिन मर जाय तो उसके यज्ञ का क्या हो ? कुछ लोगों की राय है कि उस यज्ञ को न करे क्योंकि वह यज्ञ उसको प्राप्त नहीं होता।

कुछ पूछते हैं कि अगर कोई अग्निहोत्री अग्नि स्थापित कर सान्नाय्य या दूसरी आहुतियों के पीछे मर जाय तो इसका क्या प्रायश्चित्त है ? इसका यही प्रायश्चित है कि सब चीजों को इकट्ठा करके जला दे।

कुछ पूछते हैं कि हवियों का सामान इकट्ठा करने के पीछे कोई मर जाय तो उसका क्या प्रायश्चित्त है ? इसका प्रायश्चित्त यही है कि जिन जिन देवताओं के लिये जो जो हवि इकट्ठी की गई उस-उस को उस-उस देवता के लिये "स्वाहा" कह कर आहवनीय अग्नि में दे दे।

कुछ लोग पूछते हैं कि अगर अग्निहोत्री प्रवास में (घर से दूर) मर जाय तो उसके यज्ञ का क्या हो ? ऐसी गाय के

दूध की आहुति दे, जिसमें दूसरे का बछड़ा लगाया गया हो क्योंकि जैसा उस गाय का दूध है वैसा ही मरे हुये का अग्नि-होत्र है। या किसी और गाय का दूध।

यह भी उपाय बताया जाता है। मृत अग्निहोत्री के सम्बन्धी उन तीनों अग्नियों को जलता रक्खें जब तक कि मृतक की अस्थियाँ ठंढी करके इकट्ठी न हों। अगर मृतक का शरीर न मिले तो ३६० पलाश की लकड़ियाँ लेकर एक पुरुष की शकल का बनावे और उसका अन्त्येष्टि संस्कार करे। और उन बनावटी शरीरांगों को उन अग्नियों के पास लाकर अग्नियों को शांत कर दे। यह पुरुष इस प्रकार बनाया जाय :—१५० लक-ड़ियों का धड़, १४० की जाँघें, ५० की कमर, शेष का सिर। यही इसका प्रायश्चित्त है। (१)

३—(पंचिका पाँच, अध्याय ५, ब्राह्मण २७ वही है जो इस ब्राह्मण में है)। (२)

४—वे पूछते हैं कि यदि सायंकाल को दुहा हुआ सान्नाय्य खराब हो जाय या खो जाय तो इसका क्या प्रायश्चित्त है? इसका प्रायश्चित्त यह है कि अग्निहोत्री प्रातःकाल के दूध के दो भाग करे और आधे का दही बनाकर उसकी आहुति दे दे।

अब सवाल है कि अगर प्रातःकाल दुहा हुआ सान्नाय्य खराब हो जाय या खो जाय तो क्या प्रायश्चित्त है? इसका प्रायश्चित्त यह है कि इन्द्र और महेन्द्र के लिये पुरोडाश बनावे और दूध के बजाय उसके भाग करके आहुति दे।

अब प्रश्न यह है कि यदि सान्नाय्य का सब दूध बिगड़ जाय या नष्ट हो जाय तो क्या प्रायश्चित्त है? इसका वही इन्द्र और महेन्द्र के पुरोडाश का प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न यह है कि अगर सभी हवियाँ बिगड़ जायँ या खो जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है? इसका प्रायश्चित यह है कि घी की आहुतियाँ ले और सब देवताओं का भाग अलग अलग करे। और याज्य हवि को इष्टि के रूप में दे। तब दूसरी इष्टि तैयार करे। यह यज्ञ ही इस यज्ञ का प्रायश्चित्त है। (३)

५—अब प्रश्न यह है कि अग्निहोत्र का सामान करने पर अगर अग्नि में कोई अनुचित वस्तु गिर पड़े तो क्या प्रायश्चित्त है.? इसका प्रायश्चित्त यह है कि इस सब को स्रुच में भर कर पूर्व को ले जाकर आह्वनीय अग्नि में डाल दे। फिर आह्वनीय के उत्तर के भाग से गर्म भस्म को लेकर मन में अग्नि के मंत्रों को जपकर या प्रजापति के मंत्र को पढ़ कर आहुतियाँ दे दे। इस प्रकार आहुति जल तो जाती है लेकिन यथा रीति हवन नहीं होता। चाहे एक आहुति खराब हो चाहे अधिक, प्रायश्चित्त वही है। यदि दुष्ट पदार्थ को फेंकर अदुष्ट पदार्थ डाल कर आहुति दे तो क्रमानुकूल आहुति दे। यह प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न यह है कि यदि अग्नि होत्र के लिये पकाई गई हवि गिर जाय या उबल कर निकल जाय तो इस का क्या प्रायश्चित है? उस पर जल छिड़क दे। शान्ति के लिये। जल ही शान्ति है। सीधे हाथ से उसे छू कर यह मंत्र जपता है :—

"दिवं तृतीयं देवान् यशो गात्। ततो मा द्रविणमाष्टांतरिक्षं तृतीयं पितॄन् यशो गात्। ततो मा द्रविणमाष्ट पृथिवीं तृतीयं मनुष्यान् यशो गात्। ततो मा द्रविणमाष्ट।"

"तीसरा यज्ञ के रूप में द्यौ लोक में देवों के पास जावे। वहाँ से मुझे धन मिले। तीसरा यज्ञ के रूप में अन्तरिक्ष में पितरों के पास जावे। वहाँ से मुझे धन मिले। तीसरा यज्ञ के

रूप में पृथिवी पर मनुष्यों के पास आवे । वहाँ से मुझे धन मिले । अब वह नीचे का विष्णु और वरुण का मंत्र पढ़े :—

यर्योरोजसा स्कभिता रजांसि (अथर्व० ७।२५।१)

क्योंकि यज्ञ में जो बुराई है उसकी विष्णु रक्षा करता है और जो भलाई है उसकी वरुण। उन दोनों की शान्ति के लिये। यही प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि जब हवि को तैयार करके अध्वर्यु आहवनीय अग्नि में पूर्व की ओर ले जाता है तो उस समय यदि हवि गिर जाय या उबल कर निकल जाय तो इसका क्या प्रायश्चित्त है ? यदि वह अपना मुँह पीछे को करेगा तो यजमान को स्वर्ग से विमुख कर देगा । इससे कोई दूसरा ही उसके लिये उस गिरी हुई हवि को इकट्ठा करके यथा क्रम आहुतियाँ दे देवे । यही उसका प्रायश्चित्त है ।

अब प्रश्न है कि यदि स्रुक् टूट जाय तो क्या प्रायश्चित्त है ? दूसरा स्रुक् ले और उससे आहुति दे । तब टूटे हुये स्रुक् को आहवनीय अग्नि में छोड़ दे, हत्था आगे को और प्याली पीछे को । यह उसका प्रायश्चित्त है ।

अब प्रश्न है कि अगर आहवनीय की अग्नि ही जलती हो, गार्हपत्य की बुझ गई हो तो क्या प्रायश्चित्त है ? अगर आहवनीय के पूर्व भाग को गार्हपत्य के लिये ले आवे तो अपनी प्रतिष्ठा खो देगा । यदि पश्चिमी भाग ले आवे तो असुरों के समान यज्ञ करेगा । यदि फिर अग्नि उत्पन्न करे तो यजमान के लिये शत्रु बनावेगा । यदि बुझावे तो यजमान के प्राण चले जायँ । इसलिये सम्पूर्ण आहवनीय अग्नि को लेकर उस में गार्हपत्य की राख मिला कर गार्हपत्य अग्नि में रख देवे । फिर पूर्व भाग को आहवनीय में रख देवे । यही इसका प्रायश्चित्त है । (:

६—अब प्रश्न है कि यदि किसी अग्निहोत्री की अग्नि में से अग्नि ले लें तो उसका क्या प्रायश्चित्त है ? अगर पास दूसरी अग्नि दिखाई पड़े तो उस अग्नि को पहले की जगह पर रख दे। यदि न दिखाई पड़े तो 'अग्नि अग्निवत्' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश देवे। इसके लिये याज्य मंत्र यह है :—

अग्निना अग्निः समिध्यते (ऋ० १।१२।६)

अनुवाक्य यह है :—

त्वं ह्यग्ने अग्निना…(ऋ० ८।४३।१४)

या बिना याज्य और अनुवाक के केवल

"अग्नये अग्नवते स्वाहा" कहकर घी की आहुति आहवनीय अग्नि में दे दे। यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि अगर किसी की आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियाँ मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है ?

वह 'अग्निनीति' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश दे। उसका याज्य यह है :—

अग्न आ याहि वीतये…(ऋ० ६।१६।१०)

अनुवाक्य यह है :—

यो अग्निं देववीतये...(ऋ० १।१२।६)

या केवल 'अग्नये वीतये स्वाहा' से आहवनीय में आहुति दे दे।

अब प्रश्न है कि यदि अग्निहोत्री की तीनों अग्नियाँ आपस में मिल जायँ तो इसका क्या प्रायश्चित्त है। वह अग्नि विविचि के लिये आठ कपालों का पुरोडाश देवे। उसका याज्य यह है :—

स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि...(ऋ० ७।१०।२)

अनुवाक्य यह है :—

त्वामग्ने मानुषी रीडते विशः...(ऋ० ५।८।३)

या केवल 'अग्नये विविचये' से आहवनीय में घी की आहुति दे देवे। यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि किसी की अग्नियाँ दूसरे की अग्नियों में मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है ? "क्षामवत् अग्नि" के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे, उसका याज्य मंत्र यह है :—

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः...(ऋ० १०।४५।४)

अनुवाक्य यह है :—

अधा यथा नः पितरः परासः...(ऋ० ४ २।१६)

या केवल 'अग्नये क्षामवते स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति दे देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है। (५)

७—अब प्रश्न है कि यदि किसी की अग्नियाँ गाँव की अग्नि के साथ जल उठें तो क्या प्रायश्चित्त है ? वह 'अग्नि संवर्ग' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे, उसका याज्य यह है :—

कुवित् सु नो गविष्टये...(ऋ० ८।७५।११)

अनुवाक्य यह है :—

मा नो अस्मिन्महाधने...(ऋ० ८।७५।१२

या केवल 'अग्नये संवर्गाय स्वाहा' से आहवनीय अग्नि में घी की आहुति देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि किसी की अग्नियाँ दिव्य अग्नि से मिल जायँ तो इसका क्या प्रायश्चित्त है ? वह 'अग्नि अप्सुमत्' के लिये आठ कपाल का पुरोडाश बनावे। याज्य मंत्र यह है—

अप्स्वग्ने सधिष्टव...(ऋ० ८।४३।६)

अनुवाक्य यह है :—

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो...(ऋ० ३।१।३)

या केवल 'अग्नये अप्सुमते स्वाहा' से आहवनीय अग्नि में घी की आहुति दे दे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि जब अग्निहोत्री की अग्नियाँ लाश की अग्नि से मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है? 'अग्नि शुचि' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनाये! उसका याज्य मंत्र यह है:—

अग्निः शुचिव्रततमः...(ऋ० ८।४४।२१)

अनुवाक्य यह है:—

उदग्ने शुचयस्तव...(ऋ० ८।४४।१७)

या केवल 'अग्नये शुचये स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति दे देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि जिसकी अग्नियाँ अरण्य की अग्नि से मिल जावें उसका क्या प्रायश्चित्त है? वह अरणियों से उस को पकड़ ले। और यदि संभव न हो तो आहवनीय या गार्हपत्य से एक जलती लकड़ी ले, और बचा रक्खे। यदि यह भी संभव न हो तो 'अग्नि संवर्ग' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनाये और ऊपर दिये याज्य और अनुवाक्यों का प्रयोग करे। या 'अग्नये संवर्गाय स्वाहा' से घी की एक आहुति दे देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है। (६)

८—अब प्रश्न यह है कि यदि उपवास के दिन अग्निहोत्री हवि पर आँसू बहा दे तो क्या प्रायश्चित्त है? वह 'अग्नि व्रत-भृत्' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे। उसका याज्य यह है:—

त्वमग्ने व्रतभृच्छुचि...(आश्व० ३।११)

अनुवाक्य यह है:—

व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदब्ध...(आश्व० ३।११)

या 'अग्नये व्रतभृते स्वाहा' से आहवनीय में घी की एक आहुति दे दे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि अग्निहोत्री उपवास के दिन व्रत के विरुद्ध कोई कार्य करे तो उसका प्रायश्चित्त क्या है? वह 'अग्नि व्रतपति' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनाये। उसका याज्य मंत्र यह है :—

त्वमग्ने व्रतपा असि...(ऋ० ८।११।१)

अनुवाक्य यह है :—

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि...(ऋ० १०।२।४)

या केवल 'अग्नये व्रतपतये स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति दे देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न यह है कि यदि अग्निहोत्री अमावस्या या पूर्णमासी का यज्ञ छोड़ जावे तो इसका क्या प्रायश्चित्त है। वह 'अग्नि पथिकृत' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे। इसका याज्य मंत्र यह है :—

वेत्था हि वेधो अध्वनः (ऋ० ६।१६।३)

अनुवाक्य यह है :—

आ देवानामपि पन्था मगन्म...(ऋ० १०।२।३)

या केवल 'अग्नये पथिकृते स्वाहा' से आहवनीय में घी की एक आहुति देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि किसी अग्निहोत्री की तीनों अग्नियाँ बुझ जावें तो उसका क्या प्रायश्चित्त है? वह 'अग्नि तपस्वत् जनद्वत् पावकवत्' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे। इसकी याज्य आहुति यह है :—

आयाहि तपसा जनेषु (आश्व० ३।१२)

अनुवाक्य यह है :—

आ नो याहि तपसा जनेषु (आश्व० ३।११)

या 'अग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवते स्वाहा' से आहवनीय में घी की एक आहुति देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है। (७)

९—अब प्रश्न है कि यदि कोई अग्निहोत्री आग्रायण इष्टि में आहुति दिये बिना नया अन्न खाले तो उसका क्या प्रायश्चित्त है? वह "अग्नि वैश्वानर' के लिये दस कपालों का पुरोडाश बनावे। उसका याज्य यह है :—

वैश्वानरो अजीजनत् पृष्टो दिवि*

अनुवाक्य यह है :—

पृष्टो अग्निः पृथिव्याम् (ऋ० १।९८।२)

या 'अग्नये वैश्वानराय स्वाहा' से आहवनीय में घी की एक आहुति दे देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि पुरोडाश का कपाल टूट जाय तो क्या प्रायश्चित्त है? वह अश्विनों के लिये दो कपालों में पुरोडाश बनावे। याज्य यह है :—

अश्विना वर्तिरस्मदा...(ऋ० १।९२।१६)

अनुवाक्य यह है :—

आ गोमतानासत्यारथेन...(ऋ० ७।७२।१)

या 'अश्विभ्यां स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति दे देवे। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि अग्निहोत्री का पवित्रा (कुश) खो जाय तो उसका क्या प्रायश्चित्त है। वह "अग्नि पवित्रवत्" के लिये आठ कपालों का पुरोडाश दे। याज्य मंत्र यह है :—

पवित्र ते विततं ब्रह्मणस्पते...(ऋ० ९।८३।१)

अनुवाक्य यह है :—

---

* यह मन्त्र कहाँ का है, पता नहीं।

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे...(ऋ० ६।८३।२)

या "अग्नये पवित्रवते स्वाहा" से आहवनीय में घी की एक आहुति देवे। यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि अग्निहोत्री का सोना (हिरण्य) खो जाय तो इसका क्या प्रायश्चित्त है ? वह 'अग्नि हिरण्यवत्' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे। उसका याज्य मंत्र यह है :

हिरण्यकेशो रजसो विसारे...(ऋ० १।७६।१)

अनुवाक्य यह है :—

आ ते सुपर्णा अमिनंतँ एवैः...(ऋ० १।७६।२)

या 'अग्नये हिरण्यवते स्वाहा' से आहवनीय में घी की एक आहुति देवे। यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि अग्निहोत्री प्रातःकाल स्नान किये बिना अग्निहोत्र करे तो इसका क्या प्रायश्चित्त है ? वह अग्नि वरुण के लिये आठ कपालों का पुरोडाश बनावे। याज्य मंत्र यह है :—

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्...(ऋ० ४।१।४)

अनुवाक्य यह है :—

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती...(ऋ० ४।१।५)

या 'अग्नये वरुणाय स्वाहा" से आहवनीय अग्नि में एक आहुति दे। यही इस का प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि अग्निहोत्री सूतका स्त्री का पकाया अन्न खा ले तो इसका क्या प्रायश्चित्त है ?

'अग्नि तन्तुमत्' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश दे। इसका याज्य मंत्र यह है :—

तं तुं तन्वन् रजसो...(ऋ० १०।५३।६)

उसका अनुवाक्य यह है :—

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या...(ऋ० १०।५३।७)

या "अग्नये तन्तुमते स्वाहा" से ही आहवनीय में घी की आहुति दे दे। इसका यही प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न यह है कि यदि कोई अग्निहोत्री अपने जीवन-काल में किसी को सुने कि वह उसे मरा बताता है तो इसका क्या प्रायश्चित्त है? वह 'अग्नि सुरभिमत्' के लिये आठ कपालों का पुरोडाश देवे। उसका याज्य मंत्र है :—

अग्निर्होतान्यसीदत्...(ऋ० ५।१।६)

और अनुवाक्य यह है :—

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य (ऋ० १०।५३।३)

या 'अग्नये सुरभिमते स्वाहा' से आहवनीय अग्नि में आहुति देवे। यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि यदि किसी अग्निहोत्री की स्त्री या गाय जुड़वाँ बच्चे दे तो इसका क्या प्रायश्चित्त है। वह 'अग्नि मरुत्वत्' के लिये तेरह कपालों का पुरोडाश बनावे। उसका याज्य मंत्र यह है :—

मरुतो यस्य हि क्षये...(ऋ० १।८६।१)

और अनुवाक्य यह है :—

अरा इवेदचरमा अहेव...(ऋ० ५।५८।५)

या केवल 'अग्नये मरुत्वते स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति देवे। यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि अपत्नीक (जिसकी स्त्री मर गई हो) अग्निहोत्री आहुतियाँ दे या न दे। उसे देना चाहिये। अगर न देगा तो 'अनद्धा' कहलायेगा। अनद्धा कौन है? जो न देवों

को आहुति दे, न पितरों को, न मनुष्यों को। इसलिये अपत्नीक भी अग्निहोत्र करे। इस विषय में एक गाथा कही जाती है :—

"यजेत् सौत्रामण्यामपत्नीकोप्यसोमपः। माता पितृभ्यामनृणार्थादि यज।"

"अपत्नीक असोमप भी सौत्रामणि में यज्ञ करे। माता पिता का ऋण चुकाने के लिये यज्ञ करे।"

इस श्रुति के वचन से सोम यज्ञ भी करे। (८)

१०—प्रश्न है कि अपत्नीक वाक् (मंत्रों से) अग्निहोत्र कैसे करे ? पत्नी के मर जाने से अग्निहोत्र का अधिकार नष्ट हो जाता है। फिर वह कैसे अग्निहोत्र करे ? एक मनुष्य के इस लोक में और उस लोक में भी पुत्र, पौत्र और नाती होते हैं। यह लोक ही स्वर्ग लोक है (अर्थात् इस लोक के यज्ञ से स्वर्ग होता है) । वह सन्तान से कहे, 'इस स्वर्ग से मैं उस स्वर्ग को पहुँचा"। अगर (दूसरी) पत्नी की इच्छा न हो तो उसके लिये उसकी संतान यज्ञ को कायम रखती है। अपत्नीक अग्निहोत्र कैसे करे ? ।श्रद्धा पत्नी है। सत्य यजमान है। श्रद्धा और सत्य का बड़ा अच्छा जोड़ा है। श्रद्धा और सत्य के जोड़े से स्वर्गलोकों को प्राप्त करता है। (९)

११—अब प्रश्न होता है कि यदि दर्शपूर्णमास यज्ञों के उपवास के दिन (एक दिन पहले) कोई व्रत न करे तो देव हवि को नहीं खाते। इस लिये उपवास के दिन देव व्रत करे तो देव हवि को खायेंगे। पूर्णमासी के पहले भाग में उपवास करे यह पैंग्य की राय है। पिछले भाग में, यह कौषीतकि की। पूर्णमासी के पहले भाग को अनुमति कहते हैं। पिछले को राका। अमावस्या के पहले भाग को सिनीवाली, पिछले को

कुहू। चाँद अस्त होकर फिर उदय हो इस बीच को तिथि कहते हैं। 'पूर्णमासी के पहले भाग में उपवास करे' इस बात को न मान कर अमावस्या के पिछले भाग में जब चाँद निकले तब यज्ञ करता है। उस दिन सोम को खरीदता है। इसलिये पिछले-पिछले भाग में ही उपवास करे। पिछले भाग सोम के हैं। सोम को देवता मानकर यज्ञ करता है। यह जो चन्द्रमा है वह देव सोम है। इसलिये पिछले भाग में उपवास करे। (१०)

१२—अब प्रश्न है कि सूर्य्य के उदय या अस्त से पहले यदि अग्नि को (गार्हपत्य से आहवनीय तक) न ला सके या लावे और हवन करने से पूर्व अग्नि बुझ जाय तो इसका क्या प्रायश्चित्त है। सायंकाल को (सूर्य्यास्त के पश्चात्) स्वर्ण को सामने रखकर अग्नि को ले आवे। ज्योति शुक्र है। स्वर्ण ज्योति है। सूर्य्य शुक्र है। मानो उसी शुक्र ज्योति को देखता हुआ अग्नि निकालता है। प्रातःकाल (सूर्य्योदय के पीछे) नीचे चाँदी रखकर अग्नि निकाल ले। क्योंकि चाँदी रात का रूप है। आहवनीय को (गार्हपत्य से) उस समय तक निकाल लेना चाहिये जब तक अंधेरा न हो जाय। यह जो अंधेरा या छाया है वह मृत्यु है। इस (चाँदी की) ज्योति से वह मृत्यु रूपी अन्धकार या छाया को तरता है। यही उसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि जिसकी आहवनीय या गार्हपत्य अग्नियों पर होकर गाड़ी या रथ या घोड़ा गुजर जाय उसका क्या प्रायश्चित्त है? कुछ की राय है कि इसकी परवाह न करे क्योंकि यह तो उसकी आत्मा में ही रक्खी हुई होती हैं। यदि परवाह करे तो गार्हपत्य से आहवनीय तक लगातार पानी की धार इस मंत्र को बोलकर डाले :—

तंतु तन्वन् रजसो भानुमन्विहि... (ऋ० १०।५३।६)

यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब प्रश्न है कि अग्नियों पर समिधा रखते समय अग्निहोत्री अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) को भी प्रज्वलित करे या न करे? इस पर कुछ की राय है कि अवश्य करे। वह आत्मा प्राणों को रखता है जो अग्नियों को प्रज्वलित करता है, इनमें से दक्षिणाग्नि बहुत अच्छी तरह अन्न को देती है। इसलिये 'अग्नये अन्नादाय अन्नपतये स्वाहा' से उसमें एक आहुति देवे। जो इस रहस्य को समझता है वह अन्न खाने वाला और अन्नपति हो जाता है और संतान और अन्न से युक्त हो जाता है।

अग्निहोत्र की इच्छा करने वाला गार्हपत्य और आहवनीय के बीच में चले। इस प्रकार उसको चलते देखकर अग्नियाँ समझती हैं कि यह हमारे में होम करेगा। जो इस प्रकार चलता है, दोनों अग्नियां उसके पाप को दूर कर देती हैं। जिसका पाप दूर हो जाता है वह स्वर्ग लोक को जाता है। ऐसा उस ब्राह्मण में लिखा है जिसको लोग उद्धृत किया करते हैं।*

अब प्रश्न होता है कि जो परदेश में है वह अग्निहोत्री अपनी अग्नियों के पास कैसे समझा जाय। क्या अनुपस्थित को उपस्थित समझा जाय या वह प्रतिदिन वापिस आवे? कुछ की राय है कि चुपचाप (मन में अपने को उपस्थित समझ ले)। चुपचाप ही तो श्रेय की इच्छा किया करते हैं। कुछ की राय है कि वह रोज उनके पास जावे। क्योंकि जो अनुपस्थित होता है उसकी अग्नियाँ यजमान को अश्रद्धा से देखती हैं और भयभीत होती हैं कि कहीं यह हमको तितर-बितर न करदे।

---

*यह कोई और ब्राह्मण ग्रन्थ प्रतीत होता है।

इसलिये प्रति दिन उपस्थित होवे। अगर उपस्थित न हो सके तो कहे :—

अभयं वो अभयं मे।

"आप के लिये अभय हो। मेरे लिये अभय हो।"

इस प्रकार उसके लिये भय नहीं रहता। (११)

ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ३

१३—इक्ष्वाकु वंश के वेधस राजा का पुत्र राजा हरिश्चन्द्र निस्सन्तान था। उसकी सौ पत्नियाँ थीं। परन्तु उसके कोई पुत्र न हुआ। उसके घर में पर्वत और नारद दो ऋषि रहते थे। उसने नारद से पूछा :—

"सभी पुत्र की इच्छा करते हैं, ज्ञानी हों या अज्ञानी। हे नारद, बताओ पुत्र से क्या लाभ होता है ?"

नारद ने इस एक श्लोक का दस श्लोकों में उत्तर दिया :—

(१) अगर पिता जीते हुये, पुत्र का मुख देख ले तो उस का ऋण छूट जाता है और वह अमर हो जाता है।

(२) प्राणियों के लिये जितने पृथिवी में भोग हैं, जितने अग्नि में और जितने जलों में, उनसे भी अधिक पिता के लिये पुत्र में।

(३) सदा पिता लोग पुत्र के द्वारा आपत्तियों को पार करते हैं। आत्मा आत्मा से उत्पन्न होता है। पुत्र एक अच्छी तारने वाली नौका है।

(४) लोग ऐसा कहते हैं कि मल-युक्त रहने, बकरी का चमड़ा पहनने या डाढ़ी मूँछ रखने या तप करने से क्या लाभ ? (अर्थात् अविवाहित रहने से कुछ लाभ नहीं)। हे ब्राह्मणो ! पुत्र की इच्छा करो।

(५) अन्न प्राण देता है, कपड़ा रक्षा करता है, स्वर्ण रूप देता है। विवाह से पशु मिलते हैं, स्त्री सखा है। दुहिता कृपा का पात्र है। परन्तु पुत्र उस लोक में भी ज्योति है।

(६) पति स्त्री में गर्भ के रूप में प्रविष्ट होता है। उसमें फिर नया जन्म लेकर दसवें मास में उत्पन्न होता है।

(७) स्त्री तभी "जाया" होती है जब पुरुष उसमें पुत्र होकर जमाता है। जो बीज उसमें रक्खा जाता है वह वृद्धि पाकर उपजता है।

(८) देवों और ऋषियों ने पहले उसे तेज युक्त कर दिया, फिर देवों ने मनुष्यों से कहा कि यह अब तुम्हारी जननी है अर्थात् तुम इसके द्वारा उत्पन्न हो।

(९) जिसके पुत्र नहीं उसका लोक नहीं। इसको सब पशु जानते हैं। इसलिये वहाँ मा और बहिन के साथ भी पुत्र समागम करता है।

(१०) जिनके पुत्र होते हैं वे शोक रहित होकर बड़े चौड़े चकले मार्ग पर चलते हैं। पशु और पक्षी भी इस बात को जानते हैं और वे अपनी माता तक से समागम करते हैं। (१)

१४—फिर नारद ने उससे कहा, "राजा वरुण के पास जाओ और कहो कि मुझे पुत्र दो। मैं उस पुत्र से तुम्हारा यज्ञ करूँगा"।

उसने कहा, "अच्छा"। वह राजा वरुण के पास गया और कहने लगा, "मुझे पुत्र मिल जाय तो मैं तेरा यज्ञ करूँ"। उसने कहा, "अच्छा"। उसके रोहित नाम का पुत्र हुआ। वरुण ने कहा, "तेरे पुत्र हो गया, तू उससे मेरा यज्ञ कर"। उसने कहा, "जब पशु दस दिन का हो जाय तो तेरा यज्ञ करूँ"। उसने कहा, "अच्छा"। जब वह दस दिन का हो गया तब वरुण ने उससे कहा, "अब तो यह दस दिन का हो गया। अब तू इससे मेरा यज्ञ कर"। हरिश्चन्द्र ने कहा, "जब पशु के दाँत हो जाते हैं तब वह यज्ञ के योग्य होता है। इसके दाँत निकल आने दे, तब मैं इससे तेरा यज्ञ करूँगा"। उसने कहा, "अच्छा"। उसके दाँत निकल आये। तब वरुण ने कहा, "अब इसके दाँत निकल आये। यज्ञ कर"। हरिश्चन्द्र ने कहा, "जब पशु के दाँत गिर पड़ते हैं तब वह यज्ञ के योग्य होता है। इसके दाँत गिर जाने दे तब मैं तेरा यज्ञ करूँगा"। उसने कहा, "अच्छा"। अब उसके दाँत गिर गये। तब वरुण ने कहा, "इसके दाँत तो गिर गये। अब यज्ञ कर"। हरिश्चन्द्र ने कहा, "जब पशु के दाँत दुबारा जमते हैं तब वह यज्ञ के योग्य होता है। इसके दाँत फिर जम आने दे, तब तेरा यज्ञ करूँगा"। उसने कहा, "अच्छा"। अब उसके दाँत फिर जम आये। वरुण ने कहा "इसके दाँत तो फिर जम आये। तू मेरा यज्ञ कर"। हरिश्चन्द्र ने कहा, "जब क्षत्रिय शस्त्रधारी हो जाता है तब यज्ञ के योग्य होता है। इसको शस्त्रधारी हो जाने दे, तब इससे तेरा यज्ञ करूँगा"। उसने कहा, "अच्छा"। अब वह शस्त्रधारी हो गया। तब वरुण ने कहा, "अब यह शस्त्रधारी

भी हो गया। अब तू इससे मेरा यज्ञ कर"। उसने कहा, "अच्छा", और पुत्र को बुलाया। और उससे कहा, "जिसने तुझको मुझे दिया उसके लिये मैं तुझे यज्ञ में दूंगा"। उसने इनकार किया और धनुष लेकर चला गया और साल भर तक जंगल में फिरता रहा। (२)

१५—अब वरुण ने इक्ष्वाकु की संतान अर्थात् हरिश्चन्द्र को पकड़ लिया। और उसका पेट फूल गया। इस बात को रोहित ने सुना और जंगल से गांव में आया। वहाँ इन्द्र पुरुष के रूप में मिला और उससे बोला, "हे रोहित, हमने सुना है कि जो यात्रा नहीं करता उसको श्री नहीं मिलती। मनुष्यों में रहते-रहते अच्छा आदमी भी बुरा हो जाता है। इन्द्र उसीका सखा है जो विचरता रहता है। इसलिये तू विचरता ही रह"।

रोहित ने सोचा कि ब्राह्मण ने मुझसे विचरने को कहा है। इसलिए वह दूसरे वर्ष बन में विचरता रहा। जब बन से आकर वह एक गाँव में घुसा, इन्द्र ने पुरुष के रूप में उससे मिलकर कहा, "जो विचरता है उसके पैर फूलयुक्त होते हैं। उसका आत्मा फल को उगाता और काटता है और भ्रमण के श्रम से उसके सब पाप छूट जाते हैं। इसलिये तू विचरता ही रह"।

रोहित ने सोचा कि ब्राह्मण ने मुझे विचरने के लिये कहा है, इस लिये वह तीसरे साल भी बन में विचरता रहा। जब वह बन से आकर गाँव में घुसने लगा तो इन्द्र ने पुरुष के रूप में मिलकर उससे कहा, "बैठे हुये का भाग्य बैठता है, खड़े हुये का खड़ा होता है। जो पड़ा रहता है उसका भाग्य भी पड़ा रहता है। जो विचरता है उसका भाग्य भी विचरता है। इसलिये तू विचरता रह"।

रोहित ने सोचा कि एक ब्राह्मण ने मुझसे विचरने के लिये कहा है इसलिये वह चौथे साल भी वन में विचरता रहा। जब वह वन से आकर गाँव में घुसने लगा तो इन्द्र ने पुरुष के रूप में उससे कहा, "कलि ज़मीन पर पड़ा रहता है, द्वापर ऊपर मंडलाता है। त्रेता खड़ा रहता है और सत् युग चलता रहता है। इस लिये विचरता रह"।

रोहित ने सोचा कि ब्राह्मण ने मुझसे विचरने के लिये कहा है इस लिये वह पाँचवें वर्ष भी बन में फिरता रहा। जब वह जंगल से आकर गाँव में घुसने लगा तो इन्द्र ने पुरुष के रूप में उससे कहा, "जो विचरता है उसको मधु और उदुम्बर का मीठा फल मिलता है। सूर्य्य के सौन्दर्य को देख कि विचरता हुआ ऊबता नहीं। इसलिये विचरता रह"।

रोहित ने सोचा कि एक ब्राह्मण ने मुझे विचरने के लिये कहा है। इसलिये वह छठे साल विचरता रहा। वह जंगल में सुयवस ऋषि के पुत्र अजीगर्त से, जो बिना भोजन के रह रहा था, मिला। उसके तीन लड़के थे शुनः पुच्छ, शुनः शेप और शुनोलांगूल। उसने उससे कहा, 'ऋषि, मैं तुमको सौ गायें दूंगा, तुम मुझे इन पुत्रों में से एक दे दो कि मैं यज्ञ में इसके द्वारा अपने को बचा सकूँ'। अजीगर्त ने ज्येष्ठ पुत्र को लेकर कहा "इसे मत लो", माता ने कनिष्ठ के लिये यही कहा। वे दोनों बीच के शुनः शेप के लिये राजी हो गये। वह सौ गायें देकर उसको लेकर बन से ग्राम में आया। और पिता से बोला, "मैं इसके द्वारा अपने को यज्ञ की बलि से बचाऊँगा." वह वरुण के पास आकर बोला, 'मैं इसके द्वारा तेरा यज्ञ करूँगा।" वरुण ने कहा, "अच्छा, क्योंकि क्षत्रिय से ब्राह्मण और अच्छा।" तब वरुण ने उसको राजसूय यज्ञ की विधि

बताई। इसी प्रकार अभिषेचन के दिन उसने पशु के बदले पुरुष को बलि किया। (३)

१६—इस यज्ञ में विश्वामित्र होता था, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा, अयास्य उद्‌गाता। आरम्भ करने पर कोई ऐसा आदमी न मिला जो उसको बाँधता। सुयवस के पुत्र अजीगर्त ने कहा, "मुझे सौ गायें और दो। मैं उसको बाँधूगा"। उसको सौ गायें और दीं। और उसने बाँध दिया। आप्रि मन्त्रों का पाठ हो गया और अग्नि की परिक्रमा भी हो गई। अब उसको बध करने वाला कोई न मिला। तब सुयवस के पुत्र अजीगर्त ने कहा, "मुझे सौ गायें और दो। मैं उसका बध कर दूँगा"। उसको सौ गायें और दी गई और वह बध करने के लिये तलवार तेज करने लगा। शुनःशेप ने देखा कि यह मुझे ऐसे मार रहे हैं मानों मैं आदमी ही नहीं हूँ। मैं अब देवताओं के पास दौड़ूँ। वह देवताओं में सबसे पहले प्रजापति के पास गया। और यह ऋचा पढ़ी :—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्······(ऋ० १।२४।१)

इस प्रकार पूजा करते हुये उसको प्रजापति ने कहा, "अग्नि देवों में सब से निकट है। तू उसके पास जा"।

अब वह इस मंत्र से अग्नि के पास गयाः—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्······(ऋ० १।२४।२)

इस प्रकार पूजा करते हुये उससे अग्नि ने कहा, "प्राणियों का स्वामी सविता है उसके पास जाओ।" अब नीचे के तीन मन्त्रों से सविता के पास गयाः—

अभि त्वा देव सवितः;······(३)

यश्चिद्धित इत्था······(४)

भगभक्तस्य ते······(५)   (ऋ० १।२४।३-५)

सविता ने कहा, "तू राजा वरुण के लिये बाँधा गया है। उसी के पास जा"।

उसने इन ३१ मन्त्रों (ऋ० १।२४।६-१५ ; १।२५।१-२१) से वरुण से प्रार्थना की।

वरुण ने उससे कहा, "देवों में अग्नि मुख है। और सबसे अधिक सहृदय है। उसी की स्तुति कर। तो हम तुझको छोड़ देंगे"। तब उसने अग्नि की २२ मन्त्रों से स्तुति की (ऋ०१।२६।१-१० तथा १।२७।१-१२)।

अग्नि ने कहा, "विश्वेदेवों की स्तुति कर। तब हम तुझे छोड़ेंगे"। उसने विश्वेदेवों की नीचे के मंत्र से स्तुति की:—

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः…(ऋ० १।२७।१३)

विश्वेदेवों ने उससे कहा "देवों में इन्द्र सबसे अधिक ओज वाला, बल वाला, सहन वाला और पार लगाने वाला है। उसकी स्तुति कर तब हम तुझे छोड़ेंगे"।

उसने इन मंत्रों से इन्द्र की स्तुति की :—

यच्चिद्धि सत्य सोमपा……आदि

(ऋग्वेद के पहले मंडल का २९वाँ सूक्त और ३०वें सूक्त के पहले १५ मंत्र)

इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसको एक सोने का रथ दिया। उसने नीचे के मंत्र से इसे स्वीकार किया:—

शश्वदिन्द्रः………(ऋ० १।३०।१६)

तब इन्द्र ने उससे कहा "अश्विनों की स्तुति कर। तब हम तुझे छोड़ेंगे"।

उसने अगले तीन मंत्रों से अश्विनों की स्तुति की

आश्विना वश्वा······(१७)
समानयाजनो हि वां······(१८)
न्यध्न्यस्य मूर्धनि······(१९)

(ऋ० १।३०।१७-१९)

अश्विनों ने उससे कहा, "तू उषा की स्तुति कर। तब हम छोड़ेंगे"।

उसने अगले तीन मंत्रों से उषा की स्तुति की।

कस्त उषः कधप्रिये······(२०)
वयं हि ते अमन्मह्या······(२१)
त्वं त्येभिरा गहि······(२२)

(ऋ० १।३०।२०-२२)

उसके एकाएक मंत्र पढ़ने पर उसके बंधन खुलते गये और ऐक्ष्वाक का पेट पटकता गया। जब वह अन्तिम मंत्र पढ़ चुका तो अन्तिम बंधन टूट गया और हरिश्चन्द्र स्वस्थ हो गया। (४)

१७—अब ऋत्विजों ने शुनःशेप से कहा, "अब तू हममें से ही है। आज के यज्ञ में भाग ले"। अब शुनःशेप ने "अंजः सव" अर्थात् सोमरस निकालने की विशेष विधि को निकाला। और नीचे की चार ऋचाओं द्वारा सोम रस निकालाः—

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५॥

उतस्मते वनस्पते······(६)
आयजी वाजसातमा······(७)
तानो अद्य वनस्पती······(८) (ऋ० १।२८।५-८)

और नीचे के मंत्र से उसे द्रोणकलश में रक्खाः—

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आसृज ।
निधे हि गोरधि त्वचि ॥ (ऋ० १।२८।६)

और इस सूक्त के पहले चार मन्त्रों द्वारा स्वाहा जोड़कर (ऋ० १।२८।१-४) उसने सोम यज्ञ किया।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न……(१)
यत्र द्वाविव जघना……(२)
यत्र नार्य पच्यव……(३)
यत्र मन्थां विवध्नते……(४) (ऋ० १।२८।१-४)

अब वह अवभृथ अर्थात् यज्ञ की अन्तिम क्रिया के निमित्त सामग्री लाया। और उसने नीचे के दो मंत्रों से आहुतियाँ दीं :—

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्…(४)
स त्वंनो अग्नेऽवमो……(५) (ऋ० ४।१।४-५)

जब यह कृत्य समाप्त हो गया तो शुनःशेप ने हरिश्चन्द्र को आहवनीय के पास बुलाकर नीचे का मंत्र पढ़ाः—

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रात्… (ऋ० ५।२।७)

अब शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में जाकर बैठ गया। सुयवस के पुत्र अजीगर्त ने कहा, "ऋषि, मेरे पुत्र को मुझे दो"। उसने कहा, "नहीं। देवों ने इसे मुझे दिया है (अरासत)। तब से उसका नाम "देवरात वैश्वामित्र" हो गया। उसके 'कापिलेय' और 'बाभ्रव' मन्त्र हैं। सुयवस के पुत्र अजीगर्त ने कहा, "हम दोनों (तेरे मा बाप) तुझे बुलाते हैं। तू आंगिरस गोत्र का अजीगर्त का पुत्र ऋषि है। हे ऋषि, तू अपने बाप दादों के घर को मत छोड़। हमारे पास आ"।

शुनःशेप ने कहा, "मैंने तेरे हाथ में वह चीज देखी है जो शूद्र भी नहीं लेता (अर्थात् पुत्र के मारने के लिये तलवार)।

हे अंगिरा के पुत्र, तूने तीन सौ गायों को मुझसे अधिक समझा"।

सुयवस के पुत्र अजीगर्त ने कहा, "हे तात, मैं अपने किये पर दुखी हूँ। मैं उसका निवारण करता हूँ। मैं सौ गायें तुझे देता हूँ"।

शुनःशेप ने कहा, "जो एक बार पाप कर सकता है, वह दूसरी बार भी पाप कर सकता है। तू शूद्रत्व से मुक्त नहीं है। जो पाप तूने किया है वह किसी प्रकार निवृत्त नहीं हो सकता"।

विश्वामित्र ने टोक कर कहा, "हाँ, निवृत्त नहीं हो सकता"।

विश्वामित्र ने कहा, "यह सुयवस का पुत्र जब हाथ में तलवार लिये मारने को तैयार था उस समय बड़ा भयानक लगता था। इस लिये तू उसका पुत्र मत बन। मेरा पुत्र हो जा।"

तब शुनःशेप ने पूछा, "हे राजपुत्र, कहो कि मैं अंगिरा का पुत्र आपके गोत्र में कैसे आ सकता हूँ?"

विश्वामित्र ने कहा, "तू मेरे पुत्रों में ज्येष्ठ हो। तेरी सन्तान श्रेष्ठ हो। तू मेरे दाय भाग का अधिकारी होगा। मैं मन्त्रों से तुझे पुत्र बनाता हूँ।"

शुनःशेप ने कहा "हे भरत-ऋषभ, तू अपने पुत्रों से कह दे कि वे मुझे प्रीति से स्वीकार करें। तब मैं तेरा पुत्र बन जाऊँगा।' तब विश्वामित्र ने अपने पुत्रों से कहा, "हे मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु और अष्टक, और जो तुम्हारे भाई लोग हैं, वे सुनें कि इसको अपना ज्येष्ठ समझो"। (५)

१८—विश्वामित्र ऋषि के १०० पुत्र थे। पचास मधुच्छन्दा से बड़े और पचास छोटे। बड़ों को अच्छा न लगा। तब

विश्वामित्र ने उनको शाप दिया, "तुम्हारी संतान अभक्ष्य वाली होगी"। इस प्रकार एन्ध्र पुण्ड्र, शबर, पुलिंद आदि दस्यु लोग विश्वामित्र की औलाद हैं। लेकिन मधुच्छन्दा और उसके पचास भाइयों ने कहा, "हमारे पिता जी जो कुछ कहेंगे हम उसी को मानेंगे। हम तुझको ज्येष्ठ मानते हैं। और हम तेरा अनुसरण करेंगे"। विश्वामित्र इस उत्तर से प्रसन्न हुआ और उसने इन मन्त्रों से इन लड़कों की स्तुति की"।

"मेरे पुत्रो, तुम पशु और सन्तान से फूलो फलो। तुमने मेरा कहा मानकर मुझे पुत्र वाला बनाया"।

"हे गाधि के पुत्रो तुम पुत्रवान् होगे और देवरात के संरक्षण में फूलो फलोगे। वह तुमको सत्य के मार्ग पर ले चलेगा"।

"हे कुशिक के पुत्रो, वीर देवरात के अनुचर बनो। यह तुम्हारा पथप्रदर्शक होगा और हमारी विद्या का वारिस होगा"।

"विश्वामित्र के सब सच्चे पुत्र और गाथी के पौत्र जो देवरात के साथ हुये उनको धन, यश, और कीर्त्ति की प्राप्ति हुई"।

इस प्रकार देवरात दो ऋषियों का वारिस हुआ। जह्नु के वंश की सम्पत्ति का और गाथि के वंश की विद्या का।

यह सौ से अधिक ऋचाओं में शुनःशेप का आख्यान है।

होता स्वर्ण के आसन पर बैठ कर अभिषेक के पश्चात् राजा को इसका उपदेश करता है। और अध्वर्यु भी स्वर्ण के आसन पर बैठता है। क्योंकि स्वर्ण यश है, इससे राजा को यश प्राप्त होता है। होता जब कोई ऋचा पढ़ता है तो अध्वर्यु कहता है 'ओ३म्' और जब होता गाथा कहता है तो अध्वर्यु

उत्तर देता है "एवं तथा"। 'ओम्' दैवी है और 'तथा' मानुषी। इस दैवी और मानुषी उत्तर से अध्वर्यु राजा को पाप और दोष से मुक्त कर देता है। इस लिए जो कोई राजा विजयी हो (और उसने युद्ध में हत्या की हो) वह चाहे यज्ञ न करे शुनःशेप की कथा सुने। ऐसा करने से पाप का लेशमात्र न रहेगा। वह आख्याता (होता) को हज़ार गायें दे और प्रतिगरिता (अध्वर्यु) को सौ। और हर एक को वे स्वर्ण के आसन भी। होता को इसके सिवाय खिच्चरों सहित चाँदी का रथ। जिनको संतान की कामना हो वह भी शुनःशेप की कथा सुनें। उनको अवश्य ही सन्तान की प्राप्ति होगी। (६)

ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

१९. प्रजापति ने यज्ञ रचा। यज्ञ रचकर ब्रह्म और क्षत्र हुये। ब्रह्म और क्षत्र के पीछे दो प्रकार की प्रजा हुई, एक हुताद (यज्ञ शेष को खाने वाले) और दूसरे अहुताद (यज्ञ शेष को न खाने वाले)। ब्रह्म हुताद हुये और क्षत्र अहुताद। जो ब्राह्मण हुये वह हुताद हुये और जो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुये वह अहुताद।

यज्ञ उन दोनों से भागा। ब्रह्म और क्षत्र ने उनका अनुसरण किया। जो ब्रह्म के आयुध थे उनको ब्रह्म ने लिया और जो क्षत्र के आयुध थे उनको क्षत्र ने लिया। जो यज्ञ के आयुध हैं, वही ब्रह्म के आयुध हैं। क्षत्र के आयुध यह हैं—घोड़ा, रथ, कवच, बाण, धनु। क्षत्र ने यज्ञ का पीछा तो किया पर कर न सका, इसलिये लौट आया क्योंकि क्षत्र के आयुधों से डर कर यज्ञ का पीछा किया और पा लिया। ब्रह्म यज्ञ को मार्ग में घेर

कर खड़ा हो गया। यज्ञ भी घिर कर खड़ा हो गया और ब्रह्म के हाथ में अपने ही आयुध देखकर ब्रह्म के पास लौट आया। चूँकि यज्ञ ब्रह्म के ही साथ रहा इसलिये ब्राह्मण ही यज्ञ करते हैं।

क्षत्र ने अब ब्रह्म का पीछा किया और कहा, "मुझे इस यज्ञ को दे।" उसने कहा, "अच्छा, अपने आयुध रख दो और ब्रह्म के आयुध ले लो। ब्रह्म का रूप बनकर यज्ञ के पास जाओ।" क्षत्र ने कहा, "अच्छा" और क्षत्र के आयुध रख दिये और ब्रह्म के आयुध ले लिये और ब्रह्म का रूप धारण करके यज्ञ को प्राप्त कर लिया। इसलिये क्षत्रिय भी जब क्षत्रिय के आयुध रख देता है और ब्राह्मण के (यज्ञ संबन्धी) आयुध ग्रहण कर लेता है तो यज्ञ का अधिकारी हो जाता है। (१)

२०—अब राजा से देव यज्ञ करने की याचना करनी चाहिये। इस पर प्रश्न होता है कि जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, या वैश्य को दीक्षा होने को होती है वह राजा से देव यज्ञ का स्थान माँगता है तो यदि राजा यज्ञ करे तो वह किससे स्थान की याचना करे। इसका उत्तर देते हैं कि "दिव्य क्षत्र से।" यह दिव्य क्षत्र आदित्य है क्योंकि आदित्य ही दिव्य क्षत्रों का अधिपति है। जिस दिन राजा को दीक्षा लेनी हो, उस दिन प्रातःकाल सूर्य्य की ओर मुख करके खड़ा हो और कहे :—

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्।...(ऋ० १०।१७०।३)

देव सवितर्देवयजनं मे देहि देव याज्याया।...

इससे वह "देव यजन" अर्थात् यज्ञ के स्थान की याचना करता है। आदित्य उत्तर की ओर चलता जाता है और कहता है, "हाँ मैं देता हूँ।" इस प्रकार जिसको आदित्य स्थान दे देता है उसका कोई अहित नहीं कर सकता।

जिस राजा को इस प्रकार याचना करके यज्ञ का स्थान मिल गया और जिसने इन मंत्रों का पाठ कर लिया उसकी श्री दिन प्रति दिन बढ़ेगी। उसे प्रजाओं का ऐश्वर्य और आधिपत्य भी सदैव प्राप्त रहता है। (२)

२१—अब इष्टापूर्त-परिज्यानि आहुतियाँ देवें। यह आहुतियाँ दीक्षा से पहले ही देनी चाहियें। यह चार घी की आहुतियाँ आह्वनीय में दी जाती हैं। यह कहकर :—

इष्टापूर्तस्या परिज्यान्यं पुनर्न इन्द्रो मघवा ददातु। ब्रह्म पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहा।

"इन्द्र मघवा इस आहुति का पूरा प्रति फल दे। ब्रह्म इस आहुति का पूरा फल दे।"

अब पशु को बाँधने के लिये जो समिष्ट यजु पढ़ने चाहियें उनको पढ़ने के पश्चात् यह मंत्र पढ़े :—

पुनर्नो अग्निर्जातवेदा ददातु। क्षत्रं पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहा।

यह दोनों इष्टापूर्त-परिज्यानि आहुतियाँ हैं जिनको दीक्षा पाने वाले क्षत्रिय को देनी चाहियें। इसलिये यह दोनों आहुतियाँ देनी चाहियें। (३)

२२—आराह्ल के पुत्र सौजात का कहना है कि अजीत पुनर्वण्य की यह दो आहुतियाँ इच्छा पर निर्भर हैं। चाहे तो दे। जो इस कथन के अनुसार आहुतियाँ दे वह यह पढ़े :—

ब्रह्म प्रपद्ये ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु ब्रह्मणे स्वाहा।

यह ऐसा ही है। जो यज्ञ को करता है वह ब्रह्म को प्राप्त करता है 'यज्ञ ब्रह्म है। जो दीक्षा लेता है वह यज्ञ से फिर जन्मता है। जो ब्रह्मप्रपन्न है उसको क्षत्र नहीं छोड़ सकता। यह जो कहा "ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु" इसका अर्थ है कि ब्रह्म मुझे क्षत्र से

बचावे। 'ब्रह्मणे स्वाहा' कहकर वह ब्रह्म को प्रसन्न करता है। यह प्रसन्न हुआ ब्रह्म क्षत्र से रक्षा करता है। अब पशु के बाँधने का समिष्ट-यजु पढ़ने के पश्चात् पढ़ता है :—

"क्षत्रं प्रपद्ये क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु। क्षत्राय स्वाहा"।

ऐसा ही होता भी है। जो क्षत्र को प्राप्त होता है वह राष्ट्र को प्राप्त होता है। क्षत्र ही राष्ट्र है। जो क्षत्र से प्रसन्न है उसे ब्रह्म नहीं सताता। 'क्षत्राय स्वाहा' से क्षत्र को प्रसन्न करता है। इस प्रकार प्रसन्न होकर वह ब्रह्म से रक्षा करता है।

यह दोनों आहुतियाँ इष्टापूर्त्त की कमी से बचने के लिये हैं। इन दोनों आहुतियों को देना चाहिये। (४)

२३—क्षत्र का देवता इन्द्र है और छन्द त्रिष्टुभ्, स्तोम वह है जिसमें १५ ऋचायें हैं। राज्य के हिसाब से क्षत्र सोम है, सम्बन्ध से राजा। जब मृग चर्म धारण करके दीक्षा का व्रत लेता है और ब्राह्मण उसके चारों ओर रहते हैं तब वह ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है।

ऐसे दीक्षा पाने वाले से इन्द्र इन्द्रिय लेता है, त्रिष्टुभ् वीर्य, पंद्रह स्तोम आयु, सोम राज्य, पितर यश और कीर्ति। क्योंकि लोग कहते हैं, यह हम से अलग हो गया, यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म हो गया है। अब वह दीक्षा से पहले आहुतियों को देकर आहवनीय के पास आकर कहता है :—

"मैं इन्द्र देवता को नहीं छोड़ता, न त्रिष्टुभ् छन्द को, न १५ स्तोमों को, न सोम राजा को, न पितरों के सम्बन्ध को। इन्द्र मुझ से इन्द्रिय न ले, त्रिष्टुभ् वीर्य न ले, १५ स्तोम आयु न लें, सोम राज न ले, पितर यश और कीर्ति न लें। मैं इन्द्रिय, वीर्य, आयु, राज्य, यश और कीर्ति से युक्त होकर अग्नि देवता

को प्राप्त करता हूँ। मैं गायत्री छन्द, तीन स्तोम, साम राजा, और ब्रह्म को प्राप्त होता हूँ, मैं ब्रह्म हो गया हूँ।"

जब आह्वनीय के पास खड़ा होकर वह यह आहुति देता है तो उसके क्षत्र होने पर भी इन्द्र उससे इन्द्रिय नहीं लेता, न त्रिष्टुभ् वीर्य, न १५ स्तोम आयु, न सोम राज्य, और न पितर यश और कीर्ति। (५)

२४—क्षत्रिय अग्नि देवता से दीक्षित होता है, गायत्री छन्द से, त्रिवृत स्तोम से, ब्राह्मण के सम्बन्ध से। यज्ञ को समाप्त करने पर वह क्षत्रिय हो जाता है। अग्नि उससे तेज ले लेता है, गायत्री वीर्य ले लेती है, त्रिवृत स्तोम आयु और ब्राह्मण ब्रह्म, यश और कीर्ति को ले लेते हैं, यह कह कर कि अब यह हम से भिन्न हो गया, अब यह क्षत्रिय है। अब यह क्षत्र में परिवर्तित हो गया है। (तात्पर्य यह है कि यज्ञ के समय उसमें ब्रह्मत्व आ गया था। अब वह फिर क्षत्रिय हो गया)।

पशु बंधन सम्बन्धी समिष्ट यजु की आहुतियां देने के पश्चात् वह आह्वनीय के पास आवे और कहे, "मैं अग्नि देवता को छोड़कर नहीं जा रहा, न गायत्री छन्द को, न त्रिवृत स्तोम को। न ब्रह्म के सम्बन्ध को। मुझ से अग्नि तेज को न ले, गायत्री वीर्य को न ले, त्रिवृत स्तोम आयु को न ले, ब्राह्मण ब्रह्म, यश और कीर्ति को न लें। तेज, वीर्य, आयु, ब्रह्म, यश और कीर्ति के साथ मैं इन्द्र के पास आता हूँ। और त्रिष्टुभ् छन्द के पास और १५ स्तोम के पास, सोमराजा के पास, मैं क्षत्रत्व में प्रवेश करता हूँ। मैं क्षत्रिय हुआ जाता हूँ। "हे देवपितर, हे पितर देव, जो मैं हूँ उसी रूप में यज्ञ करता हूँ (अर्थात् क्षत्रिय के रूप में, न कि ब्राह्मण के रूप में)। जो

मैंने इष्टि की वह मेरी है। मैंने अपनी ही चीज़ की पूर्ति की है, जो तप किया है वह मेरा ही है। अपनी ही चीज़ की आहुति दी है। इस मेरी बात का उपद्रष्टा (साक्षी) अग्नि है। उपश्रोता (सुनने वाला) वायु है, और आदित्य अनुख्याता है। मैं जो हूँ सो ही हूँ'। जब वह ऐसा कहता है और क्षत्रिय बनकर आहवनीय में आहुति देता है उससे अग्नि तेज नहीं लेता, गायत्री वीर्य नहीं लेती, त्रिवृत् स्तोम आयु नहीं लेता, ब्राह्मण ब्रह्म, यश और कीर्ति नहीं लेते। (६)

२५—यहाँ प्रश्न करते हैं कि जब ब्राह्मण की दीक्षा होने को होती है तो कहा जाता है कि "ब्राह्मण की दीक्षा होगी"। जब क्षत्रिय की दीक्षा हो तो क्या कहना चाहिये। इसका उत्तर यह है कि कहा तो यही जायगा कि "ब्राह्मण की दीक्षा होगी" लेकिन क्षत्रिय के पुरोहित के ऋषि का नाम ले। ऐसा ही होता है।

चूँकि उसने अपने (क्षत्रियत्व के) आयुध छोड़ कर ब्राह्मण के आयुध ग्रहण किये और ब्राह्मण हो कर यज्ञ किया इसलिये क्षत्रिय के पुरोहित के ऋषि की दीक्षा का नाम लिया जाता है और उसी का प्रवर कहा जाता है। (७)

२६—अब यजमान-भाग का प्रश्न है कि क्षत्रिय खावे या न खावे। अगर खावे तो पापी होवे क्योंकि वह अहुताद है। अगर न खावे तो यज्ञ से अलग हो जाय क्योंकि यजमान-भाग यह है। इसको ब्राह्मण पुरोहित को देना चाहिये। क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय के पुरोहित की जगह पर है। पुरोहित क्षत्रिय का आधा है, वह अपने मुँह में नहीं खाता तो भी पुरोहित का खाया हुआ उसी के खाये के बराबर हो जाता है। यह जो ब्रह्म है वह साक्षात् यज्ञ है। सब यज्ञ ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित है। यजमान यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है। वह यज्ञ में यज्ञ को डालते

हैं जैसे जल में जल या अग्नि में अग्नि डाली जाती है। इसमें न तो अत्याचार है न यजमान को कोई हानि पहुँचती है। इसलिये यह यजमान का भाग ब्राह्मण को देना चाहिये।

कुछ ऋत्विज इसकी अग्नि में यह पढ़ कर आहुति दे देते हैं।

प्रजापते त्रिभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वादधामि सह यजमानेन स्वाहा।

परन्तु ऐसा न करना चाहिये। यजमान भाग यजमान ही है। इसलिये जो यजमान भाग को अग्नि में छोड़ता है वह यजमान को अग्नि में छोड़ता है। (जिसको ऐसा करते देखे) उससे कहे "तूने यजमान को अग्नि में जला दिया। उसके प्राण अग्नि जला देगी और वह मर जायगा।" सदा ऐसा ही होता है। इसलिये ऐसा न करना चाहिये।(८)

ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

मृगवु के पुत्र राम ने उत्तर दिया कि "वह वीर पुरुष मैं हूँ"। यह राममार्गवेय श्यापर्ण था जिसने वेदों का अध्ययन किया था। जब श्यापर्ण उठने लगे तो उसने राजा से कहा, "हे राजन्, क्या तुम वेदी से (मुझ जैसे) वेदपाठी को भी निकाल दोगे?" उसने पूछा, "हे ब्रह्म बंधु (ब्रह्मबंधु पतित ब्राह्मण को कहते हैं), तू जो कोई हो बता तो सही कि तूने यह ज्ञान कहाँ प्राप्त किया?" (१)

२८—(राम ने उत्तर दिया) कि "जब इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का अपमान किया, वृत्र को मारा, यतियों को गीदड़ों के सामने फेंक दिया, अरुर्मघों को मार डाला, (अपने गुरु) बृहस्पति को धिक्कारा, तो देवों ने इन्द्र को निकाल दिया और सोमपान से वंचित कर दिया। जब इन्द्र सोमपान से बहिष्कृत हो गया तो अन्य सब क्षत्रिय भी सोमपान से वंचित हो गये। जब इन्द्र ने त्वष्टा से सोम चुरा लिया तो उसको भी उसमें से फिर भाग मिल गया। परन्तु क्षत्रिय अब भी सोमपान के अधिकार से वंचित हैं। यहाँ केवल एक आदमी है जो जानता है कि किस प्रकार सोमपान से वंचित क्षत्रिय को फिर सोमपान का अधिकार मिल सकता है। तेरे नौकर ऐसे आदमी को वेदी से क्यों निकालते हैं?"

राजा ने पूछा, "हे ब्राह्मण, क्या तू इस विधि को जानता है?" राम ने कहा, "हाँ, मैं जानता हूँ।" राजा ने कहा, "हे ब्राह्मण, मुझे बता"। राम ने कहा, "राजन्, मैं बताऊँगा।" (२)

२९—ऋत्विज लोग इन भक्ष्य चीजों में से किसी एक को ले सकते हैं—सोम, या दही या जल। अगर वे सोम को लेंगे जो ब्राह्मणों का भक्ष है तो तू इस भक्ष के द्वारा ब्राह्मणों को प्रसन्न करेगा। तेरी सन्तान में ब्राह्मत्व आ जायगा। वह दान, सोमपान और भोजन के इच्छुक होंगे और इच्छानुसार

विचरेंगे। यदि क्षत्रिय में कोई दोष होगा, तो संतान में ब्राह्मणत्व आवेगा। दूसरी या तीसरी पीढ़ी में वह ब्राह्मण जैसा पैदा हो जायगा और वह ब्राह्मण लोगों के साथ रहना पसन्द करेगा।

अगर दही लेंगे जो कि वैश्यों का भक्ष्य है तो इससे तू वैश्यों को प्रसन्न करेगा। तेरी सन्तान में वैश्यत्व आयेगा। वे दूसरों को कर देंगे, दूसरे उनको अपनी इच्छानुसार भोगेंगे। यदि उस क्षत्रिय में कोई दोष आ जायगा तो उसकी सन्तान वैश्य होगी और दो या तीन पीढ़ियों में वे पूरे वैश्य हो जायँगे और वैश्यों में रहना पसन्द करेंगे।

यदि जल लेंगे जो कि शूद्रों का भक्ष्य है तो तू इस भक्ष्य से शूद्रों को प्रसन्न करेगा। तेरी सन्तान में शूद्रत्व आयेगा। वह दूसरों की सेवा करेंगे और दूसरे उनकी इच्छानुसार ताड़ना करेंगे। यदि क्षत्रिय में कोई दोष आजायगा तो उसकी सन्तान शूद्र होगी, और दो तीन पीढ़ियों में पूरी शूद्र हो जायगी और शूद्रों के साथ रहने लगेगी। (३)

३०—"हे राजन्, यह तीन भक्ष हैं जिनमें से क्षत्रिय को किसी को भी नहीं लेना चाहिये। परन्तु एक भाग उसी का है जिसको उसे लेना चाहिये। न्यग्रोध वृक्ष की नीचे लटकने वाली जड़ें, उदुम्बर, अश्वत्थ और प्लाक्ष के फल। इन का रस निकाल कर पिये। यह उसी का भाग है।

जब देवता लोग यज्ञ करके स्वर्ग लोक को गये तो जिस चमसे में सोम था वह टेढ़ा हो गया (न्युब्जन्)। उसकी बूँदों के फैलने से न्यग्रोध वृक्ष हो गया, यह न्यग्रोध पहले कुरुक्षेत्र में उपजे थे, अन्य स्थानों पर उन्हीं में से उपज उठे। इस लिये कुरुक्षेत्र में अब तक न्यग्रोध को न्युब्ज कहते हैं। जो नीचे की ओर बढ़े (रोहन्) उसको कहेंगे "न्यङ्रोह"। उसी से 'न्यग्रोह'

हुआ। और उसी का न्यग्रोध हो गया क्योंकि उसकी शाखायें नीचे को चलती हैं। देव परोक्ष प्रिय होते हैं। इसलिये "न्यग्रोह" कहकर कुछ उलट कर (परोक्ष बनाकर) न्यग्रोध कर लिया। (४)

३१—इस सोम रस में से जो नीचे गिरा उसकी नीचे जाने वाली शाखायें हो गईं और जो ऊपर को गया उसके फल हो गये। इसलिये जो क्षत्रिय न्यग्रोध की नीचे जाने वाली जड़ों और उसके फल को खाता है वह अपने निज भक्ष्य से वंचित नहीं होता। इसके सिवाय वह प्रतिनिधि रूप में सोमपान कर लेता है, क्योंकि यद्यपि वह सोमपान नहीं करता किन्तु सोम के रूपान्तर का पान अवश्य करता है, क्योंकि न्यग्रोध सोम का रूपान्तर है। वह परोक्ष रूप से ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है। अर्थात् अपने पुरोहित, अपनी दीक्षा और पुरोहित के प्रवर द्वारा। जैसे वृक्षों में न्यग्रोध है वैसे ही मनुष्यों में क्षत्रिय। क्षात्र शक्ति (न्यग्रोध की भांति) सृष्टि में फैलती है। उन्हीं का राष्ट्र होता है। न्यग्रोध भूमि में गढ़ा भी होता है और अपनी शाखायें नीचे फैलाकर बढ़ता जाता है। जो क्षत्रिय यज्ञ में न्यग्रोध की जड़ों और फलों का रस पान करता है वह राष्ट्र में न्यग्रोध की भी प्रतिष्ठा पाता है और उसका राष्ट्र सुदृढ़ हो जाता है। जैसे वृक्षों में न्यग्रोध प्रतिष्ठित होता है वैसे ही क्षत्रिय राष्ट्र में प्रतिष्ठित है। जैसे न्यग्रोध अपनी जड़ों को जमीन में भेज कर बहुत मजबूत हो जाता है वैसे ही राजा अपनी शक्ति की स्थापना करता है। और उसका राज्य नष्ट नहीं होने पाता। (५)

३२—यह जो उदुम्बर के फल हैं यह अन्न के रस से उत्पन्न हुये हैं और वनस्पतियों में सब से अधिक रस वाले हैं। (उदुम्बर के फल का रस पीकर) राजा क्षत्रियत्व को वन-

स्पतियों के ओज से सम्पन्न कर देता है। अश्वत्थ वनस्पतियों के तेज से उत्पन्न हुआ है। अश्वत्थ वनस्पतियों का राजा और तेज है। (इस का रस पीने से) क्षत्रियत्व में साम्राज्य और तेज धारण करता है।

यह जो प्लाक्ष है वह वनस्पतियों के यश से उत्पन्न हुआ है। इसमें वनस्पतियों का साम्राज्य और तेज है। इस प्रकार क्षत्रिय क्षत्रियत्व में वनस्पतियों का साम्राज्य और यश धारण करा देता है।

जब यह चीज़ें उपस्थित हो जाती हैं तो सोमराजा को ख़रीदते हैं। और उपवास के कृत्य करते हैं। उसी प्रकार जैसे असली सोम यज्ञ में किया जाता है।

उपवास के दिन (यज्ञ से एक दिन पूर्व) अध्वर्यु के पास सोम निचोड़ने के सभी सामान आ जाने चाहियें जैसे चर्म, दो तख्ते, द्रोण, कलश दशापवित्र (छन्ना), पत्थर, पूतभृत, आधवनीय, स्थाली, उदंचन और चमसा। यह जो राजा के लिये रस निचोड़ा गया इसके दो भाग करने चाहिये एक प्रातः सवन के लिये, दूसरा दोपहर के सवन के लिये। (६)

३३—जब त्रैत चमसों को आहुति के लिये उठाते हैं तब यजमान के चमसों को भी उठाते हैं। उसमें तो तरुण दर्भ डाल कर। और वषट्कार कहकर परिधि समिधाओं पर डालते हैं। एक दर्भ डालकर—

दधिक्राव्णो अकारिषम्...., ऋ० ४।३९।६)

यह मंत्र पढ़ते हैं उसमें स्वाहा जोड़ कर और वषट्कार करके।

दूसरा दर्भ डालकर यह मंत्र पढ़ते हैं—

आ दधिक्राः शवसा पंच कृष्टीः...(ऋ० ४।६८।१०)

जब ऋत्विज अपने चमसों को पीने के लिये उठावें, उस समय यजमान भी अपने चमसे को उठावे।

जब होता 'इडा' कहे तब यजमान भी अपने चमसे को पिये यह कहता हुआ:—

"यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः।
इदं तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि।"

अर्थात् "जो सोम इन्द्र ने इन्द्राणियों के साथ पिया और उसमें से बच रहा उसको मैं प्रसन्नचित्त होकर पीता हूँ।"

यह वनस्पति का रस प्रसन्न चित्त से पिया जाकर हितकर होता है। और उसका राष्ट्र उग्र और व्यथा-रहित होता है, जो इस प्रकार सोम का भक्षण करता है।

नीचे का मंत्र पढ़कर मुँह पोंछता है:—

शं नः एधि हृदे पीतः प्रण आयुर्जीवसे सोम तारीरिति।

"हे सोम, तुम जो पिये गये हो हमारे हृदय के लिये कल्याणकारी होओ। हमारे जीवन को बढ़ाओ।"

यदि वह मुँह न पोंछे तो सोम कहेगा कि किस नालायक ने मुझे पिया और वह उसकी आयु को कम कर देगा। और जो मुँह को पोंछ डालेगा तो उसका जीवन बढ़ेगा।

नीचे के दो मंत्रों से चमसा को आशीर्वाद देता है:—

आ प्यायस्व समेतु...(ऋ० १।६१।१६)
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजः...(ऋ० १।६१।१८)

इसमें रूप समृद्धता है। जिसमें रूप समृद्धता होती है वही सफल होता है। (७)

३४—जब ऋत्विज त्रैत चमसों को रख दें तो यजमान भी अपने चमसे को रख दे। जब वे अपने चमसों को हिलावें तो यजमान भी हिलावे।

अब नराशंस चमसे को उठावे और यह पढ़कर पिये:—

"देव सोम ते मति विदं ऊमैः पितृभिर्भक्षितस्य भक्षयामि"

"हे देव सोम, मैं तुम को पीता हूँ। तुम, जो मेरे मन को जानते हो और जिनका "ऊम" पितरों ने पिया है।" इस प्रकार यजमान नराशंस चमसे को प्रातः सवन में पीता है। दोपहर के सवन में 'ऊमैः' के स्थान में 'ऊर्वैः' कहता है और तीसरे सवन में "काव्यैः"। क्योंकि पितर लोग प्रातः काल को 'ऊम' होते हैं, दोपहर को 'ऊर्व' और शाम को 'काव्य'। इस प्रकार वह अमृत पितरों को सोम का पान कराता है।

प्रियव्रत सोम पीने वाले (सोमपा) ने कहा था, "जो सोम पीता है और जिसके पितर सोम पीते हैं, उसके पितर अमर हो जाते हैं और उसका राज दृढ़ और व्यथारहित हो जाता है।

प्रत्यभिमर्श (मुँह पोंछने की विधि) और आप्यायन (चमसे को पानी से धोने की विधि) समान ही है अर्थात् वही है जैसी ऊपर बयान की गई। प्रातः सवन में उसी प्रकार कार्य्य करना चाहिये जैसे सोमरस निकालने में, मध्य सवन में भी उसी तरह और तृतीय सवन में भी उसी तरह। (तात्पर्य यह है कि जैसे असली सोमरस निकालने में क्रिया की जाती है उसी तरह राजा के लिये न्यग्रोध आदि का रस निकालने में भी वही क्रिया करनी चाहिये)।

इस विधि को राम मार्गवेय ने सुषद्मन के पुत्र विश्वंतर से कहा था। इस पर राजा ने कहा, 'हे ब्राह्मण, हम तुझे एक हजार गौवें देते हैं। मेरे यज्ञ में श्यापर्ण लोग आवें"।

इसी विधि का कथन कवष के पुत्र तुर ने परीक्षित के लड़के जन्मेजय से किया और इसी का पर्वत और नारद ने सहदेव के पुत्र सोमक से। फिर यह बात सहदेव सार्जय से कही गई। फिर बभ्रव दैवावृध से, फिर भीम वैदर्भ से, फिर नग्नजित

गांधार से। इसका कथन अग्नि ने सनश्रुत अरिन्दम से किया, क्रतुविद् जानकि से, वशिष्ठ ने पैजवन सुदास से।

वे सब इस प्रकार पान करके बड़े हो गये। ये सब महाराजा थे। जो क्षत्रिय यजमान इस प्रकार पान करता है उसकी श्री सूर्य्य के समान चमकती है। सब दिशाओं से वह सूर्य्य के समान बलि (कर) लेता है और उसका राज्य व्यथा-रहित हो जाता है। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ

ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका समाप्त हुई।

†बलि का अर्थ है कर या महसूल। बलि का अर्थ मांस या पशु वध नहीं है।

आठवीं पत्रिका

पहला अध्याय

१—(राजसूय यज्ञ के) प्रातःसवन और तृतीय सवन के स्तोत्र और शस्त्र (सोम यज्ञ के) ऐकाहिकों के ही समान होते हैं। क्योंकि ऐकाहिक के दोनों सवन शांत और प्रतिष्ठा-युक्त हैं और शांति और प्रतिष्ठा के देने वाले हैं। (परन्तु मध्य सवन में भेद है)। माध्यं दिन के पवमान का वर्णन हो चुका। जिसके पृष्ठ स्तोत्र में दोनों साम बृहत् सहित होते हैं। और दोनों साम गाये जाते हैं। रथंतर साम का पहला मंत्र यह है :—

आ त्वा रथं यथोतये······(१)

तुविष्म तुविक्रतो······(२)

यस्य ते महिना······(३) (ऋ० ८।६८।१-३)

और रथंतर का पिछला मंत्र यह है :—

इदं वसो सुतमन्धः······(१)

नृभिधू॑तः सुतो······(२)
तं ते यवं यथा······(३) (ऋ० ८।२।१-३)

पवमान उक्थ मरुत्वतीय शस्त्र है जिसमें रथंतर साम है।

(मध्य सवन में) पवमान स्तोत्र को रथंतर की रीति से गाते हैं। सहारा देने के लिये बृहत् पृष्ठ है। पहले और पिछले स्तुति के मन्त्रों को रथंतर से गाते हैं। रथंतर ब्राह्मण है, बृहत् क्षत्रिय है। ब्राह्मण क्षत्रिय से पहले होता है। राजा को समझना चाहिये कि जब ब्राह्मण मेरे आगे है तो मेरा राष्ट्र सुदृढ़ और विघ्नरहित होगा। रथन्तर अन्न है। पहले रखने से वह राजा को खाना प्राप्त कराता है। रथन्तर यह पृथ्वी है, यह प्रतिष्ठा है। पहले रखने से यह राजा को प्रतिष्ठा देता है।

इन्द्र को बुलाने का प्रगाथ वही है बिना किसी तबदीली के (अविभक्तः) जो कि और सोम दिनों का है। ब्रह्मणस्पति का प्रगाथ जिसकी विशेषता "उत्" है दोनों सामों में एक सा है। धाय्या भी वही है बिना तबदीली के। मरुत्वतीय प्रगाथ ऐकाहिकों का विशेष है। (१)

२—(पवमान उक्थ्य) का निविद सूक्त यह है :—

जनिष्ठा उग्रः······(ऋ० १०।७३)

इसमें 'उग्र' भी है और 'सह' भी। यह क्षत्र का रूप है। 'ओजिष्ठ' भी क्षत्र का रूप है। 'बहुलाभिमानः' में 'अभि' शब्द है जो 'पराजित करने का' रूप है। इस सूक्त में ११ ऋचायें हैं। त्रिष्टुभ् में ११ अक्षर होते हैं। क्षत्रिय त्रिष्टुभ् का रूप है। ओज इन्द्र का बल है। यह त्रिष्टुभ् है। ओज क्षत्रिय का वीर्य है। इस प्रकार वह राजा को ओज, क्षत्र और वीर्य से सम्पन्न करता है। यह 'गौरिवीत' सूक्त है। इससे मरुत्वतीय शस्त्र समृद्ध हो जाता है। इसका ब्राह्मण पहले कहा जा चुका है।

त्वामिद्धि हवामहे······(१)

स त्वं नश्चित्र······(२) (ऋ० ६।४६।१-२)

यह बृहत् पृष्ठ है। 'बृहत् साम क्षत्र है। क्षत्र से राजा समृद्ध होता है। बृहत् ज्यैष्ठ्य है। इस ज्यैष्ठ्य से राजा समृद्ध होता है। बृहत् श्रेष्ठता है। इस श्रेष्ठता से राजा समृद्ध होता है।

"अभित्वासूर नोनुमः" यह रथंतर बृहत् साम का अनुरूप है। यह लोक रथन्तर है, वह लोक बृहत् है। इस लोक का वह लोक अनुरूप है, और उस लोक का यह लोक अनुरूप है। इस प्रकार रथन्तर को बृहत् का अनुरूप बना लेते हैं और दोनों लोकों का यजमान को भोग प्राप्त कर लेते हैं।

ब्रह्म रथन्तर है, क्षत्र बृहत्। ब्रह्म में क्षत्र प्रतिष्ठित है। और क्षत्र में ब्रह्म। इस प्रकार दोनों सामों को सयोनिता प्राप्त होती है।

धाय्या वही है,

यद् वावान (ऋ० १०।७४।६)। इसका ब्राह्मण पहले कहा जा चुका।

साम प्रगाथ यह है :—

उभयं शृणवच्च न······(१)

तं हि स्वराजं······(२) (ऋ० ८।६१।१-२)

यह दोनों सामों का रूप है जो गाये जाते हैं। (२)

३—त मुष्टुहि यो अभिभूत्योजा······(ऋ० ६।१८)

इसमें 'अभिभूति' में 'अभि' है। 'अषाह्लम्' 'उग्रं', 'सहमानम्' क्षत्र के भी रूप हैं। इसमें पन्द्रह मन्त्र हैं। ओज, क्षत्र और वीर्य पन्द्रह अंक वाला है। इस ओज, क्षत्र तथा वीर्य से राजा सम्पन्न होता है। यह भरद्वाज का सूक्त है। बृहत् साम को भी भारद्वाज ने ही निकाला था। और यह आर्ष है। वह राजसूय समृद्ध हो जाता है जिसमें बृहत् होता है। जब

कोई क्षत्रिय यज्ञ करे तो बृहत् पृष्ठ को काम में लावे क्योंकि इससे यज्ञ समृद्ध हो जाता है। (२)

४—(राजसूय यज्ञ के) होत्रकों (मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक) के कृत्य वही हैं जो ऐकाहिक यज्ञों में होते हैं। ये जो ऐकाहिक कृत्य हैं वह शांति के लिये हैं, क्लृप्त (अर्थात् समर्थ) और प्रतिष्ठा के लिये हैं। और यह यज्ञ को पूरा करते हैं और त्रुटि नहीं रहने देते। वे सर्वरूप और सर्वसमृद्ध होते हैं अर्थात् उनमें कोई कमी नहीं होती। इससे यज्ञ सर्वरूप और सर्वसमृद्ध हो जाता है। जो क्षत्रिय इसको करता है वह समझता है, "इन होत्रकों के सर्वरूप और सर्वसमृद्ध कृत्यों से मेरी कामनायें पूर्ण हों"। इसलिये जहाँ कहीं एकाहों में स्तोम या पृष्ठ पूरे नहीं होते वहाँ होत्रकों के ऐकाहिक कृत्यों से उनको समृद्ध बना देते हैं।

कहते हैं कि उक्थ्य को १५ स्तोम और शस्त्र वाला होना चाहिये। क्योंकि इन्द्रियों की तीव्रता शक्ति है और ओज पन्द्रह अंक वाला है। क्षत्र वीर्य है। क्षत्रिय बल है। इस प्रकार वह ओज, क्षत्र और वीर्य से युक्त होता है।

इसके स्तोम और शस्त्र तीस (पन्द्रह-पन्द्रह) होते हैं। विराट छन्द में तीस अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है। विराट् में स्थापना करने का अर्थ यह है कि वह उसको अन्न में स्थापित करता है। इसलिये वह उक्थ १५ अंकों वाला होना चाहिये।

अग्निष्टोम जो ज्योतिष्टोम का भाग है यहाँ ठीक होगा। त्रिवृत स्तोम ब्रह्म है और पंद्रह अंकों वाला क्षत्रिय। ब्रह्म क्षत्र से पहले हैं। (राजा को सोचना चाहिये) "अगर ब्रह्म प्रथम हो जायगा तो हमारा राष्ट्र सुदृढ़ और व्यथा-रहित हो जायगा"। सत्रह वैश्यों का अंक है और इक्कीस शूद्रों का। स्तोमों में

त्रिवृत् तेज है, पंचदश वीर्य है, सप्तदश सन्तान है और इक्कीस प्रतिष्ठा है। इस प्रकार इसको तेज, वीर्य, सन्तान और प्रतिष्ठा से सम्पन्न करता है। इसलिये ज्योतिष्टोम चाहिये। इसमें २४ स्तोम और शस्त्र चाहिये। संवत्सर में २४ अर्द्धमास होते हैं। संवत्सर में सम्पूर्ण अन्न होते हैं। इस प्रकार वह यजमान को सब प्रकार के अन्न से संयुक्त करता है। इसलिये ज्योतिष्टोम का अग्निष्टोम चाहिये।

ऐतरेय ब्राह्मण की आठवीं पञ्चिका का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

५—अब जिस क्षत्रिय ने दीक्षा ली है और जिसको नया क्षत्र प्राप्त हुआ है उसके पुनरभिषेक का प्रश्न है। अवभृथ स्नान और पशुबंध्य कृत्य के पश्चात् अन्तिम इष्टि की जाती है।

इष्टि की समाप्ति पर पुनरभिषेक होता है। इसका सामान पहले से ही तैय्यार होता है। उदुंबर की लकड़ी का तख्त हो। उसके पाये प्रादेश मात्र (अंगूठे और उसके पास की उंगली के बीच के स्थान के बराबर) हों। आधे हाथ के शीर्ष हों, मूंज के बंधन हों, तख्त पर बिछाने के लिये शेर का चमड़ा हो. उदुंबर का चमसा हो, उदुंबर की शाखा हो। उस उदुंबर के चमसे में आठ चीजें हों :—दही, शहद, घी, धूप में बरसने वाला मेंह का पानी, शष्प, तोक्म (जौ के पौधे), सुरा और दूर्व। स्प्या से लकीर खींचकर दक्षिण की ओर तख्त रखते हैं। और उसका आगे का भाग पूर्व की ओर होता है। उसके दो पाये

वेदी के भीतर होते हैं दो बाहर। यह पृथ्वी श्री है। जो वेदी के भीतर है वह उसका परिमित रूप है। और जो वेदी के बाहर है वह अपरिमित रूप है। अब यह जो वेदी के भीतर दो पाये हैं और वेदी के बाहर दो पाये, इनसे वे सब कामनायें पूर्ण होती हैं जो वेदी के भीतर से पूरी होती हैं या वेदी के बाहर से। (१)

६—तख्त को शेर के चमड़े से इस प्रकार ढक देता है कि लोम ऊपर को रहें और गर्दन पूर्व को। व्याघ्र जंगल के पशुओं में क्षत्र है। राजा भी क्षत्र है। इस प्रकार क्षत्र से क्षत्र की समृद्धि होती है। राजा उस पर बैठने के लिये पीछे से आता है। घुटने टेक कर इस प्रकार बैठता है कि दाहिनी जाँघ जमीन से छू जाय और दोनों हाथों से तख्त को पकड़ कर इस मंत्र का पाठ करता है :—

"अग्निष्ट्वा गायित्र्या सयुक् छंदसारोहतु सवितोष्णिहा सोमोनुष्टुभा बृहस्पतिर्बृहत्या मित्रावरुणौ पंक्त्यैंद्रस्त्रिष्टुभा विश्वेदेवा जगत्या तानहमनुराज्याय साम्राज्याय भोज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाधिपत्याय स्वावश्यायातिष्ठायारोहामि।"

"हे तख्त, तुझ पर अग्नि गायत्री छन्द से चढ़े। सविता उष्णिक् से, सोम अनुष्टुभ् से, बृहस्पति बृहत् से, मित्रावरुण पंक्ति से, इन्द्र त्रिष्टुभ् से, विश्वेदेवा जगती से। इनके पीछे मैं चढ़ूं, अनुराज्य, साम्राज्य, भोग, स्वाराज्य, वैराज्य, के लिये और प्रजापति के लोक में जाने के लिये, राज्य के लिये, महाराज्य के लिये आधिपत्य के लिये, स्वतंत्रता के लिये, और दीर्घ काल तक ठहरने के लिये।"

इस मंत्र को पढ़कर राजा पहले दाहिना घुटना रखता है फिर बायां। ऐसा होता है। यह लोगों का कहना है।

देव तख्त रूपी श्री के ऊपर इस प्रकार छंदों से युक्त होकर चढ़े कि अगला अगला छन्द पिछले पिछले छन्द से चार अक्षर

अधिक हो। अग्नि गायत्री से, सविता उष्णिक् से, सोम अनुष्टुभ् से, बृहस्पति बृहत् से, मित्रावरुण पंक्ति से, इन्द्र त्रिष्टुभ् से, विश्वेदेवा जगती से। अब यह दो मंत्र पढ़े जाते हैं :—

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वो...(४)

विवराण्मित्रावरुणयो...(५) (ऋ० १०|१३०|४-५)

जो राजा इस प्रकार इन देवों के पीछे तख्त पर चढ़ता है उसका उत्तरोत्तर योग क्षेम होता है। श्री को प्राप्त होता है। और प्रजा का ऐश्वर्य और आधिपत्य प्राप्त करता है।

जब पुरोहित राजा का अभिषेक करता है तो जलों की शान्ति के लिये यह मंत्र बुलवाता है :—

"शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवयातन्वोपस्पृशत त्वचं मे सर्वों अग्नीरँप्सु षदो हुवे वो मीय वर्चो बलमोजो निधत्त।"

"हे जलो, मुझको कल्याणकारी आँख से देखो, मेरी त्वचा को अपने कल्याणकारी अंगों से छुओ। जो अग्नियाँ जलों में हैं उन सब को मैं बुलाता हूँ कि वे वर्च, बल और ओज को मुझ में धारण करावें।"

यदि जलों का आह्वान न किया जाय तो वे अशांत होकर उस अभिषेक वाले क्षत्रिय से वीर्य को छीन लेते हैं। (२)

७—अब उदुंबर की शाखा को उसके सिर पर रखकर जल छिड़कते हैं और यह मंत्र पढ़ते जाते हैं :—

"इमा आपः शिवतमा इमाः सर्वस्य भेषजीः। इमा राष्ट्रस्यवर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोऽमृताः। याभिरिंद्रमभ्यषिंचत् प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुं ताभिरद्भिरभिषिंचामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्य जीजनद् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसे न्द्रियेणाभिषिंचामि। बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्याय।"

"ये जल कल्याणकारी, सब की औषध, राज के बढ़ाने वाले, राज को क़ायम रखने वाले और अमृत हैं। इन्हीं के द्वारा प्रजापति ने इन्द्र का, सोम राजा का, वरुण का, यम का और मन् का राज्याभिषेक किया था। इन्हीं जलों से मैं तेरा राज्याभिषेक करता हूँ, कि तू इस संसार में अधिराज हो। तेरी माता देवी ने तुझे लोगों के ऊपर महान् राज करने के लिये जना। तेरी भद्रा मा ने तुझे जना। देव सविता की प्रेरणा से, अश्विनों के बाहुओं से, पूषा के दोनों हाथों से, अग्नि के तेज से, इन्द्र की शक्ति से मैं तेरा अभिषेक करता हूँ कि तुझे बल, श्री, यश और अन्न आदि प्राप्त हों।"

यदि पुरोहित चाहे कि राजा को अकेले ही बल आदि की प्राप्ति हो तो 'भूः' कहे, यदि दो की (पुत्र सहित) तो 'भूः भुवः" कहे। यदि तीन की (पुत्र पौत्र सहित), तो "भूर्भुवः स्वः" कहे।

कुछ लोगों का कहना है कि चूंकि यह व्याहृतियाँ सब चीज़ों की प्राप्ति कराती हैं, इसलिये इनके उच्चारण से दूसरों के लिये ही कार्य होता है, अपने लिये नहीं। इसलिये यहाँ "भूर्भुवःस्वः" व्याहृतियाँ न कहनी चाहियें। केवल 'देवस्य त्वा सवितुः" इत्यादि बोलना चाहिये।

कुछ की राय है कि व्याहृतियों को छोड़कर पढ़ने से केवल पहले जन्म के ऊपर ही अधिकार होता है, इस जन्म के लिये नहीं।

सत्यकाम जाबाल का कथन है कि यदि व्याहृतियों को छोड़कर मंत्र बोला जाय और अभिषेक किया जाय तो इसी जीवन की सिद्धि होती है। उद्दालक आरुणि कहते हैं कि जो व्याहृतियों सहित अभिषेक होता है उसमें राजा विजय पाकर सभी चीज़ों की प्राप्ति कर लेता है।

इसलिये अभिषेक करते समय "देवस्य त्वा······अन्नाद्याय भूर्भुवः स्वः" ऐसा पाठ करना चाहिये।

यज्ञ करने वाले क्षत्रिय से यह चीजें निकल जाती हैं:— ब्रह्मत्व जो क्षत्रिय को प्राप्त हो गया था, ऊर्ज, अन्नाद्य, जल और ओषधियों का रस, ब्रह्मवर्चस्, पुष्टि, संतति, क्षत्र रूप। क्षत्र ओषधियों की प्रतिष्ठा है। जो इन दो आहुतियों को देता है वह ब्रह्मत्व को क्षत्रत्व में स्थापित करता है। (३)

८—तख्त. चमसा और शाखा उदुम्बर की क्यों हो? इसलिये कि उदुम्बर ऊर्ज है और उदुम्बर अन्न है। उदुम्बर की इन चीजों का प्रयोजन यह है कि ऊर्ज और अन्न धारण कराता है। दही, मधु और घी के विषय में यह बात है कि यह जलों और ओषधियों के रस हैं। इनके द्वारा वह राजा में जलों और ओषधियों का रस धारण कराता है।

धूप के समय के मेंह के पानी से तेज और ब्रह्मवर्चस् का तात्पर्य है। इससे वह तेज और ब्रह्मवर्चस् को राजा में स्थापित करता है।

शष्प और तोक्म (घास) पुष्टि और प्रजा का रूप है। इससे राजा में पुष्टि और प्रजा को स्थापित कराता है।

यह जो सुरा है वह क्षत्र रूप है। और यह अन्न का रस भी है। इस प्रकार क्षत्र और अन्न का रस दोनों उसमें स्थापित किये जाते हैं।

यह जो दूर्व है वह ओषधियों का राजा है। दूर्व राजा का चिह्न है, जैसे राजा अपने राज में विस्तृत होता है ऐसे ही दूर्व भी विस्तृत रहती है। जैसे दूर्व की जड़ें भली भांति पृथ्वी में प्रतिष्ठित होती हैं उसी प्रकार राजा भी राज्य में प्रतिष्ठित होता है। इस प्रकार राजा में ओषधियों का क्षत्र तथा प्रतिष्ठा स्थापित होती है।

जो चीजें यज्ञ करने के अनन्तर राजा में से निकल गई थीं वह फिर उसमें आ जाती हैं। उनके द्वारा वह इस प्रकार सफल होता है।

अब वह सुरा के कंस (प्याले) को उसके हाथ में देता है, और यह मंत्र पढ़ता है :—

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ (ऋ० ६।१।१)

'स्वादवाली और मद वाली सोम धारा से पवित्र कर। तू इन्द्र की रक्षा के लिये निचोड़ा गया है।"

अब शांति का वचन बोलता है :—

"नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं मा संसृक्षाथां परमे व्योमनि। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष राजा मैनं हिंसिष्टं स्वां योनिमाविशंतौ ॥

"(हे सुरा और सोम) देवों ने तुम दोनों के लिये अलग-अलग स्थान दिया है। परम आकाश में मत मिलो। सुरा तू बलवान है। सोम, तू राजा है। इसको मत मार। अपने-अपने स्थान को जा।" सोम पान और सुरापान में भिन्नता है। पीकर यह सोचे कि यह (प्याले का देने वाला ऋत्विज) मेरा मित्र है और जो सुरा बच रहे वह उसको दे। इस प्रकार वह मित्र को सुरा का भाग देता है। इस प्रकार जो इस रहस्य को समझता है वह अपने मित्र को उसमें स्थान देता है। (४)

९—अब उदुम्बर शाखा की ओर देखते-देखते उतरता है। उदुम्बर ऊर्ज और अन्नाद्य है। इस प्रकार राजा इनको धारण करता है, ऊपर बैठकर और नीचे दोनों पैर करके अपने उतरने को घोषित करता है :—

"प्रतितिष्ठामि द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि प्राणापानयोः प्रतितिष्ठाम्यहोरात्रयोः प्रतितिष्ठाम्यन्नपानयोः प्रति ब्रह्मन् प्रतिक्षत्रे प्रत्येषु त्रिषु लोकेषु तिष्ठामि"।

अंत को सब-आत्मा (पूरे बल से) से खड़ा होता है। और सब लोकों में प्रतिष्ठित होता है। उत्तरोत्तर श्री को प्राप्त करता है। जो राजा पुनरभिषेक करके उतरता है वह अपनी प्रजा के ऐश्वर्य और आधिपत्य को प्राप्त कर लेता है।

उतर कर पूर्व की ओर मुखकर कुछ तिरछा खड़ा होकर तीन बार कहता है :—

नमो ब्रह्मणे, नमो ब्रह्मणे, नमो ब्रह्मणे।

फिर कहता है :—

"वरं ददामि जित्या अभिजित्यै विजित्यै संजित्यै"

"मैं जय, अभिजय, विजय और संजय के लिये वर देता हूँ।"

इस प्रकार तीन बार ब्रह्म को नमस्कार करने से क्षत्र ब्रह्म के वश में आ जाता है। इस प्रकार जब क्षत्र ब्रह्म के वश में आ गया तो राष्ट्र समृद्ध होता है और वीरों को उत्पन्न करता है।

यह जो कहता है कि "वरं ददामि जित्या......" इससे वह वाणी को निकालता है। क्योंकि 'ददामि' कहने से यह तात्पर्य है कि वाणी को वश में कर लिया।

वह सोचकर कि वाणी को जीत लेने से मेरे सब काम ठीक हो जायंगे, वह वाणी को बोलता है और फिर उठकर आहवनीय अग्नि में समिधा रखता है यह पढ़ कर :—

"समिदसि समिन्द्धेन्द्रियेण वीर्येण स्वाहा।"

इस प्रकार वह इंद्रिय और वीर्य से अपने को सम्पन्न करता है।

समिधा रखकर तीन पग पूर्व और उत्तर की ओर बढ़ाता और यह पढ़ता है :—

"क्लृतिरसि दिशां मयि देवेभ्यः कल्पत। कल्पतां मे योगक्षेमो-ऽभयं मेऽस्तु।"

"तू दिशाओं को जीतने वाला है। मुझे देवों के योग्य बनाओ। मेरे लिये योगक्षेम हो। अभय हो।"

अब वह विपरीत दिशा की ओर चलता है। पराजय को हटाने के लिये। ऐसा कहते हैं। (५)

१०—देव और असुर इन लोकों में लड़ते थे। वे पूर्व की दिशा में लड़े और असुर जीत गये। वे दक्षिण की दिशा में लड़े। वहाँ भी असुर जीत गये। वे पश्चिम की दिशा में लड़े। वहाँ भी असुर जीत गये। वे उत्तर की दिशा में लड़े। वहाँ भी असुर जीत गये। अब वे पूर्व और उत्तर के बीच की (अवान्तर) दिशा में लड़े और जीत गये।

राजा जब दो सेनाओं के बीच में खड़ा होकर लड़ाई को चले तो पूर्व और उत्तर की दिशा में चले और अपने घर के पुरोहित से कहे, "ऐसा कर कि मैं इस सेना को जीत जाऊँ।"

वह कहे, "अच्छा" और रथ के ऊपर के भाग को छूकर यह पढ़े :—

"वनस्पते वीड्वंगो हि भूयाः" (ऋ० ६।४७।२६)

फिर राजा से कहे, "इस (उत्तर-पूर्व) दिशा में मुड़. तेरा रथ आदि भी इसी दिशा की ओर जावे। अर्थात् उत्तर-पूर्व की ओर, फिर उत्तर-पश्चिम की ओर, दक्षिण-पूर्व की ओर, और अन्त में शत्रु की ओर।"

इस सूक्त को पढ़कर रथ को घुमावे :—

अभीवर्तेन हविषा......(ऋ० १०।१७४)

और इन सूक्तों को पढ़कर रथ की ओर देखे :—

अप्रतिरथ सूक्त (ऋ० १०।१०३)

आशुःशिशानो······

शास सूक्त (ऋ० १०।१५२)

शास इत्था······

सौपर्ण सूक्त (प्र धारायन्तु मधुनः)

जब युद्ध में जाते समय कहता है, "तथा मे कुरु यथाहमिमं संग्रामं संजयानि", "मेरे लिये ऐसा कर कि मैं युद्ध में जीत जाऊँ।" तो वह अवश्य जीत जायगा अब वह उत्तर पूर्व की दिशा में लड़ेगा और जीत जायगा।

अगर अपने देश से निकाल दिया गया हो और लड़ाई पर जा रहा हो तो ऐसा कहे, "ऐसा कर कि मैं अपने राष्ट्र को लौट आऊँ।" अब वह उसको उत्तर-पूर्व की दिशा में जाने देता है और इस प्रकार राजा अपने देश को लौटता है।

उत्तर-पूर्व की ओर खड़ा होकर वह महल को लौटता है और नीचे का मंत्र पढ़ता है मानों वह शत्रु को हरा चुका :—

अप प्राच इन्द्र······(ऋ० १०।१३१।१)

ऐसा करने से वह शत्रु रहित हो जाता है और उत्तरोत्तर श्री को प्राप्त होता है। जो इस मत्र को पढ़ता हुआ महल को लौटता है वह प्रजाओं के ऐश्वर्य और आधिपत्य को प्राप्त होता है। महल में आकर घर की अग्नि के पास बैठता है। तब ऋत्विज चार प्याले घी के भरता है। और इन्द्र के लिये तीन आहुतियाँ देता है और प्रपद रीति से मंत्र पढ़ता है। जिससे वह रोग, हानि आदि से सुरक्षित रहे, और अभय को प्राप्त हो। (६)

११—यह तीन मंत्र यह हैं :—

पर्यूषु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्रा (भूर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये, सह प्रजया सह पशुभिः) णि स त्तणिः द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे (स्वाहा) । (ऋ० ६।११०।१)

अनु हि त्वा सुतं सोममदामसि महे सम (भुवो ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये । सह प्रजया सह पशुभिर् य राज्ये वाजां अभि पवमान प्रगाहसे (स्वाहा)···(ऋ० ६।११०।२)

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे श (स्वर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये । सह प्रजया सहपशुभिः) क्मना पयः । गोजरीया रंहमाणः पुरन्ध्या (स्वाहा)···(ऋ० ६।११०।३)

जिस राजा के लिये ऋत्विज इन इन्द्र के तीन मंत्रों से जो प्रपद रीति से पढ़े गये हैं चार चार चमसों की तीन आहुतियाँ देता है तो वह अपनी सब अरिष्ट बातों पर विजय पाता है। शत्रुओं से छूट जाता है, त्रयी विद्या के द्वारा सुरक्षित रहता है, सब दिशाओं में विचरता है और इन्द्र लोक में प्रतिष्ठा पाता है।

अब वह सन्तान, गायों, घोड़ों और पुरुषों के लिये प्रार्थना करता है :—

"इह गावः प्रजयाध्व मिहाश्वा इह पुरुषाः; इहो सहस्र दक्षिणो वीरत्राता निषीदतु ।"

हे गायो, तुम यहाँ उत्पन्न हो; हे घोड़ो, यहाँ उत्पन्न हो; हे पुरुष, यहाँ उत्पन्न हो; यहाँ बहुत बड़ा वीर और जाता (मेरा

---

*जितना भाग कोष्ठ में बन्द है वे वेद मन्त्र नहीं है किन्तु वेद मन्त्र में बीच में पैवन्द लगाया गया है। यही प्रपद रीति कहलाती है।

लड़का) पैदा हो जो हजारों दक्षिणायें दे।" ऐसी प्रार्थना करने वाले के बहुत सन्तान और पशु उत्पन्न होंगे।

जिस क्षत्रिय के लिये पुरोहित लोग इस रहस्य को समझते हुये यज्ञ करते हैं उसकी प्रतिष्ठा होती है।

लेकिन जो रहस्य को न समझकर क्षत्रिय के लिये इस प्रकार यज्ञ कराते हैं, वह उसको मार डालते हैं घसीटते हैं और धन छीन लेते हैं, जैसे अगर कोई वन में जाता हो तो चोर डाकू उसको पकड़ लें, और खाई आदि में डालकर उसके धन को छीन लें।

परीक्षित के पुत्र जन्मेजय ने जो इस रहस्य को समझता था कहा है, "मेरे रहस्य समझने वाले ऋत्विजों ने मुझ रहस्य समझने वाले का यज्ञ कराया। इसलिये मैं विजयी हुआ। मैं लड़ने के उत्सुक शत्रु को शीघ्र ही जीतता हूँ। दैवी अथवा मानुषी तीर जो इस सेना से आयें मुझे नहीं लग सकते। मैं पूर्ण आयु वाला हूँगा। मैं सब पृथ्वी का स्वामी होऊँगा। "जो इस रहस्य को समझकर इस प्रकार यज्ञ करता है उसकी पूर्ण आयु होती है और वह सब भूमि का अधिपति होता है। (७)

ऐतरेय ब्राह्मण की आठवीं पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

१२—अब इन्द्र के महाभिषेक का वर्णन किया जाता है। प्रजापति के सहित देवों ने कहा, ' यह (इन्द्र) देवों में सब से अधिक ओजवाला, साहसी, सत्तम अर्थात् सत्त्व वाला और कामों को सबसे अच्छी भाँति करने वाला है। इसी का अभिषेक करें (अर्थात् इसी को राजा बनावें)।'' उन सब ने इन्द्र का महाभिषेक करना स्वीकार कर लिया। वे उसके लिये ऋचाओं से बने हुये सिंहासन को लाये। उन्होंने बृहत् और रथंतर सामों को सिंहासन के अगले दो पाये बनाया और वैरूप और वैराज को पिछले दो पाये। शक्वर और रैवत को ऊपर का पट्टा, नौधस और कालेय को उसके बगल के तख्ते। ऋचाओं का उन्होंने ताना बनाया, सामों का बाना और यजुओं का बीच का भाग, यश को बिछौना, श्री को तकिया, सविता और बृहस्पति ने उसके अगले पाये पकड़े, वायु और पूषा ने पिछले,

मित्र और वरुण ने दो ऊपर के तख्ते और अश्विनों ने दो बगल के तख्ते।

इन्द्र तब सिंहासन को इस प्रकार संबोधन करके उस पर चढ़ा, "वसु तुझ पर गायत्री छन्द, त्रिवृत स्तोम, रथंतर साम द्वारा चढ़ें। उनके पीछे साम्राज्य के लिये मैं चढ़ूँ। रुद्र तुझ पर त्रिष्टुभ् छन्द से, पंचदश स्तोम से और बृहत् साम से चढ़ें। उनके पीछे मैं भोग के लिये चढ़ूँ। आदित्य तुझ पर जगती छन्द, १७ स्तोम और वैरूप साम से चढ़ें। उनके पीछे मैं स्वराज्य के लिये चढ़ूँ, विश्वेदेवा तुझ पर अनुष्टुभ् छन्द, २१ स्तोम और वैराज साम से चढ़ें। और उनके पीछे मैं तुझ पर वैराज्य के लिये चढ़ूँ। साध्य और आप्त्य तुझ पर पंक्ति छन्द, त्रिणव (२७) स्तोम और शक्वर साम से चढ़ें और उनके पीछे मैं तुझ पर राज्य के लिये चढ़ूँ। मरुत और अंगिरा तुझ पर अतिच्छन्दस् छन्द से और ३३ स्तोम और रैवत साम से चढ़ें और मैं उनके पीछे तुझ पर पारमेष्ठ्य के लिय महाराज्य के लिये, स्वावश्य के लिये और अधिक जीवन के लिये चढ़ूँ"। इन शब्दों को कह कर सिंहासन पर बैठे।

जब इन्द्र इस प्रकार सिंहासन पर बैठ गया तो विश्वेदेवों ने उससे कहा, "जब तक इन्द्र की घोषणा न की जायगी वह पराक्रम के कार्य्य न कर सकेगा। परन्तु यदि ऐसी घोषणा की जायगी तो वह कर सकता है।" तब उन्होंने ऐसा करना अंगीकार कर लिया और इन्द्र के सामने मुँह करके ज़ोर से (इन्द्र के पदों की) घोषणा करने लगे।

देवों ने उसको साम्राज्य का सम्राट्, भोगों का भोक्ता, स्वाराज्य का स्वराट्, वैराज्य का विराट्, राजों का पिता, परमेष्ठि, बना दिया। उन्होंने कहा, 'आज क्षत्रं पैदा हुआ,

आज क्षत्रिय पैदा हुआ, विश्व का अधिपति पैदा हुआ, विश और लोगों का भोगने वाला पैदा हुआ, पुरों का नाश करने वाला पैदा हुआ। असुरों का घातक पैदा हुआ, ब्राह्मणों का रक्षक पैदा हुआ, धर्म का रक्षक हुआ।" जब घोषणा हो चुकी तो प्रजापति ने अभिषेक करके इन मन्त्रों को पढ़ाः—(१)

१३—निषसाद धृत व्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय (भौज्याय, स्वाराज्याय, वैराज्याय, पारमेष्ठ्याय, राज्याय, माहाराज्याय, आधिपत्याय, स्वावश्याय, अतिष्ठाय) सुक्रतुः। (ऋ० १।२५।१०)

"धृतव्रत वरुण साम्राज्य इत्यादि के लिये बैठा"।

इन्द्र गद्दी पर बैठा था। प्रजापति इन्द्र के सामने खड़ा हुआ और पश्चिम को मुँह करके उदुम्बर और पलाश की भीगी शाखा से उसका आभिर्षिचन किया (सिर पर पानी छिड़का)। नीचे की तीन ऋचाओं (तृच) और एक यजु और तीन व्याहृतियों का पाठ करके :—

इमा आपः शिवतमा···(ऐतरेय ८।७)

देवस्य त्वा सवित···(यजु० १।१०)

भूर्भुवः स्वः···(तीन व्याहृतियां) (२)

१४—अब वसुओं ने पूर्व दिशा में छः और पचीस (३१) दिनों में इन्द्र का अभिषेक किया, उन्हीं तीन ऋचाओं, उसी यजु और उन्हीं तीन व्याहृतियों से। उसके साम्राज्य के लिये। इस लिये इस पूर्व दिशा में राजा लोग साम्राज्य के लिये इन्हीं के द्वारा अभिषेक किया करते हैं और 'सम्राट्' कहलाते हैं। यह देवों का अनुकरण रूप है।

इन्हीं ऋचाओं, इसी यजु और इन्हीं व्याहृतियों का पाठ करके ३१ दिन में दक्षिण दिशा में रुद्रों ने इन्द्र का अभिषेक

किया। भोग के लिये। इसलिये दक्षिण दिशा के राजा लोग देवों की क्रियाओं का अनुकरण करके इन्हीं ऋचाओं आदि के द्वारा भोग के लिए अभिषेक कराते हैं और 'भोज' कहलाते हैं।

इन्हीं ऋचाओं, इसी यजु और इन्हीं व्याहृतियों का पाठ करके ३१ दिनों में पश्चिम दिशा में आदित्यों ने इन्द्र का स्वाराज्य के लिये अभिषेक किया। इन्हीं देवों का अनुकरण करके पश्चिम में राजा लोग स्वाराज्य के लिये अभिषेक कराते हैं और 'स्वराट्' कहलाते हैं।

इन्हीं तीन ऋचाओं, इसी एक यजु और तीन व्याहृतियों का पाठ करके विश्वेदेवों ने ३१ दिन में वैराज्य के लिये इन्द्र का उत्तर दिशा में अभिषेक किया। इसी लिये इन देवों के कृत्यों का अनुकरण करके उत्तर दिशा में जो बर्फीले प्रदेश हैं, उत्तर कुरु आदि पहाड़ के उत्तर को, वहाँ के राजा लोग इन्हीं ऋचाओं आदि के द्वारा वैराज्य के लिये अभिषेक कराते हैं और 'विराट्' कहलाते हैं।

यह जो ध्रुवा बीच की प्रतिष्ठित दिशा है इसमें साध्य और आप्तों ने ३१ दिन में इन्हीं तीन ऋचाओं, एक यजु और तीन व्याहृतियों द्वारा राज्य के लिये इन्द्र का अभिषेक किया। और देवों के कृत्यों के अनुकरण रूप में बीच की प्रसिद्ध ध्रुवा दिशा के जो राजा लोग हैं जैसे कुरु पांचाल, सवश और उशीनर ये राज्य के लिये अपना अभिषेक कराते हैं और 'राजा' कहलाते हैं।

इन्हीं तीन ऋचाओं, यजु और तीन व्याहृतियों का पाठ करके ३१ दिन में मरुतों और अंगिरसों ने 'ऊर्ध्व' दिशा में इन्द्र का पारमेष्ठ्य, महाराज्य, आधिपत्य और स्वावश्य के लिए अभिषेक किया। वह परमेष्ठी और प्रजापति हो गया।

इन्द्र ने इस महाभिषेक से सबको जीत लिया और सब लोकों पर स्वत्व कर लिया। और सब देवताओं में श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित हो गया। साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्यराज्य, माहाराज्य, आधिपत्य को प्राप्त करके इस लोक में स्वयंभू, स्वराट्, अमृत और उस लोक में सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला हो गया। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की आठवीं पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

१५—जो ऋत्विज इस रहस्य को समझता हुआ यह चाहे कि क्षत्रिय सब को जीत ले, सब लोकों को ले ले, और सब राजों में श्रेष्ठ और बड़ा हो जाय, साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, राज्य, माहाराज्य, आधिपत्य, प्राप्त कर ले; सब जगह उसकी पहुँच हो, सब भूमि का मालिक हो, पूर्ण आयु वाला हो, और पृथिवी पर समुद्र तक राज्य करे और संशयरहित हो, उस ऋत्विज को चाहिये कि उस क्षत्रिय का इन्द्र के महाभिषेक की रीति से अभिषेक करे। और उससे यह शपथ ले कि "जिस रात्रि को तू पैदा हुआ उससे लेकर जिस रात्रि को तू मरेगा उस घड़ी तक जो कुछ तू ने लोक में सुकृत किया या आयु पाई या प्रजा मिली, उस सब को मैं छीन लूँगा अगर तू ने मुझसे द्रोह किया!"

ऐसा जानने वाला क्षत्रिय अगर चाहे कि मैं सब को जीत जाऊँ, सब लोक मुझे मिल जायँ, मैं सब राजों में श्रेष्ठ हो जाऊँ, साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, परमेष्ठ्य राज्य, माहाराज्य, आधिपत्य प्राप्त हो जाय, सब भूमि, पूर्ण आयु, मिल जाय और समुद्र तक पृथ्वी का एक मात्र राजा हो जाऊँ तो वह बिना शंका किये श्रद्धा से ऐसी शपथ खाये कि "अगर मैं तेरे साथ द्रोह करूँ तो मुझसे जन्म से मृत्यु तक जो कुछ मैंने सुकृत किया या आयु और प्रजा हुई उसको तू छीन लेना।" (१)

१६—तब ऋत्विज कहे, "चार लकड़ियाँ लाओ, न्यग्रोध की, उदुंबर की, अश्वत्थ की और प्लाक्ष की।" जो न्यग्रोध है वह वनस्पतियों में क्षत्रिय है। जो न्यग्रोध को लाता है, वह मानों उसमें क्षत्र की धारण कराता है। उदुंबर वनस्पतियों में भौज्य है। जो उदुम्बर लाता है वह उसमें भौज्य धारण कराता है। अश्वत्थ वनस्पतियों में साम्राज्य है। जो अश्वत्थ को लाता है वह उसमें साम्राज्य को धारण कराता है। प्लाक्ष वनस्पतियों में स्वाराज्य और वैराज्य है। जो प्लाक्ष को लाता है वह उसमें स्वाराज्य और वैराज्य धारण कराता है।

अब उससे कहे, "चार औषधों (अन्नों) को लाओ, व्रीहि, महाव्रीहि, प्रियंगू, यव।" व्रीहि ओषधियों में क्षत्रिय है। जो व्रीहि लाता है वह क्षत्रिय में क्षत्र को धारण कराता है। महाव्रीहि ओषधियों में साम्राज्य है। जो महाव्रीहि को लाता है वह उसमें साम्राज्य को धारण कराता है। प्रियंगू (कांगुनी ओषधियों में भौज्य है। जो प्रियंगू लाता है वह उसमें भौज्य को धारण कराता है। जो यव है वह ओषधियों में सेनानी है। जो यव को लाता है वह उसमें सेना के नेतृत्व को धारण कराता है। (२)

७ १८, १९—अब वह उदुम्बर का सिंहासन लाता है जैसा ऊपर की ब्राह्मण में कहा गया। उदुंबर का चमसा लावे या उदुंबर का कोई और बरतन। और उदुम्बर की शाखा भी। इन सब चीजों को (चार तरह के अन्नों को) उदुम्बर के चमसे या पात्र में मिलाते हैं। इसके पश्चात् उस पर दही, शहद, घी और धूप में बरसता हुआ जल डालते हैं। और सिंहासन को सम्बोधन करके कहते हैं :—

बृहत् और रथतंर तेरे दो अगले पाये हैं और वैरूप और वैराज पिछले दो पाये। इत्यादि (देखो पृ० ४७३ से)

(१८, १९ वही हैं जो १२, १३, १४ हैं ऊपर देखो)। (३ ४, ५)

२०—इस लोक में जो दही है वह मानों इन्द्रिय है। यह जो दही से सींचता है वह क्षत्रिय में इन्द्रिय धारण कराता है। औषध और वनस्पतियों में जो रस है वह शहद है। इसलिये मधु से सींचकर क्षत्रिय में इन के रस को धारण कराता है। यह जो घी है वह पशुओं का तेज है। यह जो घी से सींचता है वह इस प्रकार क्षत्रिय में तेज धारण कराता है। यह जो जल है यह इस लोक में अमृत है। यह जो जल से सींचता है मानो उसमें अमृतत्व धारण कराता है।

जिसका अभिषेक हुआ वह अभिषेक करने वाले ब्राह्मण को सोना, हजार गौयें, और चौकोर खेत दे। यह भी कहते हैं कि अपरिमित दक्षिणा दे क्योंकि क्षत्रिय अपरिमित है और अपरिमित दान देने से अपरिमित फल होगा।

अब वह राजा के हाथ में सुरा का प्याला देता है और यह मंत्र पढ़ता है :—

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया इन्द्राय पातवे सुते ॥
(ऐ० ८।८)

अब जो शेष रहे उसको इन दो मंत्रों को पढ़ कर पिये :—

(१) रसिनः सुतस्य यदिंद्रो अपिबच्छचीभिः इदं तदस्य मनसा शिवे न सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥

और (२) अभित्वा वृषभा सुते …(ऋ० ८।४५।२२)

सुरा में जो सोम का असर है उसको जैसे इंद्र के लिये महाभिषेक हुआ उसी प्रकार राजा का महाभिषेक करके राजा को पिलाते हैं। सुरा को नहीं। और इन दो मंत्रों को पढ़ते हैं :—

अपाम सोमम्…(ऋ० ८।४८।३)

शन्नो भव चक्षसा…(ऋ० १०।३७।१०)

जिस प्रकार प्रिय पुत्र पिता का और प्रिय स्त्री पति का आलिङ्गन करके आनन्दित होती है उसी प्रकार यह राजा भी इन्द्र के समान महाभिषेक कराने के पश्चात् सोम या सुरा पान करके या अन्नाद्य खाकर आनन्दित होता है और अपने को भूल जाता है। (६)

२१—कवष के पुत्र तुर ने परीक्षित के लड़के जनमेजय का वही राज्यभिषेक किया था जो इन्द्र का हुआ था। इसलिये जनमेजय सर्वत्र विजयी हुआ और उसने अश्वमेध यज्ञ किया। इसके सम्बन्ध में यह गाथा कही जाती है :—

आसंदीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम् ।
अश्व बबंध सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥

"जनमेजय ने देवों के लिये तख्त के पास धान्य खाने वाले, माथे पर चिह्न वाले और हरी माला वाले घोड़े को बांधा।"

इसी इन्द्र के महाभिषेक से भृगु के लड़के च्यवन ने मनु के पुत्र शर्यात का अभिषेक किया, इसलिये मनु के पुत्र शर्यात ने ने पृथ्वी भर पर फिर कर उसको जीत लिया और अश्वमेध यज्ञ किया और देवों के यज्ञ में गृहपति बना। इसी इन्द्र के महाभिषेक से वाजरत्न के पुत्र सोमशुष्मा ने सत्राजित के पुत्र शतानीक का राज्याभिषेक किया। शतानीक ने पृथ्वी को घूम २ कर जीत लिया और अश्वमेध यज्ञ किया। इसी इन्द्र के महाभिषेक से पर्वत और नारद ने अम्बाष्ठ्य का अभिषेक किया। इसलिये अम्बाष्ठ्य ने फिर २ कर पृथ्वी को जीत लिया और स्वयं अश्वमेध यज्ञ किया।

इसी इन्द्र के महाभिषेक से पर्वत और नारद ने उग्रसेन के लड़के युधांश्रौष्टि का अभिषेक किया और इसने पृथ्वी भर को घूम फिर कर जीत लिया और अश्वमेध यज्ञ किया।

इसी इन्द्र के महाभिषेक से कश्यप ने, भुवन के पुत्र विश्वकर्मा ने घूम फिर कर समस्त पृथ्वी को समुद्र के तट तक जीत लिया और अश्वमेध यज्ञ किया। कहते हैं कि विश्वकर्मा की प्रशंसा में पृथ्वी ने यह गीत गाया :—

न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति,
विश्वकर्मन् भौवन मां दिदासिथ।
निमंक्ष्येऽहं सलिलस्य मध्ये,
मोघस्त एष कश्यपायास संगरः।

"हे विश्वकर्मा, कोई मेरा दान नहीं कर सकता। तू ने मुझे दान कर दिया। मैं समुद्र में गिर जाऊँगी। तेरा कश्यप को देने की प्रतिज्ञा करना व्यर्थ है।"

इन्द्र के इसी महाभिषेक से वशिष्ठ ने पिजवन के पुत्र

सुदास का महाभिषेक किया और उसने पृथ्वी भर में घूम कर विजय पाई और अश्वमेध यज्ञ किया।

इन्द्र के इसी राज्याभिषेक से अंगिरस् के पुत्र संवर्त ने अविक्षित के पुत्र मरुत्तम का अभिषेक किया और यह सारी पृथ्वी पर घूमा, उसे विजय किया और उसने अश्वमेध यज्ञ किया।

इसी के विषय में यह श्लोक गाया जाता है,—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासदः॥

"मरुत लोग मरुत के घर में अन्न बांटने वाले रहे। इसकी सब कामनायें पूरी हुई और विश्वेदेव वहाँ मौजूद थे।" (७)

२२—इसी इन्द्र के अभिषेक से अत्रि के लड़के उदमय ने अंग का अभिषेक किया। उससे अंग ने पृथ्वी की विजय की और अश्वमेध यज्ञ किया। उस अलोपांग (नहीं लोप हुआ कोई अंग जिसका) ने एक बार कहा था, "हे ब्राह्मण, मैं तुझे दस हज़ार हाथी और दस हज़ार दासियाँ देता हूँ, अगर तू मुझे अपने यज्ञ में बुलावे।" इसके सम्बन्ध में पाँच नीचे के श्लोक कहे जाते हैं:—

याभिर्गोभिरुदमयं प्रैयमेधा अयाजयन्।
द्वे द्वे सहस्रे बद्धानामात्रेयो मध्यतो ददात्॥१॥

अष्टाशीति सहस्राणि श्वेतान् वैरोचनो हयान्।
प्रष्टीं निश्चृत्य प्रायच्छद् यजमाने पुरोहिते॥२॥

देशाद् देशात् समोढ्हानां सर्वासामाढ्य दुहितृणां।
दशाददात् सहस्राण्यात्रेयो निष्ककंठ्यः॥३॥

दशनाग सहस्राणि दत्वात्रेयो वचत्नुके ।
श्रांतः पारिकुटान् प्रैप्सद् दानेनांगस्य ब्राह्मणः ॥४॥

शतं तुभ्यं शतं तुभ्यमिति स्मैव प्रताम्यति ।
सहस्रं तुभ्यमित्युक्त्वा प्राणान्स्म प्रतिपद्यते ॥५॥

अर्थ—प्रियमेध के लड़कों ने उद्मय को जिन जिन गायों को देने के लिये कहा, अत्रि के लड़के उद्मय ने मध्यसवन में दो-दो हजार वद्वा (गायों के गल्ले) दिये ॥१॥

विरोचन के पुत्र ने ८८ हज़ार सफ़ेद घोड़ों की रस्सियाँ खोल दीं और यजमान पुरोहित को दान कर दिया ॥२॥

अत्रि के लड़के ने देश-देश से जमा की हुई दस हज़ार लड़कियों को जिनकी गर्दन में आभूषण पड़े थे दान कर दिया ॥३॥

वचत्नुक देश में अत्रि के लड़के ने दस हज़ार हाथी दिये। थके हुए ब्राह्मण ने अंग के दान को लेने के लिये नौकरों को कहा ॥४॥

"सौ तुझको," "सौ तुझको" ऐसा कहता-कहता वह थक गया। तब उसने कहा "हज़ार तुझको," "हज़ार तुझको" और फिर भी थक कर सांस लेने ठहर गया (क्योंकि दान के लिये बहुत बाक़ी था) ॥५॥ (८)

२३—इन्द्र के इसी महाभिषेक से ममता के लड़के दीर्घतमा ने दुष्यन्त के लड़के भरत का अभिषेक किया। इससे भरत ने सब पृथ्वी की परिक्रमा की और अश्वमेध यज्ञ किया। इसके विषय में यह श्लोक हैं :—

हिरण्येम परीवृतान्कृष्णान् शुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतो ददाच्छतं बद्वानि सप्त च ॥१॥

को ग्रहण करके पृथ्वी भर का भ्रमण किया और उसे जीत कर राजा हो गया।

वसिष्ठ गोत्री सत्यहव्य के पुत्र ने राजा से कहा, "तू ने समुद्र के तट तक सम्पूर्ण पृथ्वी जीत ली। अब तू मुझे भी (दक्षिणा देकर) बड़ा बना।" अत्यराति ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण, जब मैं उत्तर कुरुओं को जीत लूँगा तब तू पृथ्वी का राजा होगा और मैं तेरा सेनापति होऊँगा।"

सत्यहव्य के लड़के ने कहा, "यह देवक्षेत्र है। इसको कोई नहीं जीत सकता। तूने मुझे धोखा दिया इस लिये मैं इसको तुझसे लिये लेता हूँ। जब अत्यराति से यह सब छीन लिया गया और वह निःशुक हो गया तो शिब्य के पुत्र शुष्मिण ने उसे मार डाला। इस लिये जो क्षत्रिय इस रहस्य को समझे और जिसका अभिषेक हो जाय उसको चाहिये कि ब्राह्मण से छल न करे। नहीं तो उसकी सम्पत्ति छिन जायगी और वह मार डाला जायगा। (९)

ऐतरेय ब्राह्मण की आठवीं पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पाँचवाँ अध्याय

२४—अब पुरोहित के विषय में कहते हैं। देव उस राजा का अन्न नहीं खाते जिसके पुरोहित न हो। इसलिये यज्ञ की इच्छा करने वाला राजा पुरोहित को नियुक्त करे।

'देव मेरे अन्न को खावें' ऐसा सोचकर राजा पुरोहित को नियुक्त करके स्वर्ग को ले जाने वाली अग्नियों को स्थापित करे। पुरोहित उसका आहवनीय है। स्त्री गार्हपत्य है। पुत्र आन्वाहार्यपचन या दक्षिणाग्नि है। जो कुछ वह पुरोहित के लिये करता है मानो आहवनीय में यज्ञ करता है। और जो स्त्री के लिये करता है मानों गार्हपत्य अग्नि में यज्ञ करता है। और जो पुत्र के लिये करता है मानों दक्षिणाग्नि में यज्ञ करता है। ये अग्नियाँ शांततनु (विघ्न नाशक) होकर पुरोहित से पूजी जाकर और यजमान से प्रसन्न होकर उसको स्वर्गलोक में ले जाती हैं। और क्षत्र,

बल, राष्ट्र और प्रजा को देने वाली होती हैं। और यही अग्नियाँ यदि पुरोहित द्वारा अर्चित न हों तो प्रसन्न नहीं होतीं और यजमान को स्वर्ग लोक, तथा क्षत्र, बल, राष्ट्र और प्रजा से च्युत कर देती हैं।

यह पुरोहित जो वैश्वानर अग्नि है पांच विघ्न कारक शक्तियाँ रखता है, एक उसकी वाणी में और एक पैरों में, एक त्वचा में, एक हृदय में और एक उपस्थ-इन्द्रिय में। इन जलती हुई शक्तियों से वह राजा पर आक्रमण करता है। वाणी में जो विघ्नकारक शक्ति है उसको वह यह कहकर शांत करता है, "भगवन्, आप अब तक कहां रहे। नौकर लोगो, इनके लिये तृण लाओ। यह जो पैरों में विघ्नकारक शक्ति है उसको वह पैर धोने के लिये जल लाकर शांत करते हैं। यह जो उसकी त्वचा में विघ्नकारक शक्ति है उसको वह अलंकारों द्वारा शांत कर रहा है। यह जो उसके हृदय में विघ्नकारक शक्ति है उसको तर्पण करके शांत करता है। यह जो उसकी उपस्थ इन्द्रियों में विघ्नकारक शक्ति है उसको वह घर में स्वच्छन्द निवास कराके शांत करता है। वह इस प्रकार शांततनु और प्रसन्न होकर उस को स्वर्ग को ले जाता है। और क्षत्र, बल, राष्ट्र, और प्रजा से सपन्न करता है। यदि यह शांततनु और प्रसन्न न हो तो स्वर्ग लोक से तथा क्षत्र, बल, राष्ट्र और प्रजा से उसको च्युत कर देता है। (१)

२५—यह जो पुरोहित अग्नि वैश्वानर है, इसमें पांच विघ्नकारक शक्तियाँ होती हैं। जैसे समुद्रभूमि को घेर कर सुरक्षित रखता है इसी प्रकार यह भी राजा को घेर कर सुरक्षित रखता है।

जो राजा इस रहस्य को समझकर राष्ट्र के रक्षा करने वाले ब्राह्मण को पुरोहित नियत करता है उसका राष्ट्र सुरक्षित

रहता है। वह आयु से पहले नहीं मरता, बुढ़ापे तक रहता है और पूरी आयु पाता है। और वह कभी फिर न मरेगा क्योंकि वह क्षत्र से क्षत्र को प्राप्त करता है और बल से बल को पाता है। जिसका पुरोहित ऐसा राष्ट्र का रक्षक पुरोहित है उसकी प्रजा बिना किसी प्रकार के विरोध और दलबन्दी के उस की आज्ञाओं को मानती है। (२)

२६—इस विषय में ऋषि का ऐसा कथन है :—

स इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वाशुष्मेण तस्थावभिवीर्येण। बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्। (ऋ० ४।५०।७)

जन्यानि का अर्थ है शत्रु। वह उनको क्षत्र और वीर्य से जीतता है। "बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति" का अर्थ इस प्रकार बृहस्पति देवों का पुरोहित है और राजाओं के मनुष्य पुरोहित उन्हीं का अनुकरण करते हैं।

"जो अच्छी तरह पोषण करने वाले बृहस्पति को पोसते हैं," अर्थात् जो पोषण करने वाला पुरोहित है राजा उसका पोषण करता है। "वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजं" का अर्थ इस प्रकार है :—

पुरोहित पूर्वभाज है क्योंकि पहला भाग उसी का है। राजा उसका सम्मान और उसको नमस्कार करता है। उसको चुनता है।

स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्। तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥

(ऋ० ४।५०।८)

'ओकस्' का अर्थ है घर। सुधित=सुहित के अर्थात् प्रसन्न। इसलिये पहले पद का अर्थ हुआ कि पुरोहित प्रसन्न होकर राजा के घर में रहता है। इडा का अर्थ है अन्न। उसको सदा अन्न मिलता है। "उसको लोग स्वयं ही नमस्कार करते हैं,

जिसके राज में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा होती है।" यहाँ ब्राह्मण का अर्थ पुरोहित है। अर्थात् यह पुरोहित का अभिवादन है। (३)

२७—उसी ब्राह्मण को पुरोहित बनाना चाहिये जो तीन पुरोहितों और पुरोधाताओं को जानता है। उन तीन पुरोहितों में एक अग्नि है। पृथ्वी पुरोधाता (नियुक्त करने वाला) है। दूसरा पुरोहित वायु है। अन्तरिक्ष पुरधाता है। आदित्य पुरोहित है और द्यौ पुरोधाता है। वही पुरोहित है, जो इसको समझता है। जो इसको नहीं समझता वह पुरोहित नहीं है।

जिस राजा का ऐसा ब्राह्मण राष्ट्र का रक्षक पुरोहित हो, उसके दूसरे राजा लोग मित्र हो जाते हैं और वह शत्रुओं को जीत लेता है। वह क्षत्र से क्षत्र को और बल से बल को जीतता है। जिस राजा का ऐसा राष्ट्र का रक्षक ब्राह्मण पुरोहित होता है उसकी प्रजा उसको निरंतर और एकमन होकर मानती है।

पुरोहित बनाने का मत्र यह है :—

भूर्भुवः स्वरो ममोऽहमस्मि स त्वं स त्वमस्यमोऽहं द्यौरहं पृथिवी।त्वं सामाहमृक्त्वं तावेह संवहावहै पुराण्यस्मान्महाभयात् तनूरसि तन्वं मे पाहि ॥१॥

या ओषधीः सोमराज्ञी र्बह्वीः शत विचक्षणाः। ता मह्यमस्मिन्नासने-ऽछिद्रं शर्म यच्छत ॥२॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु। ता मह्यमस्मिन्नासने-ऽछिद्रं शर्म यच्छत ॥३॥

अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेश याम्यतो देवीः प्रतिपश्याम्यापः। दक्षिणं पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्र इंद्रियं दधामि। सव्यं पादमवनेनिजे-ऽस्मिन् राष्ट्र इंद्रियं वर्धयामि ॥४॥

पूर्वमन्यमपरमन्यं पादाववनेनिजे देवा राष्ट्रस्य गुप्त्या अभयस्या-वरुध्यै। आपः पादावनेजनीर्द्विषंतं निर्दहंतु मे ॥५॥

भूर्भुवः स्वः, ओ३म्। वह मैं हूँ, यह तू है। तू यह है। मैं वह हूँ। तू द्यौ है, मैं पृथ्वी हूँ। तू साम है, मैं ऋक् हूँ। हम दोनों एक दूसरे को पुष्ट करें। हमको पुराने भयों से बचा (जिनसे पुराने राजा पीड़ित हो चुके हैं)। तू शरीर है, मेरे शरीर की रक्षा कर ॥१॥

हे सैकड़ों औषधियो, जो तुम पर सोम राज करता है तुम इस मेरी गद्दी पर मेरे लिये आनन्द दो ॥२॥

हे पृथ्वी पर विस्तृत ओषधियो, जिन तुम पर सोम राज करता है आप मेरी इस गद्दी पर मुझे सुख दो ॥३॥

मैं इस राष्ट्र में शान्ति की स्थापना करता हूँ, इसके लिये मैं दिव्य जलों की ओर देख रहा हूँ। (पुरोहित के) दाहिने पैर को धोकर मैं राष्ट्र में इन्द्रिय (इन्द्र की शक्ति) को स्थापित करता हूँ। बायें पैर को धोकर मैं उस इन्द्रिय की वृद्धि करता हूँ ॥४॥

हे देवो, मैं राज्य की रक्षा और अभय की प्राप्ति के लिये (पुरोहित के) पहले और दूसरे पगों को धोता हूँ। जिन जलों से पग धोये गये हैं वह मेरे शत्रु को भस्म करें ॥५॥ (४)

२८—अब ब्रह्म-परिमर क्रिया कही जाती है। जो ब्रह्म-परिमर क्रिया को जानता है उसके सब शत्रु और वैरी मर जाते हैं। ब्रह्म है जो बहता है अर्थात् वायु। उसके चारों ओर पांच देवता मरते हैं :—विद्युत् , वृष्टि, चंद्रमा, आदित्य, अग्नि। जब पानी नहीं बरसता तो विद्युत् विद्युत् में प्रविष्ट हो जाती है और छिप जाती है। जब लोग शत्रु को न देखें तो राजा कहे, "विद्युत् के मरने से मेरे शत्रु भी मर जायँगे, और छिप जायँगे। वे कभी शत्रु को न देखें।" वह शीघ्र ही मर जाता है और वे उसको देख नहीं पाते*।

वृष्टि बरस कर चंद्रमा में प्रविष्ट हो जाती है और छिप जाती है। जब वह मर जाती है और अन्तर्ध्यान हो जाती है

तो वे उसे नहीं देखते। जब वे उसे न देखें तो राजा कहे, "वृष्टि के मरने से मेरे शत्रु मर जावें और वे उसको फिर न देख सकें।" वह फौरन मर जाता है और वे उसको नहीं देख सकते।

अमावस को चन्द्रमा आदित्य में प्रविष्ट होता है और छिप जाता है। वे उसे देख नहीं सकते क्योंकि वह मर जाता है और छिप जाता है। जब वे उसे न देखें तो राजा कहे, "चन्द्रमा के मरते ही मेरे शत्रु मर जायें और अन्तर्धान हो जायँ। वे उसको न देख सकें।" वे फौरन उस शत्रु को न देखेंगे क्योंकि वह मर जायगा।

आदित्य अस्त होकर अग्नि में प्रविष्ट होता है। और छिप जाता है। वे उसको नहीं देख पाते क्योंकि वह मर जाता है और अन्तर्धान हो जाता है। जब वह न दीखे और लोप हो जाय तो राजा कहे, "सूर्य्य के मरने से मेरे शत्रु भी मर जायँ और लोप हो जायँ। लोग उसे कभी न देख सकें।" वे फौरन ही उसको न देखेंगे क्योंकि वह मर जायगा।

अग्नि बुझ कर वायु में प्रविष्ट होती है और अन्तर्धान हो जाती है। वे जब उसको न देखें और वह मर जाय तो राजा कहे, "अग्नि के बुझने से मेरे शत्रु भी मर जायँ और कोई लोग उनको न देख सकें।" बस उसके शत्रु मर जायँगे और कोई उसको न देख सकेगा।

अब इन पांचों देवताओं का पुनर्जन्म होता है। वायु से अग्नि का। क्योंकि प्राण रूप बल से मथने से (रगड़ने) से अग्नि पैदा होती है। उसको देखकर राजा कहे, "अग्नि फिर उत्पन्न हो, मेरा शत्रु फिर उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय।" वह दूर भाग जाता है।

अग्नि से आदित्य उत्पन्न होता है। उसको देखकर कहे,

"आदित्य उत्पन्न हो। मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय।" वह दूर भाग जायगा।

आदित्य से चंद्रमा उत्पन्न होता है। उसको देखकर कहे, "चंद्रमा उत्पन्न हो, मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय।" वह दूर भाग जायगा।

चन्द्रमा से वृष्टि होती है। उसको देखकर कहे, "वृष्टि उत्पन्न हो, मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय।" वह भाग जायगा।

वृष्टि से विद्युत् होता है। उसको देखकर कहे, "विद्युत् उत्पन्न हो, मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय।" वह दूर भाग जायगा। इसको ब्रह्म-परिमर कहते हैं।

इस ब्रह्म-परिमर को कुषारु के बेटे मैत्रेय ने कृषि के लड़के राजा सत्वन् से जो भर्ग गोत्र का था कहा। उसके पांच शत्रु राजा मर गये और वह बड़ा हो गया।

यह उसका व्रत है:—"शत्रु के पूर्व न बैठे। जब वह समझ ले कि यह खड़ा हुआ है तब खड़ा हो। अपने शत्रु के लेटने के पहले न लेटे। जब वह समझे कि बैठा है तब बैठे। वह कभी सोवे नहीं जब तक कि शत्रु न सोवे। जब वह समझले कि शत्रु जग पड़ा तो जग पड़े। ऐसा करने से अगर शत्रु अश्म-मूर्धा भी हो अर्थात् उसका पत्थर का भी सिर हो तो भी जल्दी ही वह चूर-चूर हो जायगा।"

ऐतरेय ब्राह्मण की आठवीं पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण की आठवीं पञ्चिका समाप्त हुई।

ऐतरेय ब्राह्मण सम्पूर्ण समाप्त हुआ।

ऐतरेय में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द और व्युत्पत्तियाँ

अग्नीध्र—अग्नि रखने का स्थान। अग्नि कुण्ड।

अतिजगती—१३-१३-१३-१३ के क्रम से ५२ अक्षरों का छन्द।

अध्रिगु—वह व्यक्ति जो पशु को शान्त (चुप) करता है (२।७)।

अनद्धा—जो देव, पितर, या मनुष्यों में से किसी को आहुति न दे (७।६)।

अनीजान—वह व्यक्ति जिसने यज्ञ अभी नहीं किया।

अनुचर—शस्त्र का पिछला भाग।

अनुमति—अमावस्या का उत्तरार्ध।

अनुष्टुभ्—८-८-८-८ अक्षरों से बने ३२ अक्षर का छन्द।

अनुस्तरणी—वह गौ जो मृत यजमान को चिता पर रखने के बाद दान दी जाय (३।३२)।

अन्तर्याम—देखो उपांशु।

अभ्यावर्त्ति—बारबार आने वाले षडह आदि दिन।

अवभृथ—यज्ञ की अन्तिम क्रिया (७।१७)।

अविहृतपाठ—जिसमें एक मंत्र के पद दूसरे मंत्र के पद से न मिलें।

अव्यूह्ल—छन्दों के क्रम टूट जाने को कहते हैं, जैसे प्रातरनुवाक में (गा-अ-त्रि-बृ-उ-ज-पं)

अश्व— व्युत्पत्ति (५।१)।

अहीनसंतति—वह सोम यज्ञ जिसमें कई दिन लगें, और एक दिन और दूसरे दिनों में सिलसिला जारी रहे (६।१७)।

आगू—पुरोहित का कहना—होता यक्षत, या, होतर्यज (२।२८)।

आग्रन्थन— सादी गाँठ देना (५।१५)।

आज्य—देवों के लिए जो घी वह आज्य है। (देखो घृत)

आयुत—पितरों के लिए घी। (देखो घृत)

आरम्भणीय—संवत्सर के आरम्भ होने पर किया जाने वाला कृत्य जिसे "चतुर्विंश" भी कहते हैं (४।१२)।

आहाव—आहाव, निविद और सूक्त ये आज्यशस्त्र के तीन भाग हैं। होता द्वारा शसावोम् कहा जाना आहाव है। अध्वर्यु होता के इस कहने पर शस्त्र जो कहे, वह प्रतिगार (२।३३)।

आहुति = आहूति—जिसके द्वारा यजमान यज्ञ को बुलावे (१।२)।

इष्टि—देव जिसके द्वारा यज्ञ खोजने की इच्छा करें, उसे इष्टि कहते हैं (१।२)।

इडादधि—दही से किया जाने वाला क्रतु (३।४०)।

ईजान—वह व्यक्ति जिसने पहले यज्ञ किया।

उदयनीय इष्टि—यज्ञ की अन्तिम इष्टि।

उपगाता—वे व्यक्ति जो सामगान करने वालों के साथ पढ़ते हैं (७।१)।

उपनयमनी—लकड़ी का बना दूध पीने का चमसा।

उपवसथ—सोमयाग से एक दिन पूर्व पशुबंधन (३।४०)।

उपसद्—(१) घेरा, मुहासिरा, (२) कृत्य विशेष।

उपसर्ग—(आधिक्य करना)—पाँच हैं—प्रंचन, प्रचेतय, आयाहि-पिबमत्स्व, क्रतुश्छन्द ऋते बृहत, सुम्न आधेहि। इसी प्रकार अन्य भी (४।४)।

उपस्तरण—यज्ञ में चमचे से घी डालना।

उपांशु—उपांशु और अन्तर्याम दो घड़े होते हैं। इनके ऊपर जो प्याले रक्खे होते हैं, उन्हें उपांशु ग्रह, और अन्तर्याम ग्रह कहते हैं (२।२१)।

उष्णिक्—७-७-७-७ अक्षरों से बना २८ अक्षर का छन्द।

एकधन = एकधना—वह जल जो यज्ञ के दिन ही प्रातःकाल लाया जाता है।

एकाह—एक दिन में पूर्ण होने वाला सोमयज्ञ।

किंशारू—चावल की भूसी (२।६) (चावल के अंग—किंशारू, तुषा, कण और कसार)।

कुहू—अमावस्या का पूर्वार्ध।

खर—प्रवृजन स्थान (यज्ञ पात्र रखने की चबूतरी) (१।२२)।

गायत्री—८-८-८ के क्रम से तीन पाद वाले २४ अक्षरों का छन्द।

गोष्ठ—जहाँ पशु शाम को बँधते हैं।

घृत—देवों का घी आज्य, मनुष्यों का घृत, पितरों का आयुत और गर्भस्थ जीवों का घी नवनीत कहलाता है। पिघला घी आज्य, जमा हुआ घृत, आधा पिघला हुआ आयुत और मक्खन नवनी कहलाता है।

चरु या ओदन—उबला चावल, जिसमें दूध और घी भी मिला होता है।

चितैध—चिता का ईंधन (४।१०)।

जगती—१२-१२-१२-१२ अक्षरों से बने ४८ अक्षरों का छन्द।

जातवेद—अग्नि (उत्पन्न हुये को पाया)—व्युत्पत्ति (३।२६)।

जुष्टि—रियायती आहुति (१।३०)।

ज्योतिष्टोम—सोमयाग का प्रथम विभाग है। इसकी चार संस्थाएँ-अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र हैं।

तूष्णींशंस—चुपचाप जाप या प्रार्थना (२।३१)।

तृच—तीन ऋचाओं से मिल कर बने।

दीक्षणीय इष्टि—यह केवल यज्ञ की तैयारी या भूमिका है।

दूरोहण—स्वर्ग या सूर्य। व्युत्पत्ति (४।२०)।

त्रिष्टुभ्—११-११-११-११ अक्षरों से बने ४४ अक्षरों का छन्द।

द्वादशाह—बारह दिनों का कृत्य (४।२३)।

धाय्या—सामिधेनियों के बीच में पढ़े जाने वाले मंत्र। व्युत्पत्ति देखो (३-१८)।

नभाक—खोदने का कुदाल (६।२४)।

नवनीत—गर्भस्थ जीवों के लिये घी (देखो घृत)।

निनृति—पदों के अन्त के स्वरों की आवृत्ति को कहते हैं (५।२)।

निग्रन्थन—लपेट की गाँठ देना (५।१५)।

निविद—सोमपान के लिये देवताओं को आवाहन करने वाले ऐसे मन्त्र जिनमें देवताओं की स्तुति हो, निविद कहलाते हैं। (३।१०)।

न्यूंख—स्वर को उदात्त कर के पढ़ने की विशेष विधि (५।३)।

न्यून—दस से एक कम = ९ (६।९)।

पंक्ति—१०-१०-१०-१० अक्षरों से बने ४० अक्षरों का छन्द।

पराचिदिन—अकेले दिन (६।१८)।

पांचजन्य—पाँच—देव, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, पितर (३।३१)।

पुरोगव—नेता (१।३०)।

पुरोडाश—इष्टियों में दी गई प्रधान हवि जो चावल के आटे को गूँथ कर बनायी जाती है। पहले इसे लकड़ी के टुकड़े पर आहवनीय अग्नि में पकाते हैं, अन्त में कपालों पर।

पुरोरुक्—उच्च स्वर से कहे जाने वाले पद (तूष्णीशंस का उलटा) (२-३९)।

पृष्ठ—सामवेद के दो तृच् मिल कर पृष्ठ कहलाते हैं (३।२१)।

प्रग्राह—पाठ की वह विधि जिसमें दो-तीन पदों के बाद ठहरना पड़ता है (६।३२)।

प्रणयन (अग्नि)—अग्नि को उत्तर वेदी में ले जाना।

प्रतिपद्—शस्त्र का पहला भाग।

प्रतिष्ठा—पशु ठहराने का स्थान (३।२४)।

प्रपदरीति—ऋचाओं के बीच बीच में अपनी ओर से कुछ पद मिला कर पढ़ने की रीति (८।११)।

प्रस्तर—कुशों का बंडल।

प्रातरनुवाक्य—प्रातःकाल बोले जाने वाले अनुवाक्य (२-१५)।

प्रायणीय इष्टि—यज्ञ की प्रारम्भिक इष्टि।

बृहती—९-९-९-९ अक्षरों से बने ३६ अक्षरों का छन्द।

महानाम्नी—व्युत्पत्ति (५।७)—(जिसके द्वारा इन्द्र ने महान् बनाया)।

मानुष—माढुष—जो दोष के योग्य न हो। (३।३४)।

यज्ञदोष—जग्ध, गीर्ण, वात (३।४६)।

यूप—यज्ञशाला का खम्भा जिसमें पशु बाँधते हैं।

योनि—बीच में पढ़े जाने वाले मंत्र (३।३५)।

रराटी—दर्भ की माला जो हविर्धान के बीच के खम्भों पर लटकी होती है।

राका—पूर्णिमा का पहला भाग (पूर्वार्द्ध)।

रूपसमृद्ध—वे मंत्र रूप समृद्ध हैं, जिनमें उन मंत्रों से की जाने वाली क्रिया की ओर भी संकेत हो।

रोहित—(छन्द)—जिससे स्वर्ग पर चढ़ा जाय। व्युत्पत्ति (५।१०)।

वर = देवभजन = यज्ञ स्थान (१।१३)।

वषट्कार—तीन प्रकार के वज्र, धामच्छद्, रिक्त (३।७)।

वसतीवरि—वह जल जो यज्ञ के एक दिन पहले लाया जाता है।

वहतु—अतिथियों को भेंट में दी जाने वाली चीजें (४।७)।

वह्नि—जो अगुआ हो। व्युत्पत्ति (६।१८)।

वाण—इसके तीन भाग-अनीक, शल्य, और तेजन।

वावाता—राजा की बीच की पत्नी (पहली पत्नी महिषी, दूसरी वावाता, तीसरी परिवृक्ति)।

विहृत पाठ—जिसमें एक मंत्र के पद दूसरे मंत्र के पद से पाठ करते समय मिल जायँ (४।२)।

व्यूह—छन्दों के क्रमशः (४-४ अक्षर) बढ़ने को व्यूह कहते हैं। क्रम यह है—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुभ्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुभ्, जगती (२।१८)।

व्यूहछंदस्—तितर बितर हो जाना।

शक्वरी—१४-१४-१४-१४ के क्रम से ५६ अक्षरों वाला छन्द। व्युत्पत्ति (५।७)।

शस्त्र—बारह—आज्य, प्रउग, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि, अच्छावाक्, मरुत्वतीय, निष्केवल्य, मैत्रावरुण, वैश्वदेव, अग्निमारुत आदि (३।३६)।

षडह—६ दिन का कृत्य (४।१५)।

शुक्र—व्याहृति (५।३२)।

संसवदोष—दो या अधिक पुरुषों के एक ही समय में निकट सोमयज्ञ करने में जो गड़बड़ी होती है वह संसवदोष है।

संगविनी—धूप से बचने के लिए जहाँ पशु दोपहर को बाँधे जाते हैं।

सदस्—उत्तरवेदी के दक्षिणपूर्वी कोने में स्थान विशेष।

संपात—व्युत्पत्ति (४।३०)।

समानोदर्क—समान वाक्य पर समाप्त होने वाला सूक्त (५।१)।

साम—न्यायवाला (व्युत्पत्ति ३।२३)। इसके पाँच भाग आह्वव, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, निधन।

सामिधेनी—वे मंत्र जिनके द्वारा समिधा अग्नि में छोड़ी जाती हैं। (अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़े जाने वाले मंत्र)।

सिमा—(सीमा से बाहर जो हुए) व्युत्पत्ति (५।७)।

सिनीवाली—पूर्णिमा का दूसरा भाग (उत्तरार्ध)।

स्वरसाम—व्युत्पत्ति (४।१६)।

हविर्धान—गाड़ी जिस पर सोम या अन्य हवि उत्तर वेदी में लायी जाती है।

हविष्पंचक—यज्ञ में छोड़ी जाने वाली चीज़ें—धान, करंभ, परिवाप, पुरोडाश, पयस्या (मट्ठा) आदि।

होता—जो देवताओं का आवाहन करे वह होता (१।२)।

ऐतिहासिक व्यक्ति

मंत्रसूची

[ऐतरेय ब्राह्मण में अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के हैं, पर कुछ मन्त्र अन्य वेदों के भी। इस सूची में यदि किसी वेद का निर्देश नहीं है, तो समझना चाहिए कि मन्त्र ऋग्वेद का है ; शेष स्थलों के लिए अ० = अथर्ववेद, सा० = सामवेद, य० = यजुर्वेद ; आश्व० = आश्वलायन गृह्य सूत्र।

मन्त्रों की प्रतीक के आगे कोष्ठक में ऋग्वेद का मण्डल, फिर सूक्त और फिर मन्त्र दिया गया है। अन्य वेदों के संबंध में भी इसी क्रम से काण्ड या अध्याय सूक्त और मन्त्र दिए हैं। कोष्ठक के बाद इस हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या दी गई है।

पृष्ठ संख्या के बाद फिर जो कोष्ठक है, उसमें ब्राह्मण की पञ्चिका और सूक्त का निर्देश है।

कुछ प्रतीकें मन्त्र की निर्देशक ही नहीं, प्रत्युत उस मन्त्र से आरम्भ होने वाले समस्त सूक्त की निर्देशक हैं। इन प्रतीकों के पूर्व तारक चिह्न (*) लगा है। तीन चार मन्त्रों (त्रिक्) को सूचित करने वाली प्रतीकों के पहले (φ) चिह्न है। —सत्य प्रकाश]

अनुक्रमणिका